आलोचनात्मक अध्ययन

निराला और उनकी अपरा

(अपरा का आलोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक अध्ययन)

चतुर्थ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

लेखक

प्रो० देशराजसिंह भाटी, एम० ए०

प्रकाशक

चतुर्थ संस्करण

'निराला छायावादी महाकवि हैं और 'अपरा' इनकी श्रेष्ठ कविताओं का संकलन। यह संकलन केवल निराला-काव्य का ही नहीं, वरन् छायावादी काव्य का भी प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत कृति 'निराला' और उनकी 'अपरा' इसी संकलन की कविताओं का आलोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक अध्ययन है।

यह कृति दो भागों में विभाजित है – आलोचना भाग और व्याख्या-भाग। आलोचना-भाग में कवि निराला के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व का विवेचन है। इस विवेचन का व्याख्या-भाग से अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि किसी भी कवि की कविताओं को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व तथा इतर रचनाओं को समझना आवश्यक है। व्याख्या भाग में संकलित कविताओं की व्याख्या है जिसमें व्याख्येय कविता को सभी पक्षों से परखने का प्रयास किया है।

हमें सन्तोष है कि जिस उद्देश्य से यह कृति लिखी गई थी, उसमें यह पूर्णतया सफल रही है। इसीलिए हम इसका चतुर्थ संस्करण उसी आशा तथा उत्साह से निराला के पाठकों को समर्पित कर रहें हैं जिस आशा और उत्साह से पिछले तीन संस्करण किये थे।

—प्रकाशक

विषय-सूची

आलोचना भाग

व्याख्या भाग

आलोचना भाग

: १ :

निराला का जीवनवृत्त

आधुनिक युग के क्रांतिकारी और उपेक्षित कवि निराला का जन्म सन् १८९६ ई० में बसन्त पंचमी के दिन महिषादल (बंगाल) में हुआ था। इस स्थान पर इनके पिताजी पं० रामसहाय तिवारी नौकरी के लिए आ बसे थे वैसे वे उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अन्तर्गत स्थित गढ़ाकोला नामक गाँव के रहने वाले थे। पं० रामसहाय तिवारी ने दो विवाह किये थे। पहली पत्नी निस्सन्तान ही रही और दूसरी पत्नी ने निराला को जन्म दिया। अपने पिता के ये एकमात्र पुत्र थे। जब इनकी अवस्था तीन वर्ष की हुई तो इनकी माता का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। अपनी पत्नी की आकस्मिक मृत्यु ने पं० रामसहाय तिवारी को विक्षिप्त-सा बना दिया। वे सदैव अनमने और उदास रहने लगे। उनके स्वभाव में भी कठोरता और रूखापन आ गया। यह कठोरता इस सीमा तक पहुंच गई कि जब वे अपने एकमात्र पुत्र निराला को पीटना शुरू करते थे तो लगातार पीटते ही चले जाते थे। पिता की इस कठोरता का वर्णन निराला ने इन शब्दों में किया है—

'मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था और प्रहार की हद मालूम हो गई थी।'

पिता के इस कठोर स्वभाव का प्रभाव बालक निराला पर भी पड़ा, जिसके कारण ये हठी, उच्छृंखल, उद्धत और विद्रोही बन गये। जब ये पाँच वर्ष के हुए तो इन्हें शिक्षा के लिए एक स्थानीय विद्यालय में दाखिल करा दिया गया। वहाँ तीन चार साल तक बंगला के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करके ये एक अंग्रेजी हाई स्कूल में दाखिल हुए। इस स्कूल में संस्कृत में पढ़ाने की व्यवस्था तो थी, पर हिन्दी का कोई प्रबंध नहीं था। निराला का बचपन से ही हिन्दी के प्रति प्रगाढ़ अनुराग था। सिपाहियों की सहायता से इन्होंने हिन्दी की वर्ण-

माला सीखी और तब रामायण और ब्रजविलास का स्वर पाठ करने लगे। इनके स्वर में श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध करने वाला माधुर्य था।

हाई स्कूल में प्रविष्ट होने के पश्चात् इनका मन शिक्षा की ओर से हट-सा गया। पाठ्य पुस्तकों के अध्ययन में इनकी रुचि जमी नहीं। विशेषतः गणित में तो ये बिल्कुल ही कोरे थे। कहते हैं, जब इन्होंने नवीं कक्षा को परीक्षा दी तो गणित के प्रश्नपत्र के उत्तर में देव और पद्माकर के अनेक पद लिख आए। यहीं से इनकी विद्यालीय शिक्षा का अंत हुआ।

काव्य के प्रति इनका अपार अनुराग था। अतः विद्यालीय शिक्षा का अंत करके ये काव्य रचना की ओर उन्मुख हुए और अवधी तथा ब्रजभाषा में रचना करने लगे। इस समय तक इनका हिन्दी-ज्ञान अधूरा ही था। कुछ समय पश्चात् इनका विवाह मनोहरा देवी से हुआ जो सुशिक्षिता और हिन्दी की विदुषी थी। इनकी पत्नी का हिन्दी-ज्ञान इनसे अधिक हो, निराला इस वैषम्य को कब सहन करने वाले थे। फलतः इन्होंने हिन्दी का नियमपूर्वक पठन-पाठन प्रारम्भ कर दिया। उस समय से प्रायः 'सरस्वती' की प्रतियों को पढ़ा करते थे। पर विधि को निराला का यह पारिवारिक सुख स्वीकार्य न था। फलतः एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म देकर मनोहरा देवी भी अकाल में ही दिवंगत हो गईं। अभी पत्नी के असामयिक देहावसान के भीषण दुख को निराला भूल भी न पाये थे कि उनके चाचा भी चल बसे। इस समय निराला की आयु २१ वर्ष की थी। उनके अनुभवहीन कन्धों पर चार भतीजों का और दो अपनी सन्तानों का बोझ आ पड़ा। इस विषम परिस्थिति ने इन्हें झिकझोर तो दिया पर इनके साहस को आँच न आई। वे धैर्य और कर्मठता के साथ आगे बढ़े। पारिवारिक संचालन के लिए इन्हें महिषादल के राजा के यहाँ नौकरी करनी पड़ी। इस समय तक ये कवि-रूप में बहुत कुछ प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। नौकरी के साथ-साथ इनकी काव्य-साधना भी चल रही थी। पर पारिवारिक झंझटों ने इन्हें अन्यमनस्क-सा बना दिया था। इस लिए ये नौकरी छोड़कर सन् १९२० में अपने घर लौट आये।

इस नौकरी को छोड़ने के बाद इनकी आर्थिक स्थिति और भी डगमगा गई। सन् १९१६ में इन्होंने 'जुही की कली' 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ भेजी थी पर वह वापिस लौट आई। इससे इसके मन को दुख तो बहुत हुआ, लेकिन

इस समय कलम के बल के अतिरिक्त इनका और कोई संवल भी तो नहीं था। अकस्मात् इनका पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी से साक्षात्कार हुआ। द्विवेदी जी इनकी प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि इन्हें रामकृष्ण मिशन के दार्शनिक पत्र 'समन्वय' का सम्पादक नियुक्त करवा दिया। इस पद पर इन्होंने लगभग एक वर्ष बड़ी सफलता एवं तन्मयता से कार्य किया। इन्होंने इस पत्र में जो दार्शनिक लेख लिखे उनके कारण ये दर्शन-क्षेत्र में प्रसिद्धि पा गये। इसी के साथ-साथ इन्होंने 'पंचवटी प्रसंग' और 'अनामिका' में संगृहीत कविताओं की भी रचना कर ली थी। सन् १९२२ में इनका प्रथम काव्य-संग्रह 'अनामिका' प्रकाशित हुआ।

'समन्वय' से नौकरी छोड़ने के बाद इनकी आर्थिक स्थिति में फिर असन्तुलन आया। इन्हीं दिनों कलकत्ते के साहित्य-प्रेमी सेठ महादेव प्रसाद ने 'मतवाला' नाम से एक ' ाहित्यिक पत्र निकालने की योजना बनाई। निराला को इसका सम्पादक नियुक्त किया गया। 'मतवाला' की तुक पर ही इन्होंने अपना उपनाम 'निराला' रक्खा। इससे पूर्व ये सूर्यकान्त त्रिपाठी के नाम से ही काव्य-रचना किया करते थे। 'मतवाला' के माध्यम से निराला को अपनी साहित्यिक प्रगति में बहुत सहायता मिली। निराला ने 'जुही की कली' और 'पंचवटी' प्रसंग' आदि कविताओं में जिस मुक्त छन्द की योजना की थी, उसके विरोध में अनेक सबल स्वर उठने लगे थे। वैसे तो इस विरोध की इन्होंने पहले भी चिंता नहीं की थी, लेकिन 'मतवाला' का सहयोग पाकर तो निराला का उत्साह पुंजीभूत हो गया। इन्होंने इसके माध्यम से अपने विरोधियों को तर्कपूर्ण चुनौतियाँ दीं। इसी समय छायावाद भी जन्म ले चुका था। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे साहित्यिक कर्णधार छायावादी नवशिशु का गला घोंटने पर उतारू थे। निराला ने ही सबसे पहले सबल भाषा में छायावाद का समर्थन किया। इन साहित्यिक प्रबल विरोधों का सामना निराला जिस शक्ति और फक्खड़पने से करते थे, उसका प्रमाण इनकी उन दिनों की दिनचर्या है, जो डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में इस प्रकार है—

'शाम को भांग छानना, दिन-भर सुरती फाँकना, थियेटर देखना, साहित्यिकों से सरल वार्तालाप करना, मुक्तछंद की कविता लिखना, छद्म नामों से हिन्दी के आचार्यों की भाषा में व्याकरण और मुहावरों की भूलें दिखाना और

यों समस्त हिन्दी-संसार को चुनौती देना उनके जीवन का कार्यक्रम था। उस समय ऐसा लगता था कि मुंशी नवजादिकलाल, बाबू शिवपूजनसहाय और पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ है।

इस पत्र में भी 'निराला' एक वर्ष तक ही कार्य कर सके और एक वर्ष के पश्चात त्यागपत्र देकर अपने गाँव चले गए। जब आर्थिक संकट ने अधिक विवश किया तो लखनऊ आ गये और अपनी लेखनी के संबल पर गुजर करने लगे। इन्हीं दिनों में बीमार भी पड़ गये। यह बीमारी दो वर्ष तक चलती रही सन् १९२८ में ये 'सुधा' नामक मासिक पत्रिका के सम्पर्क में आये। इनकी रचनाएँ इस पत्रिका में नियमित रूप से प्रकाशित होने लगीं। सन् १९२९ में इन्होंने 'गंगा पुस्तक-माला' का प्रकाशन भार सम्भाला। इस प्रकाशन-संस्था के संस्थापक दुलारेलाल भार्गव थे। इस उत्तरदायित्व के साथ-साथ ही ये 'सुधा' का भी सम्पादन करते रहे। इसी समय इनके दो उपन्यासों का—अप्सरा और अलका का—तथा एक कहानी-संग्रह 'लिलि' और 'परमिल' नामक काव्य-संग्रह का प्रकाशन हुआ।

'निराला' क्रांतिकारी थे। हिन्दी साहित्य में प्रचलित रूढ़ियां इन्हें पसन्द न थीं और ये सदैव एकाकी होकर भी उनका विरोध करते रहते थे। लखनऊ में निवास करते समय इनका सम्पर्क कुछ अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न नवयुवकों से हुआ। डा० रामविलास शर्मा, डा० रामरतन भटनागर और अंचल आदि नव-युवकों को पाकर निराला में पुनः एक नवीन उत्साह उत्पन्न हुआ और ये फिर प्राणपण से पुरातनता के विरोध में जुट गये। इनका यह विरोध इतना उग्र रूप धारण कर गया कि उससे इनके परम मित्र पन्त भी न बच सके और इनकी कटु आलोचना के शिकार हुए।

सन् १९३२ में पुनः कलकत्ता गये जहां पर इन्होंने 'रंगीला' नामक पत्र का सम्पादक भार सँभाला। पर यहाँ पर इनका मन नहीं जमा और पुनः लौटकर लखनऊ आ गये। दस वर्ष तक यहीं रहे। इन वर्षों के अन्तराल में इन्होंने प्रभावती (उपन्यास), निरूपमा (उपन्यास), सखी (कहानी-संग्रह), सुकुल की बीबी (कहानी-संग्रह), कुल्ली भाट (संस्मरणात्मक रेखाचित्र), प्रबंध-पद्म, भावुक प्रबंध-परिचय (निबन्ध-संग्रह), तुलसीदास (खंडकाव्य) और गीतिका

में संगृहीत अनेक कविताओं की रचना की। कुछ समय ये उन्नाव में भी रहे, जहाँ पर इन्होंने कुक्कुरमुत्ता, अणिमा, बिल्लेसुर बकरिहा की रचना की। सन् १९३५ में इनकी एकमात्र पुत्री सरोज का आकस्मिक देहावसान हो गया। इस वज्रपात को निराला का भावुक हृदय सहन न कर सका और ये विक्षिप्त से हो गए। सरोज की स्मृति में इन्होंने एक शोकगीत भी लिखा जो हिन्दी-साहित्य की अमर एवं अद्वितीय निधि है।

साहित्यिक कटु विरोध एवं अवमानता तथा पारिवारिक दुर्घटनाओं ने निराला के विराट् व्यक्तित्व को झकझोर दिया। इनके मन में विरक्ति की तीव्र लहर आई जो नस-नस में दौड़ गई। फलतः सन् १९३७ में इन्होंने अपने सुन्दर केश कटवा डाले और भविष्य में काव्य-रचना न करने का निश्चय किया। यद्यपि महादेवी वर्मा के बहुत कुछ कहने-सुनने पर इन्होंने काव्य-रचना न करने के निश्चय को तोड़ दिया, तथापि इनके मन की विरक्ति और निराशा गहन से गहनतर होती गई। इस समय दुलारेलाल भार्गव से इनके सम्बन्ध बिगड़ चुके थे, इसलिए ये लखनऊ छोड़कर इलाहाबाद चले गये। इनकी अनेक काव्य-रचनाएँ लीडर प्रेस से प्रकाशित हुईं। यहीं पर इन्होंने चोटी की पकड़, काले कारनामे, बेला, नये पत्ते आदि पुस्तकों की रचना की। इन पुस्तकों में निराला के तत्कालीन मानसिक विक्षोभ का पूर्ण प्रतिबिम्ब मिलता है।

अब तक के वर्णन से यह स्पष्ट है कि निराला को सांसारिक और मानसिक अनेक भीषण संघर्षों का सामना करना पड़ा था। इन संघर्षों से इनकी कमर ही टूट गई। जीवन-व्यापी संघर्ष, आर्थिक विषमता, लम्बी बीमारी और प्रतिकूल वातावरण सभी पुंजीभूत होकर इनकी मस्तिष्क-शिराओं में समा गये, जिनके कारण इनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया। इस स्थिति में आकर हिंदी का यह महाकवि जिस विपन्न अवस्था को प्राप्त हुआ, उसका चित्रण श्री गंगा प्रसाद पांडेय ने इन शब्दों में किया है—

'नंगे पैर और नंगे सिर, कन्धे में फटा हुआ कुरता टाँगों में गंदी लुंगी, जो कभी-कभी केवल घुटनों तक ही पहुंचती थी, पहने हुए निराला को प्रयाग की सड़कों में घूमते हुए देखकर मन बैठा जाता था। कविताएँ लिए हुए वे प्रायः लीडर प्रेस और इण्डियन प्रेस तक दारागंज से पैदल ही आया जाया करते

थे। उनकी उस समय की आर्थिक विपन्नता इतनी भयानक थी कि अपरिचित व्यक्ति को सहज ही में विश्वास नहीं हो सकता।'

महादेवी ने प्रयाग में एक साहित्यकार संसद की स्थापना की थी। निराला की यह विपन्न दशा देखकर उन्होंने इन्हें इस संसद में आकर रहने के लिए आमन्त्रित किया। कुछ दिनों तक ये वहाँ रहे, पर इनके स्वाभिमानी मन ने इन्हें वहाँ भी न जमने दिया और वहाँ से निकलकर ये दारागंज की दुर्गन्धपूर्ण सँकरी गली के एक छोटे से मकान के कमरे में रहने लगे। इनका शरीर बीमारियों और चिन्ताओं ने खा-खाकर बिल्कुल जर्जरित कर दिया था। फलतः इनकी दशा दिन-प्रतिदिन गिरती गई। इन्हें मृत्यून्मुख देखकर हिन्दी-साहित्य की आंखें खुलीं। दारागंज का वह छोटा-सा कमरा हिन्दी-प्रेमियों के लिए तीर्थ-स्थान बन गया। लोगों का तांता बराबर लगा रहता। जब इनकी अवस्था और भी बिगड़ गई तो केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों से इनके लिए आर्थिक सहायता की प्रार्थनाएँ की गईं। कुछ आर्थिक सहायता मिली भी, पर अब उसका कोई उपयोग नहीं रह गया था। अन्त में हिन्दी के इस महान् एव उपेक्षित कवि का १५ अगस्त १९६१ को देहावसान हुआ।

इनके देहावसान के पश्चात् हिन्दी वालों की आँखें खुलीं। इनके अभाव को तरह-तरह से दोहराया गया, इनकी जयन्तियां मनाई गईं और विविध पत्रिकाओं ने निराला विशेषाँक प्रकाशित किए। पर अब न तो इसका कोई उपयोग है और न इससे हिन्दी वालों के माथे पर लगा हुआ गहरा कलंक मिट सकता है और न इससे उस महाकवि की आत्मा को शान्ति ही मिल सकती है, जो अपने भौतिक रूप में सदैव उपेक्षित और अपमानित रही।

: २ :

निराला का व्यक्तित्व

काव्य और कवि के व्यक्तित्व का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। सच बात तो यह है कि कवि अपने काव्य में अपने ही व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। अत: किसी कवि के काव्य को ठीक रूप से समझने के लिए उसके व्यक्तित्व से परिचित होना आवश्यक है।

व्यक्तित्व किसी एक गुण को नहीं कहते, वरन् इसमें अनेक गुणों का समावेश होता है। दूसरे शब्दों में कह सकने हैं कि व्यक्तित्व गुणों और प्रवृत्तियों का समन्वय है। नौरमैन एल० म्यून (Norman L. Munn) के अनुसार व्यक्ति की बाह्य रचना, व्यवहार की चित्त-वृत्तियाँ, रुचियाँ धारणाओं, शक्तियों, योग्यताओं और कुशलताओं का सर्वाधिक लाक्षणिक समायोजन ही व्यक्तित्व है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के अन्तर्गत शारीरिक गठन से लेकर मन के सभी स्वभाव आते हैं। व्यक्तित्व की इसी व्यापकता के परिवेश में हम निराला के व्यक्तित्व को प्रस्तुत कर रहे हैं।

निराला का शारीरिक गठन अत्यन्त आकर्षक एवं सुव्यवस्थित था। इनका कद छः फुट से अधिक था, भरा हुआ शरीर था, गेहुंआ रंग था, आँखों में अपेक्षित गाम्भीर्य था, सिर के लटकते हुए बाल इस गाम्भीर्य को और भी अधिक गहन बनाते थे। इनका यह व्यक्तित्व इन्हें उच्च कोटि के दार्शनिकों की पंक्ति में प्रस्तुत करता था। यही कारण है कि भारत कोकिला सरोजनी नायडू ने इन्हें देखा तो उन्हें ग्रीक दार्शनिक का भ्रम हो गया। इनके शरीर के गठन एवं सौन्दर्य को देखकर एक ग्रीक महिला ने इन्हें 'अपोलो' का अवतार बताया था। रामेश्वरी शर्मा ने इनके व्यक्तित्व का उद्‌घाटन इन शब्दों में किया है—

"उनके नेत्र विशाल हैं, स्वप्निल हैं और लाल रेखाओं से पूर्ण हैं, आज ६० वर्ष की आयु में भी उस कमल पुष्प से सादृश्य रखते हैं जिसकी बावड़ी का जल सूख गया है, पर उनमें अभी तक स्नेह सौहार्द्र है जो किसी व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित न होकर समस्त मानव समाज के लिए फैल गया है। आज भी

उनके नेत्र क्षितिज के उस पार किसी महान और दिव्यलोक के स्वप्न से भरे उनींदे खुमारीयुक्त प्रतीत होते हैं.....उन्हें कोई कमजोर आँखों वाला सहज ही रहस्यवादी कवि पुकार उठेगा। उनके नेत्रों से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव दर्शक पर एक साथ पड़ता है।"

निराला के इस आकर्षक शरीर-गठन में इनका कुश्ती का शौक एक प्रमुख कारण है।

निराला अपने प्रति सदैव जागरूक रहते थे और ये कोई ऐसी बात करना नहीं चाहते थे जिससे इन पर उंगलियाँ उठें। जब से किसी कवि-सम्मेलन में जाते तो अपनी वेश-भूषा का विशेष ध्यान रखते। बढ़िया कुर्त्ता, महीन धोती, कन्धे पर रेशमी चादर, वालों में सुगंधित तेल डालकर और हाथ में छड़ी देकर ये कवि-सम्मेलनों में जाते थे। जब तक इनके पास रहता, खूब ठाट-बाट से रहते। स्वयं भी खूब खाते और दूसरों को भी खूब खिलाते। जव यह खत्म हो जाता तो फिर अपनी दरिद्र दशा में आ जाते। दान देने में भी ये किसी से कम नहीं थे। अपना सर्वस्व दे देना इनकी दान की विशेषता है। इस विषय से अनेक घटनाएँ हिन्दी पाठकों के सामने आ चुकी हैं। जाड़े से ठिठुरते हुए गरीबों को अपना कोट, कम्बल, रजाई आदि सभी कुछ दे डालते और स्वयं ठिठुर-ठिठुर कर जाड़े के दिनों को काटते। यही नहीं, उदीयमान कवियों के प्रति भी इनका दिल उदार था। सन् १९४५ में जब ब्रज-साहित्य मंडल ,की ओर से दिल्ली में एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया तो उसमें बेधड़क जी ने एक कविता पढ़ी। उसे सुनकर निराला जी इतने प्रसन्न हुए कि अपनी जेब से सारे रुपये निकालकर उन्हें पारितोषक के रूप में दे दिए।

निराला में भारतीय संस्कृति के तत्त्व भरे हुए थे। इसीलिए ये आतिथ्य-सत्कार को अपना सबसे पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। जो भी इनके द्वार पर पहुंचा, उसका इन्होंने इतना आदर-सत्कार किया कि वह स्वयं को ही धन्य मान बैठा। इन्हें अपने अतिथियों का अपने हाथों से सत्कार करना बहुत अच्छा लगता था। अपने ही हाथों से उन्हें खाना पकाकर खिलाते थे और इस कार्य में इन्हें अपरिमित सन्तोष एवं आनन्द मिलता था। कार्य को ये उपासना का ही दूसरा रूप मानते थे। इसलिए प्रत्येक कार्य को अपने हाथों से करने के

लिए सदैव तैयार रहते रहते थे। यहाँ तक कि भोजन पकाकर बर्तन मांजने का कार्य भी ये स्वयं और सहर्ष अपने ही हाथों से करत थे। यदि अतिथि के लिए किसी चीज की बाजार से मँगाने की आवश्यकता हुई तो स्वयं ही दौड़कर चले जाते। इनकी आतिथ्य-परायणता उर्दू के महाकवि मीरतकी 'मीर' के समान थी।

स्वाभिमान निराला के व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण है और संभवतः इसकी अतिशयता ने ही इन्हें अमानवीय जीवन के भोगने के लिए विवश किया। अनेक कथाएँ इस सम्वन्ध में प्रचलित हैं। कुछ कथाओं का उल्लेख कर रहा हूं—

१. एक बार शिमला में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हो रहा था। श्री पराड़कर जी इस सम्मेलन के मंच के बीच में बैठे थे। उनकी बगल में एक कुर्सी खाली पड़ी हुई थी जो श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के लिए थी। निराला जी आये और उसी कुर्सी पर बैठ गए। जब सम्मेलन के स्वयं-सेवक ने निराला जी को वस्तुस्थिति बताई और कुर्सी छोड़ने के लिए निवेदन किया तो इनके स्वाभिमान को गहरा आघात लगा। वे बिगड़ गये और वहीं पर स्वयंसेवक को बुरी तरह से फटकार दिया। फिर किसी की भी कुछ कहने की हिम्मत न हुई। जब टण्डन जी गए तो उन्हें सिरे वाली कुर्सी पर ही बैठना पड़ा।

२. सन् १६४५ में ब्रज-साहित्य-मंडल की ओर से दिल्ली में एक विराट कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। निराला जी उसमें आए। लेकिन जब इन्हें यह पता चला कि कवि सम्मेलन की अध्यक्ष श्रीमती सरस्वती देवी डालमिया हैं, तो इन्होंने कवि-सम्मेलन का बहिष्कार कर दिया।

३. रामगढ़ के स्वर्गीय राजा चक्रधरसिंह ने सोचा कि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक, कहानीकार और कवि को नियमित रूप से कुछ आर्थिक सहायता दी जाये। आलोचक के रूप में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, कहानीकार के रूप में प्रेमचन्द और कवि के रूप में निराला को चुना गया। जब इस विषय का पत्र निराला को मिला तो उसके इन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

४. एक बार लखनऊ में एक हिन्दी-हितैषी राजा आये जिनके दान पर कई हिन्दी-साहित्यकार पल रहे थे। मन से राजा का इन साहित्यकारों के प्रति कोई आदर-भाव नहीं था। लखनऊ के एक प्रकाशक-सम्पादक, साहित्यिक ने

उनके सम्मान में चाय आदि का प्रबन्ध किया । जब राजा साहब आये तो सभी उपस्थिति लोग उनके सम्मान में खड़े हो गये, किन्तु निराला बैठे रहे । एक वयोवृद्ध साहित्यिक उपस्थित साहित्यकारों का परिचय कराने लगे । वे राजा के लिए बार बार 'गरीब परवर' सम्बोधन का प्रयोग कर रहे थे । जब ये दोनों निराला के पास पहुंचे तो निराला स्वयं ही अपना परिचय देने लगे—'हम वह हैं, हम वह हैं, जिनके बाप-दादों के बाप-दादों की पालकी तुम्हारे बाप दादों के बाप दादे उठाया करते थे । यह सुनकर राजा का सिर लज्जा से झुक गया ।

कहाँ तक कहें, निराला के जीवन की प्रत्येक घटना स्वाभिमान से भरी हुई है । जिसने भी इसके स्वाभिमान पर प्रहार किया, उसे इन्होंने कभी क्षमा नहीं किया, चाहे वह कितना ही ऊँचा पदाधिकारी अथवा इनका घनिष्ठ था ।

निराला में अत्यधिक भावुकता थी । जब इन पर कोई विपत्ति आ पड़ती तो ये पर्वत की भाँति दृढ़ बनकर उसका मुकाबला करते, पर जब वे किसी अन्य को दुखी देखते तो इनका हृदय पिघल जाता । यही कारण है कि जब भी कोई भिखारी इनके सामने हाथ फैलाता तो ये सारे रुपये उसे देते, जो इनकी जेबों में होते । कहते हैं कि एक वृद्धा भिखारिन को तो इन्होंने अपनी एक पुस्तक की रायल्टी के सारे के सारे रुपये दे दिये थे और वे भी ऐसे समय में जब ये स्वयं आर्थिक संकटों के विषय गर्त में पड़े हुए थे ।

दुर्बल की सहायता करना इनका स्वभाव था । जब वे किसी दुर्बल को किसी संकट में देखते तो जैसे भी हो, उसकी सहायता करते थे । इस प्रसंग में एक घटना का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा । सन् १९४२ की घटना है । निराला जी सिविल लाइन्स प्रयाग में घूम रहे थें । अचानक इनकी दृष्टि एक तांगे वाले पर पड़ी जिसे तीन गोरे सिपाही धमका रहे थे । ये वहाँ पर पहुंचे । मालूम हुआ कि किसी गोरे सिपाही की बेंत गिर गई थी, जिसके लिए वे तांगे वाले को दोषी बता रहे थे और उसे किराये के पैसे नहीं दे रहे थे । निराला जी ने जब उन गोरों को समझाया कि इसमें बेचारे का क्या दोष है तो वे और भी आपे से बाहर हो गए और निराला जी को भी धमकाने जगे इस पर इन्हें क्रोध आ गया । इन्होंने ताँगे वाले से उसकी चाबुक छीनकर एक गोरे की गर्दन पकड़ ली । फिर क्या था, डर के मारे गोरों का दिमाग ठीक हो गया और तुरन्त तांगे वाले को सारे के सारे पैसे दे दिए ।

निराला में हिन्दी के लिए अनन्त अनुराग था। हिन्दी की अवहेलना ये किसी भी सूरत में सहन नहीं कर सकते थे। हिन्दी को लेकर ही इनकी गाँधी जी और नेहरू जी से झड़पें हो गई थीं। यह घटना सन् १९३६ की है। लखनऊ में काँग्रेस के वार्षिक उत्सव का आयोजन किया गया था। गाँधी जी भी उसमें आये हुए थे। निराला जी ने गांधी जी का एक वाक्य पढ़ा था जो इन्हें बहुत बुरा लगा था। वाक्य यह था—'हिन्दी-जगत् में कोई रवीन्द्र जैसा नहीं हुआ है।' निराला जी उपयुक्त अवसर की तलाश में थे और इससे उपयुक्त अवसर और क्या हो सकता था। अतः वे एक दिन गांधी जी से जा भिड़े और जब तक उन्होंने क्षमा-याचना न की, तब तक उनका पीछा नहीं छोड़ा।

इसी उत्सव से सम्बद्ध एक घटना और घटित हुई। लखनऊ के अमीनुद्दौला पार्क में एक मीटिंग हो रही थी। नेहरू जी इस मीटिंग में सम्मिलित थे। मीटिंग की कार्यवाही के अनुसार एक बंगाली महाशय भाषण देने के लिए खड़े हुए और अंग्रेजी में बोलने के लगे। निराला जी से यह सहन न हो सका। इन्होंने वक्ता से हिन्दी में बोलने के लिए निवेदन किया; इस पर नेहरू जी बिगड़ गये और भाषण को अंग्रेजी में जारी रहने की हठ पर अड़ गये। निराला भी कम हठी नहीं थे। अन्त में नेहरू जी को अपनी हार माननी पड़ी और वक्ता को हिन्दी में ही भाषण देना पड़ा।

जिसके हृदय में हिन्दी के प्रति इतना अगाध प्रेम हो, हिन्दी की दुर्दशा पर उसके मन में क्षोभ होना आवश्यक है। ठीक ऐसी ही प्रतिक्रिया निराला जी के मन में भी हुई। अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व इन्होंने अपनी यह प्रतिक्रिया सनेही जी से इन शब्दों में व्यक्त की थी—

'देखो, मैं मरना चाहता हूं और लोग मुझे मरना देना भी नहीं चाहते। मैं किसके लिए जीऊँ ? आज भाषा और साहित्य तो राजनीति के अस्त्र-शस्त्र बन गये हैं। हिन्दी की जो दुर्दशा हो रही है, उसे मैं अब और नहीं देखा सकता, अंग्रेजी ही आज सर्वप्रिय भाषा बनी हुई है। जनता समझे या न समझे, पर वही जन-कल्याणी सभी समझी जाती है। मैंने तो हिन्दी इसलिए छोड़ दी, अंग्रेजी ही बोलता हूं।

निराला जी स्वभावतः क्रांतिकारी थे, इसीलिए ये पुरातनता के रूढ़िग्रस्त मार्गों के कट्टर शत्रु थे। हिन्दी को मुक्त छन्द इन्हीं की देन है। इस देन का, जो आज हिन्दी की गौरवमयी उपलब्धि समझी जाती है, प्रारम्भ में बहुत

विरोध हुआ। पर निराला जी इस विरोध का साहस और तर्कों से मुकाबला करते रहे। इनका संगीत-ज्ञान भी इस दिशा में इनका परम सहायक सिद्ध हुआ। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में—

'मुक्त छन्द का विरोध होने पर न जाने कितनी सभाओं में उसे सुनकर उन्होंने विरोध शान्त किया है। मुक्त छन्द की रचनाओं की नाटकीयता, स्वर का उत्थान-पतन और उसके सहज प्रवाह द्वारा भाव-प्रदर्शन करना उनके पाठ की विशेषताएँ हैं। चाहे 'जुही की कली' के समान सौंदर्य-प्रधान रचना हो चाहे 'समर में अमर कर प्राण' जैसी वीरतापूर्ण कविता हो, वह अपने उदात्त और मन्द स्वरों से भाव-सौन्दर्य को समान रूप से प्रकट कर सकते हैं। जब वह मंच पर, कम्पित जंगम नीड़ विहंगम ए न व्यथा पाने वाले' कहते हुए बादल को सम्बोधित करते हैं तो उनका स्वर ही क्रांति का भाव-चित्र-चित्र बन जाता है।'

वस्तुत: निराला का व्यक्तित्व इतना विराट् है कि उसमें अनेक विरोधी गुणों और प्रवृत्तियों का समन्वय है। ये यदि अपनी पीड़ा को चुपचाप सहन करने में समर्थ हैं तो पर-पीड़ा से सहज ही विचलित होने वाले हैं। यदि स्वाभिमान की अतिशयता है तो निर्भीकता का भी विशेष गुण है। यदि आतिथ्य सत्कार में अपना तन-मन लगाने वाले हैं तो अक्खड़ स्वभाव वाले भी हैं। नवीनता में विश्वास रखने वाले हैं तो दर्शनों को गले लगाने वाले हैं। निराला जी का यह विराट् और बहुमुखी व्यक्तित्व अपने समाज से यदि किसी प्रकार का समझौता न कर पाया तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने निराला के बहमुखी व्यक्तित्व का संकेत इन शब्दों में दिया है—

'हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में निराला का आगमन एक विद्रोह-स्वर की सूचना देता है। आरंभ से अन्त तक उनके काव्य में गतानुगतिकता के प्रति विद्रोह है। पुराने सन्त कवियों के समान उनमें अपने व्यक्तित्व को पुरुष-भाव में व्यक्त करने की तेजस्विता है। यही निराला का प्रधान आकर्षण है। सन्त कवि के साथ निराला का जगह-जगह मेल है। वहीं फक्कड़पन, वही मस्ती अन्त में अपने अन्तर की अनुभूतियों का अबाध वर्णन, अज्ञात प्रियतम के मर्म की व्याकुलता, रूढ़ियों के प्रति विप्लवी भाव, विरोध की उपेक्षा और अनंत का सन्देश, निराला-काव्य की विशेषताए हैं।'

: ३ :

निराला का काव्य-विकास

काव्य और समाज का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। कवि जिस समाज में रहता है, उसी से वह विविध अनुभव और अनुभूतियां ग्रहण करके उन पर यथावसर अपनी कल्पना का आवरण चढ़ाकर काव्य की सृष्टि करता है। यही कारण है कि प्रत्येक जागरूक कवि के काव्य का विकास शृंखलाबद्ध होता है। निराला भी जागरूक कवि थे, अतः इनका काव्य-विकास भी शृंखलाबद्ध है। इस विकास का अध्ययन दो आधारों पर किया जा सकता है—काल-क्रम के आधार पर, और प्रवृत्ति के आधार पर।

कालक्रम के आधार पर

कालक्रम के आधार पर निराला की काव्य-कृतियाँ इस प्रकार हैं—

१. अनामिका सन् १९२३ ई०
२. परिमल सन् १९३० ई०
३. गीतिका सन् १९३६ ई०
४. अनामिका (द्वितीय भाग) सन् १९३८ ई०
५. तुलसीदास सन् १९३८ ई०
६. कुक्कुरमुत्ता सन् १९४२ ई०
७. अणिमा सन् १९४३ ई०
८. बेला सन् १९४६ ई०
९. नये पत्ते सन् १९४६ ई०
१०. अपरा सन् १९५० ई०
११. अर्चना सन् १९५० ई०
१२. आराधना सन् १९५३ ई०

अनामिका

इस संग्रह में निराला की प्रारम्भिक रचनाएँ संगृहीत हैं। ये रचनाएँ 'नारायण', 'मतवाला' और 'समन्वय' नामक पत्रों में प्रथम बार प्रकाशित हुई

थीं। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ साधारण स्तर की हैं और उनका मूल्य काव्य की दृष्टि से कम तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक है; तथापि इनमें से तीन कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—पंचवटी प्रसंग, जुही की कली तथा तुम और मैं। निराला-साहित्य में ही नहीं, हिन्दी-साहित्य में भी इन कविताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं के दो ही विषय हैं—अध्यात्मक और प्रेम। पंचवटी-प्रसंग में तो अद्वैतवादी दर्शन का ही विशेष रूस से प्रतिपादन हुआ है। यथा—

मुक्ति नहीं चाहता, भक्ति रहे काफी है।
सुधाकर की कला में अंश यदि बनकर रहूं।
तो अधिक आनन्द हैं।

इन पंक्तियों में दर्शन की अपेक्षा भक्ति का अधिक महत्व स्वीकार किया गया है।

अध्यात्म के अतिरिक्त इस संग्रह में प्रेम का भी चित्रण काफी हुआ है। 'प्रेम के प्रति', 'सच्चा प्यार' आदि कविताओं में प्रेम के स्वस्थ तथा शक्तिमान स्वरूप का अंकन हुआ है। 'प्रेम के प्रति' नामक कविता में कवि प्रेम के रहस्यात्मक एवं आनन्दवादी रूप को प्रस्तुत करता है—

'प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो
उर-उर के हीरों के हार
गूँथे हुए प्राणियों को तुम
गुंथे न कभी, सदा ही सार॥

ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त इस संग्रह की कविताओं की दूसरी विशेषता है नवीन कला-विधान और मुक्त छन्दों का प्रयोग। हिन्दी साहित्य के लिए मुक्त छन्दों का प्रयोग एकदम नया था, फलतः इस प्रयोग से रूढ़िवादी आलोचकों में हलचल मच गई थी, आज तो यह प्रयोग सर्वमान्य हो चुका है।

परिमल

'परिमल' निराला की द्वितीय काव्य-कृति है। जिस प्रकार 'आँसू' से प्रसाद को, 'पल्लव' से पन्त को काव्य-प्रतिष्ठा मिली, उसी प्रकार 'परिमल' ने निराला को हिन्दी का श्रेष्ठ कवि बना दिया। नवीन कविताओं के अतिरिक्त इस संग्रह में अनामिका की भी कुछ कविताएँ संगृहीत हैं। इस संग्रह की कवि-

ताओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१. प्रार्थना-परक कविताएँ
२. प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ
३. प्रेम-विषयक कविताएँ
४. नारी-सौन्दर्य-विषयक कविताएँ
५. देश-प्रेम की कविताएँ
६. आध्यात्मिक कविताएँ
७. समाज-विषयक कविताएँ

प्रार्थना-परक कविताओं में अज्ञात सत्ता के प्रति कवि की जिज्ञासा एवं रहस्यभरी भावना के साथ-साथ आत्म-दैन्य की भावना भी अभिव्यक्त हुई है। यथा—

'डोलती है नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन—खेवनहार।
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है।'

प्रफुति-सम्बन्धी कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। प्रभाती, यमुना के प्रति, वासन्ती, प्रथम प्रभात, सन्ध्या सुन्दरी, शरद पूर्णिमा की बिदाई, बादल-राग, शेफालिका, जागो फिर एक बार आदि कविताएँ प्रकृति वर्णन की एक नवीन विधा को ही प्रस्तुत करतो है। निराला ने प्रकृति को प्रकृति के लिए नहीं, अपनी प्रेम और दर्शन-सम्बन्धी-भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अधिकांशत: ग्रहण किया है। यथा—

'क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल में
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप, चुप, चुप'
है गूंज रहा सब कहीं—'

इन पंक्तियों में सन्ध्या-वर्णन के माध्यम से अव्यक्त एवं सर्वव्यापक सत्ता की ओर इंगित किया गया है।

'परमिल' की प्रेम-विषयक कविताओं में निवेदन, उसकी स्मृति, प्रिया के प्रति, स्वप्न-स्मृति आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कविाओं में प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कवि अपनी स्वर्गीय प्रिया की स्मृति में भाव-विभोर

होकर कहता है—

'मन्द पवन के झोंकों से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के ये जाल
वह विचर रही थी वह मानस की प्रतिमा-सी
उतरी इस जगती-तल में
बन के फूलों को चुनकर बड़े भाव से
रखती थी लघु अंचल में।'

नारी-सौन्दर्य-विषयक कविताएँ 'परिमल' में अधिक नहीं मिलतीं। इसका कारण यह है कि निराला मूलतः ओज के कवि हैं, शृंगार के नहीं। फिर भी कुछ कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें नारी के सौन्दर्य का चित्रण हुआ है। यथा—

'कवियों की कल्पना तो
देखती ये भौंहें बालिका सी खड़ी
छूटते हैं जिनसे आदि रस के सम्मोहन शर
वशीकरण मारण उच्चारण भी कभी कभी।
हारे हैं सारे नेत्र नेत्रों को हेर हेर—
विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में।'

इन पंक्तियों को पढ़कर रीतिकालीन चित्र अनायास ही आंखों के सामने घूमने लगते हैं।

निराला के हृदय में देश-प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित थी, अतः इनके काव्य से देश-प्रेम के स्वर प्रारम्भ से ही सुनाई देते हैं। इस विषय में 'परिमल' की दो कविताएँ उल्लेखनीय हैं—जागो फिर एक बार और महाराज शिवाजी का पत्र। 'जागो फिर एक बार' में कवि देश को जागरण का सन्देश देता हुआ उसके निवासियों को उनके भूले स्वरूप का ज्ञान इन पंक्तियों में कराता है—

'सिंही की गोद में से छीनते हैं शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण ?
रे अजान,
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष —
दुर्बल वह—

छिनती सन्तान जब
जन्म भर अपने अधिशप्त
तप्त आँसू बहाती है ।'

'महाराज शिवाजी का पत्र' में कवि स्पष्ट कह देता है कि देश के पतन का कारण आपस की फूट है—

'जितनी विरोधी शक्तियों से
हम लड़ रहे हैं आपस में
सच मानो खर्च हैं यह यह
शक्तियों का कर्त्तव्य ही ।'

इन दोनों उद्धरणों से कवि-की देश-प्रेम की भावना तथा गम्भीरता स्पष्ट मुखरित हो रही है ।

प्रारम्भ से ही निराला को दर्शन से प्रेम रहा है, यही कारण है कि 'परिमल' में आध्यात्मिक कविताओं की संख्या पर्याप्त है । इनमें से कुछ कविताएँ हैं —अधिवास, जूही की कली, शेफालिका, परलोक, मुक्ति, वृत्ति, तुम और मैं आदि । इन कविताओं में अद्वैत भावना और भक्ति भावना का सामंजस्य है । इन कविताओं में वैष्णव-भक्तों की-सी विरह-भावना निहित है । 'तुम और मैं' कविता में स्पष्टतः अद्वैतवाद काव्यमय प्रतिपादन है । आध्यात्मिक कविताओं की भाषा में दूरूहता एवं क्लिष्टता है । उदाहरणार्थ, 'परलोक' कविता की ये पंक्तियां देखिए—

'नयन मुंदेंगे जब, क्या देंगे ?
चिर प्रिय दर्शन !
शत सहस्र जीवन पुलकित, प्लुत'
प्यालाकर्षण ?
आचरण रणमय मृबु मृदु-पद-रज ?
विद्युत धन चुम्बन !'

निराला जितने अधिक दार्शनिक हैं, उतने ही लोक में गहरी दृष्टि लेकर चलते हैं । यही कारण है कि इन्होंने समाज की अव्यवस्था तथा असमानता के जो चित्र चित्रित किये हैं वे अत्यन्त भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हैं । भिक्षुक, विधवा रास्ते के फूल से, कण आदि कविताएँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं । भिक्षुक का यह करुण-चित्र देखिए—

'वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पाता।
पेठ-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को – भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।'

गीतिका

'गीतिका' ने हिन्दी-साहित्य में महान् परिवर्तन किया। इसका मूल्यांकन करते हुए स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ने लिखा था—

'गीतिका हिन्दी के लिए सुन्दर उपहार है। उनका दार्शनिक पक्ष गम्भीर और व्यंजना मूर्तिमत्ती है। आलम्ब के प्रतीक उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे, जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति, युग के अनुसार, अपने लिए विभिन्न आधार चुना करती है। केवल कोमलता ही कविता का मापदण्ड नहीं है और कोमल कल्पना का जो माधुर्य संकलन किया है, वह उनकी कविता में शक्ति साधना का उज्ज्वल परिचायक है।'

गीतिका में नये प्रयोग किये गये हैं। इन प्रयोगों का कारण स्वयं कवि के शब्दों में इस प्रकार है—

'इन संस्कारों के फलस्वरूप हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों मुझे खटकते रहे। न तो प्राचीन 'ऐसो सिय रघुवीर भरोसो' शब्दावली अच्छी लगती थी, यद्यपि इसमें भक्त-भाव की कमी न थी, न उस समय की आधुनिक शब्दावली 'तोप-तीरें सब धरी रह जायेंगी, मगरूर सुन' यद्यपि इसमें वैराग्य की मात्रा यथेष्ट थी। हिन्दी गवैयों का समय पर आना मुझे ऐसा लगता था, जैसे मजदूर लड़की का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंक कर निश्चित हुआ······प्राचीन गवैयों की शब्दावली संगीत की रक्षा के लिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था· मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल प्रायः सभी प्रचलित हैं। प्राचीन ढंग रहने पर भी वे नवीन कंठ से नया रंग पैदा करेंगी।'

गीतिका में रहस्यवादी गीतों की प्रमुखता है। इन गीतों में रहस्यवाद के अनेक रूप परिलक्षित होते हैं। जैसे जीव और ब्रह्म-परक रहस्यवाद, प्रकृति-विषयक रहस्यवाद, आध्यात्मिक रहस्यवाद आदि। उदाहरण के लिए आध्यात्मिक रहस्यवाद की ये पंक्तियां प्रस्तुत हैं

'कैसी बजी बीन ?
सजो मैं दिन-रात ?

हृदय में कौन जो छोड़ता बाँसुरी ?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी ;
लीन स्वर सलिल में मैं, बन रही मीन ?'

रहस्यवादी गीतों के अतिरिक्त 'गीतिका' में प्रेम और नारी-सौंदर्य-सम्बन्धी गीत भी हैं, किन्तु इनमें हृदय और आत्मा के सौंदर्य का ही चित्रण है, कामुक मन की वासना का नहीं। 'गीतिका' की महिमा का प्रतिपादन आचार्य नन्द-दुलारे वाजपेयी ने इन शब्दों में किया है—

'असाधारण जीवन-परिस्थितियों और भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण (गीतिका के गीतों में) नहीं है, उनमें व्यापक जीवन का प्रवाह व संयम है। गति के साथ आनन्द और विवेक के साथ भी आनन्द मिला हुआ है। दोनों के संयोग से बना हुआ यह गीति-काव्य विशेष स्वस्थ सृष्टि है।'

अनामिका (द्वितीय भाग)

इस संग्रह में 'अनामिका' प्रथम भाग की कोई भी कविता नहीं है। यह संग्रह कवि की प्रौढ़ता का परिचायक है। इसकी अधिकांश कविताएं हिन्दी साहित्य के गौरव तथा प्रगति की मापदण्ड हैं। यथा—राम की शक्ति-पूजा सरोज-स्मृति, सम्राट् अष्टम एडवर्ग के प्रति, बनवेला, दान, प्रेयसी, रेखा, तोड़ती पत्थर, ठूंठ, खण्डर के प्रति, नर्गिस, किसान की नई बहू की आँखें आदि। इस संग्रह तक आते-आते कवि की बन्धनमुक्त-प्रियता और भी अधिक प्रौढ़ हो गई है। वह केवल सामाजिक एवं साहित्यिक बन्धनों को ही नहीं ठुकराता, वरन् स्वामी विवेकानन्द और विश्व कवि रवीन्द्र के प्रभाव से भी मुक्त दिखाई पड़ता है। किसी भी प्रकार का बन्धन उसे स्वीकार नहीं—

'तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकले फिर
गंगा-जल-धारा ।'

श्री धनंजय वर्मा ने इस संग्रह का परिचय इन शब्दों में दिया है—

'परिमल के बाद 'अनामिका' ही निराला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है अनामिका स्वच्छन्दवाद का, दिव्य-प्रेम और उन्मुक्त सौंदर्य के साथ यहाँ जीवन के यथार्थ का कटु अनुभव व्यक्त करने वाली प्रगतिशील रचनाएँ हैं। जिनमें भाव-परिवर्तन के साथ शैली भी परिवर्तित होती है। निराला जो अब तक जीवन में एक बड़े कठोर सत्य का सामना करना पड़ा है और फलतः उनका व्यक्तित्व भी उसने प्रभावित हुआ है। समाज का परिवेश उनकी चेतना को एक नई धारा भी देता है। निरन्तर विरोध और आलोचनाओं से संघर्ष करते हुए उनके जीवन में वे क्षण भी आये हैं; जहां निराशा और पराजय ध्वनित होती है, साथ ही अपनी क्रान्ति और विद्रोह, उद्दाम आत्म-विश्वास का सम्बल भी वे नहीं छोड़ते और व्यंग्य उनका तीव्र हो जाता है। इसी काल में निराला को एक सांस्कृतिक कलाकार का परिवेश भी मिलता है। निराला के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनका विरोधाभास है। एक ही ग्रन्थ में विरोधाभास का वह रूप उनकी व्यापकता और विविधता, विराटता और विस्तार का ही परिणाम है। हमारे मत में सब दृष्टियों से 'अनामिका' निराला का भी नहीं पूरे स्वच्छन्दतावादी युग का प्रतितिधि काव्य-संग्रह है।

तुलसीदास

'तुलसीदास' निराला का महत्त्वपूर्ण काव्य है. इसमें छायावाद काव्य-कला का चरम परिष्कार दृष्टिगोचर होता है। तुलसीदास में व्यक्ति के अन्तर्मन का मनोवैज्ञानिक भूमि पर विश्लेषण और इतिहास के परिपार्श्व में संस्कृति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, साथ ही प्रकृति के सूक्ष्म अव्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक सत्ता का विवेचन भी है। श्री गिरीशचन्द्र तिवारी के अनुसार इस काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं—

१. मानस की प्रेरणा तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली के वाक्बाण से बिद्ध होकर राम-कथा की ओर प्रवृत्त हुए थे, ऐसा अनुश्रुतियों में आया है। इसी कथा को आधार मानकर कवि ने 'तुलसीदास' में सम्भव प्रमाणों की कल्पना से अनूठे भाव उत्पन्न किए हैं। सर्वप्रथम भूमिका रूप में तुलसीदास को समष्टि की ओर प्रवृत्त न होने की बात बताकर कवि ने इस्लाम धर्म का उन्नत रूप दिखाया है। इसके फलस्वरूप युवक का ध्यान भारतीय संस्कृति के ह्रासोन्मुख समाज की ओर जाता है।

२. निराला ने चरित्र-चित्रण में प्राचीनता एवं नवीनता के मेल का ध्यान सर्वत्र रखा है। तुलसीदास में संगृहीत घटनाओं को नाटकीय रूप मिला है। छायावाद साहित्य में तुलसीदास' एक ऐसा ऐतिहासिक काव्य है। जिससे हमारे मध्यकालीन समाज का पूर्ण चित्र पाठकों के समक्ष आ जाता है। मानस के तुलसी और निराला के तुलसी एक ही हैं। मध्यकालीन सांस्कृतिक स्थितियों तथा सामाजिक वातावरण का चित्रण दोनों कवियों ने किया है। उस काल में वर्ण-व्यवस्था एवं 'स्वधर्मे निधनं श्रेय:' का सिद्धांत पूर्णतः विलीन हो चुका था। पर-धर्म को ही श्रेयस्कर मानने की स्थापना हो चुकी थी।

३. निराला ने नारी की दशा पर अत्यन्त नवीन दृष्टि से विचार किया है। तुलसी की पत्नी रत्नावली उन्हें सरस्वती-सी प्रबुद्ध करने वाली शक्ति के रूप में वर्णित है। ऐसा नारी रूप छायावादीन्युग में किसी कवि ने नहीं खींचा है। इस प्रकार के चरित्र का निर्माण कर कवि ने रीतिकालीन परम्परा को अत्यन्त नीचा दिखाया है।

४. आधुनिक और मध्यकालीन वैवाहिक जीवन का चित्र भी बड़े अच्छे ढंग से कवि द्वारा वर्णित है। विवाह होने के उपरान्त युवक कैसे पत्नीरत हो जाते हैं कि उन्हें अपने पुरुष-कर्म का उचित ज्ञान ही नहीं रह जाता, किन्तु रत्नावली वह नवोढ़ा है, जिसमें एक ओर घोर विलास के भाव भी हैं और दूसरी ओर उसमें पति को युग-निर्मायिक या द्रष्टा बनाने का नारीत्व भी छिपा है। उसे कवि ने शुद्ध सरस्वती का रूप दिया है। कवि ने नारी के इन दो रूपों को दिखाकर पुरुषों को अत्यधिक प्रबुद्ध बनाने का प्रयत्न किया है। साथ ही जैसा चित्र कवि ने प्रकृति का खींचा है, वैसे अन्यत्र कम मिलते हैं। उसने प्रकृति को चेतनापूर्ण माना है। जिसमें तुलसी का मन-मधुकर पूर्ण प्रबुद्ध हुआ है। रत्नावली का रूप —

> 'संकुचित खोलती श्वेत पटल
> बदली कमला तिरती सुखजल
> प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि-रेखा।

इस प्रकार नारी रूप में रत्नावली का नारीत्व उषा के उस रवि-रेखा के सौन्दर्य के समान है, जो पृथ्वी पर आलोकमय चेतना प्रसारित करती है और विश्व चैतन्य हो सुकर्म की ओर प्रवृत्त होता है।

५. निराला नवीनता के पुजारी हैं। इस काव्य में कवि ने जिस प्रकार तुलसी के मन को ऊर्ध्वगामी रूप दिया है, वह 'राम की शक्ति-पूजा' में भी वर्तमान है। हनुमान का तथा राम के मन का ऊर्ध्वगमन। शक्ति की भी कल्पना

'राम की शक्ति-पूजा' में जैसी है, वैसी ही 'तुलसीदास' में भी; अन्तर इतना ही है कि कवि ने लोक-नारी को शारदा स्वरूपा मान एक ऐसी शक्ति की कल्पना की है जिससे सारा समाज चैतन्य हो उठा है।

६. सामाजिक व्यंग्य बड़े ही खुलकर आये हैं, मायके में लड़कियों पर किस प्रकार के व्यंग्य चलते हैं, वर और कन्या पक्ष के बीच किस प्रकार व्यंग्य बाण चलाये हैं, इन सारी बातों का ध्यान कवि को रहा है।

इस प्रकार निराला ने ऐतिहासिकता में नवीनता के योग से इस काव्य को पूर्ण बनाया है।

कुक्कुरमुत्ता

'कुक्कुरमुत्ता' व्यंग्य-प्रधान कविताओं का संग्रह है। कुक्कुरमुत्ता एक प्रकार की घास ईं जो स्वयं उगती है। 'कुक्कुरमुत्ता' कविता की कहानी इस प्रकार है—किसी नवाब ने फारस से गुलाब का एक पौधा मँगवाकर अपने बाग में लगवाया। वहीं पर एक कुक्कुरमुत्ता भी उगा हुआ था। वह गुलाब को उसकी ऐंठ के कारण बहुत फटकारता, किन्तु गुलाब पर इसका कोई प्रभाव न पड़ता। एक दिन खादिम की बेटी कुक्कुरमुत्ता का कबाब खाकर आई और नवाबजादी बहार से उसकी बहुत प्रसंसा की। खादिम की बीबी ने नवाबजादी को भी कुक्कुरमुत्ता का कबाब खिलाया। उसने इसकी नवाब से तारीफ की। नवाब ने माली को कुक्कुरमुत्ता लाने की आज्ञा दे दी, किन्तु बाग में तो केवल गुलाब थे। क्रोध में आकर नवाब ने कुक्कुरमुत्ता लगाने की तथा गुलाब के पौधों को उखाड़-फेंकने की आज्ञा दे दी। पर उस बेचारे को क्या पता था कि कुक्कुरमुत्ता उगाया नहीं जाता, वह तो स्वयं ही उगता है।

वास्तव में कुक्कुरमुत्ता और गुलाब क्रमशः दीन-हीन जन और आभिजात्य वर्ग के प्रतीक हैं। कुक्कुरमुत्ता की आवश्यकता दिखाकर कवि ने इस दिशा में संकेत किया है कि समाज को इन असंख्य उपेक्षित दीन प्राणियों की भी आवश्यकता है। साथ ही एक व्यंग्य यह भी है—कुक्कुरमुत्ता गुलाब की भाँति परमुखापेक्षी न होकर स्वावलम्बी होता है, परन्तु उसे कोई नहीं पूछता। इसी प्रकार वर्तमान समाज में स्वावलम्बी व्यक्ति उपेक्षित हैं और परावलम्बी व्यक्तियों का सम्मान किया जाता है। इस संग्रह की कविताओं में प्रेम, कला तथा राजनीति पर भी तीखे व्यंग्य किये हैं। मूर्ख कलाकारों का यह चित्रण देखिये—

'देखा उपन्यास मैंने,
श्रीगणेश में मिला—
पृय असनेहमयी श्यामा मुझे प्रेम है।'

इस संग्रह की 'मास्को डायलाग्ज' कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें सस्ते नेताओं पर तीव्र प्रहार किये गये हैं। उदाहरणार्थ, ये पंक्तियाँ देखिए—

'फिर बोले— वक्त नहीं मिलता,
बड़े भाई साहब का बँगला बन रहा है,
देखभाल करता हूँ।
फिर कहा—मेरे समाज में
बड़े बड़े आदमी हैं,
एक से है एक मूर्ख,
फाँसना है उन्हें मुझे,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।'

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का मत है कि कुक्कुरमुत्ता में कवि के व्यंग्य व्यंग्य न होकर स्वयं उनके उपेक्षित जीवन की खोज है—

' कुक्कुरमुत्ता में तो व्यंग्य ही निखर पाया है, न उसका कोई स्तर ही है। प्रयोग नवीन अवश्य है, परन्तु अवांछनीय नवीनता ग्राह्य प्राचीनता से भी हानिकारक हो जाती है। ऐसा लगता है कि निराला विरोधों के बीच में गुजरकर प्रत्येक वस्तु का उपहास करता हुआ अपने प्रति किये अत्याचारों का बदला लेना चाहता है।'

अणिमा

इस संग्रह में दो प्रकार की कवितायें हैं—एक तो व्यक्ति-विशेष पर, और दूसरी अन्य विषयों पर। व्यक्ति-विशेष पर लिखी जाने वाली कविताएँ हिन्दी साहित्य के लिए एकदम नई भेंट हैं। इसमें सन्त कवि रैदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कविवर प्रसाद, महादेवी, विजयलक्ष्मी पंडित, बुद्ध आदि पर लिखी गई कवितायें विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इन कविताओं से कवि की गुण-ग्राहकता एवं हृदय की विशालता का बोध होता है। प्रसाद के प्रति कवि के मन में कितनी श्रद्धा थी, यह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है—

'तुम बसन्त से मृदु, सरसी के सुप्त सलिल पर,
मन्द अनिल से उठा गए हो कम्प मनोहर ।
× × ×
स्वप्न एक आंखों में मन में लक्ष्य एक स्थिर,
पार उतरने की संसृति में एक टेक चिर,
अपनी ही आँखों का तुमने खींचा प्रभात ।
× × ×
पके खेत लहरे सोना ही सोना दमका,
सुखी हुए सब लोग, देश में जीवन दमका ।'

इस संग्रह की अन्य विषयों से सम्बन्धित कविताओं में से कुछ कवितायें काफी लम्बी हैं । यथा - सहस्राब्दि, उद्बोधन, स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज ! वस्तुतः 'अणिमा' में छायावाद और प्रयोगवाद दोनों का समन्वय है । इस संग्रह को देखने ने प्रतीत होता है कि कवि छायावाद की सीमा पार कर प्रगतिवाद की सीमा पर आ खड़ा हुआ है ।

बेला

यह संग्रह भी निराला का नवीन प्रयोग है । इसमें अधिकांशतः उर्दू-छन्दों का प्रयोग किया गया है । सम्भवतः हिन्दी में गजलें निराला ने ही पहली बार लिखी थीं, जो इस संग्रह में संगृहीत हैं । कुछ गजलों में कवि ने रहस्यात्मक अभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है और कुछ में समाज तथा देश के विभिन्न पक्ष प्रस्तुत किये गये हैं यथा—

'रूप की धारा के उस पार, कभी धँसने भी दोगे मुझे ?
विश्व की श्यामल स्नेह सवार, हँसी हँसने भी दोगे मुझे ?
वैर यह बाधाओं से अन्ध, प्रगति में दुर्गति का प्रतिबन्ध !
मधुर उर से उर जैसे गन्ध, कभी बसने भी दोगे मुझे ?'

'वेला' में कवि ने अनेक नवीन प्रयोग किए हैं, जिनमें उसे सफलता मिली है । एक आलोचक के शब्दों में—

'कुल मिलाकर 'बेला' को हम एक प्रयोग ही मानते हैं । गेयता के साथ सहजता का ध्यान भी यहाँ रखा गया है । सहज बोध और उच्च काव्य की सह-स्थिति कुछ कल्प्य है । सही है कि 'बेला' में विषय और भावों का विस्तार

है। व्यापकता भी है, लेकिन गहनता गाम्भीर्य का समकक्ष दावा भी हम उसके विषय में नहीं कर सकते। काव्य का एक रूप जन-काव्य भी होता है और उसी की दृष्टि से 'वेला' का महत्त्व है। उर्दू-शैली में हिन्दी-काव्य को ढालने का वह प्रयोग मात्र है। प्रारम्भिक प्रयोग की सीमाएँ इसमें अपरिहार्य हैं। एक मकता उर्दू की परम्परा का और दूसरा हिन्दी की परम्परा का वह प्रभाव नहीं दे पाता, यह मिला-जुला रूप भले दें। जहाँ विशुद्ध उर्दू की शैली अपनाई गई है, उसे हिन्दी का भी कठिनता से कहा जायेगा। कोई आश्चर्य नहीं कि 'बेला' को लोग विशुद्ध हिन्दी में परिगणित न करें। साथ ही 'बेला' में वैविध्य भी हैं। कुछ कविताएँ तो अवश्य निखरी हैं, परिष्कृत कला भी है। लेकिन कई कविताएँ अस्पष्टता और दुरूहता की भी शिकार हैं और वह अस्पष्टता-दुरूहता किसी उच्चतम भाव या मौलिकतम विचार के कारण आई हो, ऐसी बात भी नहीं। भावों का विश्रृंखलित रूप और एकान्विति का ह्रास इनमें मिलता है। कदाचित यह विश्रान्तिकाल का प्रभाव हो। 'वेला' का महत्त्व प्रयोग के रूप में ही है।'

नये पत्ते

'कुक्कुरमुत्ता' में कवि के मन में जो तीखी व्यंग्य-शक्ति फूटी थी, वह 'नये पत्ते' में आकर काफी प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई है। इस संग्रह की, राजे ने रखवाली की थोड़ों के पेट में आना बहुतों को आना पड़ा, दगा की, झींगुर डटकर बोला, कुत्ता भौंकने लगा, देवी सरस्वती. तिलांजलि, डिप्टी साहब आये, मँहगू मंहगा आदि कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं में कवि के व्यंग्य अनेकमुखी हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे कवि समाज के पर्दों में झाँक-झाँककर व्यंग्य कर रहा है। 'मँहगू मंहगा रहा' में नेताओं की पोल का यह पर्दाफाश देखिए—

> 'मँहगू सुनता रहा।
> कम्यू को लादता है लकड़ी, कोयला, चमड़ा
> लुकुआ ने मँहगू से पूछा, क्यों हो मंहगू कुछ
> अपनी तो राय दो ?
> आजकल, कहते हैं, ये भी अपने नहीं ?

मँहगू ने कहा, हाँ कम्यू में किरिपा के
गोली जो लगी थी,
उसका कारण पंडित जी का शागिर्द है,
रामदास का काँग्रेसमैन बताने वाला,
जो मिल का मालिक है।
यहाँ भी वह जमींदार बाजू से लगा ही है।
कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं,
कभी कभी लाखों पर हाथ साफ करते हैं।'

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह काव्य-संग्रह कवि की व्यंग्य-शक्ति परिष्कृत सशक्त और कलात्मक रूप सफलता से प्रस्तुत करता है।

अपरा

'अपरा' में कोई कविता नहीं, वरन् पूर्ववर्ती काव्य-संग्रह में से ही सुन्दर-सुन्दर कविताओं को चुनकर इसका नाम ग्रंथित कर दिया है। इस संकलन की प्रमुखतम विशेषता यह है कि इसमें निराला के काव्य-विकास का क्रमिक इतिहास एकत्र मिल जाता है। क्रमिक-विकास के साथ यह संकलन निराला-काव्य के विभिन्न प्रयोगों का भी सूचक है।

अर्चना

इस संग्रह में कवि के १९५० ई० के लिखे गये सम्पूर्ण गीतों को संकलित कर दिया गया है; फलतः गीतों के विषयों में वैविध्य है। स्थूलतः इन गीतों को दो शीर्षकों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है। आत्मवादी गीत और जनवादी गीत। इन गीतों में कवि ने संगीतात्मकता तथा गेयता की ओर विशेष ध्यान रखा है। स्वयं कवि के शब्दों में—

'गीत के साथ गले का सम्बन्ध पड़ता है। प्रस्तुत गीतों की तद्वत सफलता के न होने का कारण खड़ी बोली का पाठ है, इसलिए गले से सफलतापूर्वक न उतर जाना है। साधारण जन देहातों में यह भाषा नहीं बोलते। उनके गले और आधुनिक शरीर की नेमि अभी तक मँजकर मिश्रण नहीं हुई। खड़ी बोली की गाड़ी के चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत (अर्चना के गीत) जैसे उसी की पूर्ति करते हैं। यथाशक्ति सुरक्षित शब्दों की शृंखला रखी

गई है जो सहज ही उच्चरित हो जाय, जिससे आधुनिक गीतों की लय और स्वर कम्पन शब्दोच्चारण की दीवारों को पार करके अपनी सत्यता पर समासीन हो।

आराधना

इस कृति में कवि के सन् ५१ और ५२ के लिखे हुए गीत संगृहीत हैं। इन गीतों में सत्य, शिव एवं सुन्दर तत्त्व की प्रधानता है। इस संग्रह की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके गीतों में गेयता के साथ-साथ साहित्यिकता का भी पूर्ण गठबन्धन है। अधिकांश गीत रहस्य-परक हैं। यह रहस्यमयता कवि के जीवन-संघर्षों की प्रतिक्रिया है। इन गीतों में विषाद और निराशा के स्थान पर आस्था का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। यथा—

'हारता है मेरा मन विश्व के समर में जब
कलरव से मौन ज्यों
शांति के लिए त्योंही
हार बन रही हूँ प्रिय, गले कि तुम्हारी मैं
विभूति की गंध की, तृप्ति की, निशा की !
जानती हूँ तुम में ही
शेष है दान—मेरा अस्तित्व सब
दूसरा प्रभात जब फैलेगा विश्व में
कुछ न रह जायेगा मुझमें तब मुझ में देने को।'

अतः कहा जा सकता है 'अनामिका' से 'आराधना' तक कवि के कवि का निरन्तर शृंखलाबद्ध विकास होता रहा है। इस विकास में कवि के जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों का विशेष योग-दान रहा है।

प्रवृत्ति के आधार पर

प्रवृत्ति के आधार पर निराला के काव्य को चार वर्गों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है—

१. रहस्यवादी कविताएँ—किसी अलौकिक एवं परम सत्ता के प्रति आत्म-समर्पण अथवा विस्मय या जिज्ञासा भाव रहस्यवादी कहलाता है। हिन्दी साहित्य के लिए यद्यपि रहस्यवाद कोई नया वाद नहीं है, किन्तु मध्यकालीन

और आधुनिक-कालीन रहस्यवाद के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर है। रहस्यवाद का ग्रहण छायावादी कवियों की एक प्रमुख प्रवृत्ति निराला में भी यह प्रवृत्ति पर्याप्त रूप से दृष्टिगोचर होती है। इनकी रहस्य भावना पर स्वामी शंकराचार्य और विवेकानन्द का गंभीर प्रभाव है। सिद्धान्त: ये अद्वैतवादी थे। इनकी अनेक कविताएँ रहस्य भावनाओं से ओतप्रोत हैं। 'तुम और मैं' कविता इस वर्ग की कविताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके प्रत्येक काव्य-संग्रह में रहस्यवादी कविताओं की संख्या काफी है।

२. **छायावादी कविताएँ**—हिन्दी साहित्य में छायावाद को लाने वाले जो चार कवि माने जाते हैं उनमें से एक निराला भी हैं। छायावाद की मुख्य विशेषताएँ हैं—अन्तर्जगत का चित्रण, उद्दाम वैयक्तिकता, गीतात्मकता, प्रकृति के प्रति नूतन दृष्टिकोण, वेदना का अतिरेक, प्रेम और शृंगार का प्राचुर्य, रहस्यभावना, अभिनव अलंकार और छन्द आदि। जिन कविताओं में वे प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, वे सब छायावादी कविताओं के वर्ग में आती हैं। 'परिमल' की अधिकाँश कविताएँ इसी वर्ग से सम्बद्ध हैं।

३. **प्रगतिवादी कविताएँ**—जब छायावाद का स्वप्निल लोक कवि को आत्मतुष्टि न दे सका तो वह इसी जगत् के सम-विषम धरातल पर उतर आया और जग-जीवन की विषमताओं एवं समाज के सर्वथा उपेक्षित मनुष्यों को अपना विषय बनाकर वह प्रगति के गीत गा उठा। प्रगतिवाद में शोषित समाज के प्रति विशेष रूप से सहानुभूति प्रकट की गई है। अनामिका द्वितीय भाग के पश्चात् निराला का कवि प्रगतिवाद की ओर उन्मुख है। इस वर्ग की कविताओं का 'भिक्षुक' और 'विधवा' कविता प्रतिनिधित्व करती हैं।

४. **प्रयोगवादी कविताएँ**—प्रयोगवाद की प्रमुखतम विशेषता है रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह और नवीनता का ग्रहण। इस दृष्टि से निराला में प्रयोगवाद के अंकुर आरम्भ से ही दिखाई पड़ते हैं। इनका प्रत्येक काव्य-संग्रह स्वयं में एक प्रयोग है। 'कुक्कुरमुत्ता' और 'बेला' की अधिकांश कविताएँ प्रयोगवादी हैं।

इस प्रकार निराला की कवि प्रतिभा हिन्दी की समस्त प्रवृत्तियों को समेट कर विकसित और पुष्पित होती है। वस्तुतः निराला का काव्य-विकास अनायास ही नहीं है, वरन् एक सुसम्बद्ध शृंखला से आबद्ध होकर पनपा है।

: ४ :

निराला की रहस्यानुभूति

छायावाद का जन्म जिन परिस्थितियों में और जिस ढंग से हुआ, उन्होंने आलोचकों के मस्तिष्कों के तन्तु हिला दिए। छायावाद के सम्बन्ध में सबसे अधिक भ्रान्तिपूर्ण धारणा यह रही है कि अधिकांश आलोचक छायावाद और रहस्यवाद के मध्य कोई निश्चित विभाजन रेखा खींचने में असमर्थ रहे, बल्कि छायावाद को ही रहस्यवाद का एक रूप समझ बैठे। इस प्रकार उल्लेखनीय मत ये हैं—

१. 'छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ कवि उस अन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम का अनेक प्रकार से चित्रण करता है।'

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२. 'इसी से इस अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर उसके निकट आत्म-निवेदन करना इस काव्य (छायावाद काव्य) का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद नाम दिया गया।'

—महादेवी वर्मा

३. 'छायावाद ही जब अध्यात्म का पर्दा अपने ऊपर डाल लेता है तो वह रहस्यवाद का रूप धारण कर लेता है।'

—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

यदि इन मतों की समालोचना की जाये तो ये निराधार ही सिद्ध होते हैं जहाँ तक शुक्ल जी के मत का सम्बन्ध है, उसका खण्डन स्वयं शुक्ल जी ने ही यह मानकर कर दिया है कि सभी छायावादी कविताएँ रहस्यवादी नहीं कही जा सकतीं। वे लिखते हैं :—

'उनमें से (छायावादी कविताओं में से) कुछ तो विलायती अभिव्यंजनावाद के आदर्श पर रची हुई बंगला-कविताओं की नकल पर और कुछ अँग्रेजी-कविताओं के लाक्षणिक चमत्कारपूर्ण काव्य, शब्द प्रति शब्द उठाकर जोड़ी

जाती हैं।'

महादेवी का 'छायावाद के दूसरे सोपान को रहस्यवाद मानना' भी असंगत है। महादेवी के मन के अनुसार पहले छायावाद का आविर्भाव होना चाहिए और बाद में रहस्यवाद का इतिहास इसके बिल्कुल विपरीत है। इतिहास में पहले रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है और उसके बहुत वर्ष बाद छांयावाद की। रहस्यवाद का इतिहास काफी प्राचीन है। हिन्दी कविता, में रहस्यवाद १४-१५ शताब्दी से ही मिलना आरम्भ हो जाता है, जबकि छायावाद का जन्म सं० १९०९ में प्रसाद की कविताओं से होता है। छायावाद का जनक कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में मत-वैभिन्य हो सकता है, किन्तु छायावाद आधुनिक काल की ही एक विशेष प्रवृत्ति है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता।

इसी प्रकार डा० वार्ष्णेय का मत भी मान्य नहीं है। अध्यात्म का पर्दा डालकर रहस्यवाद छायावाद नहीं बन जाता, बल्कि रहस्यानुभूति तो छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

भ्रान्ति के कारण

छायावाद और रहस्यवाद में अनेक समानताएँ हैं, जिन्होंने अनेक आलोचकों को भ्रम में डाल दिया है इन समानताओं में से प्रमुख ये हैं—

१. छायावाद में रहस्यवाद की भांति उद्दाम वैयक्तिकता सौंदर्य एवं प्रेम की प्रधानता है। सौन्दर्य और प्रेम स्वयं जिज्ञासा तथा रहस्य के विषय हैं।

२. छायावाद और रहस्यवाद दोनों में आत्मानुभूति के प्रकाशन का प्राधान्य है।

३. दोनों ही प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ हैं। यदि रहस्यवाद ने मध्ययुग के जन-मानस में भारतीय आदर्श तथा निर्वाण-साधना-पद्धति को पुनर्जीवित किया तो छायावाद ने आधुनिक युग की रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह किया।

इन समानताओं के होते हुए भी छायावाद और रहस्यवाद में पर्याप्त अन्तर है—

१. छायावाद में आत्मा और आत्मा का अर्थात् ससीम का ससीम के साथ सम्बन्ध रहता है, किन्तु रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा का अर्थात् ससीम और असीम का गठबन्धन होता है। श्री शांति प्रिय द्विवेदी के शब्दों में—

'छायावाद में यदि एक जीवन के साथ दूसरे जीवन की अभिव्यक्ति है,

अथवा आत्मा का आत्मा से सन्निवेश है तो रहस्यवाद में आत्मा का परमात्मा के साथ। एक में लौकिक अभिव्यक्ति है तो दूसरे में अलौकिक।'

२. छायावाद में अव्यक्त या परोक्ष-सत्ता के प्रति केवल जिज्ञासा होती है, किन्तु रहस्यवाद में उनके प्रति-प्रेम है।

३. छांयावादी कवि प्रकृति के कण-कण में किसी अव्यक्त असीम सत्ता की छाया देखकर आश्चर्य से पुलकित हो उठता है, किन्तु रहस्यवादी कवि को प्रकृति के कण-कण में परोक्ष प्रियतम के प्रणय-सन्देश सुनाई देते हैं।

४. रचना-विधान की दृष्टि से भी दोनों में अन्तर है। छायावाद में छन्दों का वैविध्य है और रहस्यवाद में एकरूपता गीति-शैली का ही प्राधान्य। यही कारण है कि रहस्यवाद में किसी प्रबंध-काव्य की सृष्टि न हो सकी, जबकि छायावाद में अनेक प्रबन्धकाव्य लिखे गये हैं।

इस प्रकार रहस्यवाद और छायावाद एक नहीं, बल्कि अपने-अपने युगों की दो विभिन्न एवं विशिष्ट काव्य धाराएँ हैं। प्रो० शिवनन्दन प्रसाद के शब्दों में—

'वस्तुत: छायावाद काव्य में उस दृष्टिकोण को कहना अधिक संगत है, जिस में बाह्य जगत् और व्यक्ति के आन्तरिक जगत् में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव की स्थापना होती है। इसके आगे रहस्यवाद में उस स्थिति का चित्रण रहता है, जब ससीम आत्मा विश्व के सौन्दर्य में असीम परमात्मा के लिए सुन्दर रूप का दर्शन कर उससे तादात्म्य-स्थापना के निमित्त आकुल हो उठती है और माधुर्य भाव पर आधारित प्रेम की साधना उस अनन्त अगोचर से तदाकार होने का प्रयास करती है।'

रहस्यवाद के भेद

रहस्यवाद के दो भेद हैं—साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद। साधनात्मक रहस्यवाद प्रमुखत: शास्त्र एवं सम्प्रदाय की लकीरों पर चलता है। इसमें ब्रह्म, जीव, प्रकृति और हठयोग आदि की तात्विक मान्यताओं का विवेचन होता है, इसमें अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम-भावना प्रदर्शित करने का कोई अवकाश नहीं है, क्योंकि इसमें चिन्तन की प्रधानता रहती है, इसीलिए इसे 'दार्शनिक रहस्यवाद' भी कहते हैं। भावात्मक रहस्यवाद का भौतिक क्रियाओं एवं प्राचीन रूढियों से विशेष सम्बन्ध नहीं होता। इसमें ससीम आत्मा

का असीम सत्ता प्रणय-ग्रंथन किया जाता है, जिसमें विरह-निवेदन की प्रधानता होती है। इसका मूल स्वर अद्वैतवाद है, अतः भावात्मक रहस्यवादी अपने अंतिम सोपान पर पहुंचकर उस विराट सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करके तदाकार ही हो जाता है, वह अपने लाल की लाली देखकर स्वयं ही लाल बन जाता है, अथवा प्रियतम के मधुर भावना से उसे समस्त जगत् मधुरही दिखाई देने लगता है। भावात्मक रहस्यवाद में चिन्तन गौण और भाव प्रधान होते हैं। इसे 'काव्यात्मक रहस्यवाद' भी कहते हैं।

निराला की रहस्यानुभूति

छायावादी कवियों में निराला का महत्त्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण स्थान है, इनकी दार्शनिकता अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा अत्यन्त गूढ़ और चिन्तन-प्रधान है। यदि यह कहा जाये कि छायावाद के क्षेत्र में इन्होंने ही दार्शनिक रहस्यवाद की सफल प्रतिष्ठा की तो अनुचित न होगा वास्तव में इनका व्यक्तित्व ही निराला है, जिसके विशाल मस्तिष्क में विवेकानन्द से प्रभावित दर्शन के तर्क-वितर्क में और जिसके भावुक हृदय में कवि की कोमल भावनाओं की पयस्विनी अजस्र धारा से प्रभावित होती रहती थी। सुप्रसिद्ध अंग्रेज-कवि कॉलरिज का कथन है—

'No man was ever a great poet without being at the same time a profound philosopher.'

अर्थात् गम्भीर दार्शनिक हुए बिना कोई भी कवि महान् नहीं बन सकता। निराला के विषय में ये पंक्तियां बिल्कुल सही हैं।

निराला की रहस्यानुभूति में केवल कवि की अनुभूतियाँ नहीं, एक दार्शनिक का गूढ़ चिंतन भी है, इसलिए इसका दर्शन सरस भी है और नीरस भी। इन्होंने परम्परा, आत्मा आदि सभी विचारों को एक दार्शनिक की भाँति सोचा है और एक कवि की भाँति उनका निरूपण किया है। जहाँ तक आत्मा-परमात्मा का संबंध है, ये इस विषय में अद्वैतवाद के समर्थक हैं। 'तुम और मैं' कविता इस विषय की बहुत प्रसिद्ध कविता है। इसमें जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता स्थापित की गई है। यथा—

'तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजनी भाषा;

तुम नन्दन-वन-घन-विपट
और मैं सुख-शीतल-तन शाखा;
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिनानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।'

यह तात्विक एकता का निरूपण कबीर जैसा ही है, अन्तर है तो केवल प्रतिपादन शैली का। कबीर की भाषा एक 'मसि कागज न छूने वाले' की थी और निराला की छायावाद से परिष्कृत एक सुशिक्षित एवं विचारक की। यह कविता निराला की उन कविताओं में अग्रगण्य है, जो अपनी दार्शनिकता एवं बौद्धिकता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। बौद्धिकता के प्राधान्य के कारण ही कहीं कहीं इनकी कविताएँ कविता न रहकर केवल दर्शन का प्रतिपादन करने वाली नीरस पंक्तिमात्र रह गई हैं। यथा—

'अति गहन विपिन में जैसे
गिरि के तट काट रही है—
नव जल धाराएँ वैसे
भाषाएँ सतत बही हैं।'

निराला का अपने ब्रह्म में अटूट विश्वास है इनका मत है। कि इस नाम-रूपात्मक जगत् का संचालन करने वाली कोई अदृश्य, अज्ञात एवं चेतन सत्ता अवश्य है। उसे ही सम्बोधित करते हुए कवि कहता है—

'एक दिन थम जायेगा रोदन
तुम्हारे प्रेम अंचल में
लिपट स्मृति बन जाएँगे कुछ कन
कनक सींचे नयन जल में।'

कहीं-कहीं निराला ने भी स्वामी विवेकानन्द की भाँति अपने आराध्य को नारी-रूप में संबोधित किया है—

'प्रिय कोमल पदगामिनी मन्द उतर
जीवन्मृत तरु-तृण गुल्मों की पृथ्वी पर

हँस-हँस निज पथ आलोकित कर
नूतन भर दो ।'

जिस प्रकार विवेकानन्द जीव और ब्रह्म के मध्य माया के आवरण को स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार निराला की भी यही मान्यता है माया के खेल विचित्र हैं और तदनुसार उसके रूप भी विचित्रताओं से भरे हुए हैं। इसलिए वह कभी तो कवि को किसी चित्र की कालिमा-जैसी दिखाई देती है और कभी किसी कमनीय की कमनीयता। कभी किसी दुखहीन की आह प्रतीत होती है तो कभी किसी तरु की करुणा-बनिता-लता—

'तू किसी के चित्र की है कालिमा,
या किसी कमनीय की कमीनयता,
या किसी दुख दीन की है आह,
या किसी तरु की करुणा वनिता लता।'

जब यह माया का आवरण हट जाता है तो जीव और ब्रह्म एकाकार हो जाते हैं इस तादात्म्य-प्राप्ति तक जीव को अनेक सोपान पार करने पड़ते हैं। निराला के अनुसार इन सोपानों की संख्या तीन है—

१. ब्रह्म की ओर झुकाव—

'उसके बाग में बहार, देखता चला गया।
कैसे फूलों का उभार, देखता चला गया।

२. आत्म-समर्पण—

'मैंने उन्हें दिल दिया, उनका दिल मुझे मिला।
दोनों दिलों का शृंगार, देखता चला गया।'

३. एकाकार होना—

'टूटी भेद की दीवार, देखता चला गया।'

यही वह अन्तिम सोपान है जहाँ जीव और ब्रह्म के मध्य की द्वैत-भावना समाप्त हो जाती है और कबीर के शब्दों में लाल की लाली से लाल होकर आत्मा स्वयं भी लाल बन जाती है। इसलिए कवि स्वयं को ब्रह्म मान बैठता है।

'वहां कहाँ कोई अपना सब,
सत्य नीलिमा में लयमान,

केवल मैं, केवल मैं,
केवल मैं, केवल मैं ज्ञान।'

जिस प्रकार निर्गुणिये सन्तों ने शरीर को आत्मा की एक सीमित परिधि माना है और आत्मा को इससे मुक्त करने का प्रयास किया है, उसी प्रकार निराला भी अपनी आत्मा को शरीर की इस ससीमता में बद्ध करना नहीं चाहते। वे लिखते हैं—

'मैं न रहूंगा गृह के भीतर,
जीवन में रे मृत्यु के विवर,
यह गुहा-गर्त प्राचीन रुद्ध,
नव दिक प्रचार वह किरण शुद्ध।'

इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि निराला का दर्शन सन्त कवि कबीर आदि का-सा वैराग्य प्रधान है। निराला के दर्शन की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनमें से एक तो यह है कि निराला दार्शनिक तो हैं किन्तु वैरागी नहीं। जन-जीवन के प्रति इनकी आस्था बराबर बनी रहती है, देश-प्रेम से इनकी करुणा निरन्तर ओत-प्रोत है, और दूसरी यह कि अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला के दर्शन में निराशा नहीं है। यही कारण है कि दर्शन की गहन ग्रन्थियों में बँधकर भी कवि वास्तविकता की भूमि पर खड़ा हो जाता है और पृथ्वी की पीड़ाएँ उसकी कविताओं से मुखरित हो उठती हैं।

एक बात और, अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा निराला अधिक चिन्तनशील रहे हैं, इसलिए इनका दर्शन प्रायः शुष्क और नीरस बन गया है, किन्तु जहाँ उसे कवि की सहृदयता अनुभूति का सहयोग मिलता है, वहां पर अवश्य ही काव्यमय और रमणीय बन गया है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में—

'भावना द्वारा अनुभूति का सहयोग मिलता है, काव्य के लिए वही दार्शनिकता अभीष्ट एवं ग्राह्य है। निराला जी की आध्यामिक पंक्तियों तथा इनकी कविताओं में जहाँ-जहाँ इस प्रकार का अनुभूति दर्शन मिलता है, वहाँ हृदय का संगीत है।

: ५ :

निराला और छायावाद

हिन्दी-साहित्य में छायावाद का उदय जिन परिस्थितियों में हुआ, उनसे हिन्दी-आलोचक एक विचित्र स्थिति में पड़ गए, इसलिए आरम्भ में इस वाद का बड़ा उपहास किया गया है और इसका ठीक-ठीक रूप समझने के स्थान पर इसे और भी अधिक उलझा दिया गया, फलतः छायावाद को हिन्दी का एक प्रमुखतर वाद स्वीकार कर लिया गया है और बहुत सीमा तक इसका सही मूल्यांकन भी हो गया है। छायावाद के सम्बन्धित विभिन्न आलोचकों ने जो भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, उनसे निष्कर्षित छायावाद के निम्नलिखित मत माने जाते हैं—

१. वैयक्तिकता अर्थात् समाज-चित्रण की अपेक्षा अपनी ही व्यक्तिगत भावनाओं का प्रमुख रूप से चित्रण

२. प्रेम का चित्रण

३. प्रकृति पर चेतना का आरोप

४. रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति

५. सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान

इन तत्त्वों के अतिरिक्त छायावाद का एक और भी तत्त्व है, जिसकी ओर प्रायः कम ही ध्यान दिया गया है। वह है छायावादी कवि की सामाजिक चेतना। निराला छायावादी कवियों में प्रमुख और छायावाद के चार स्तम्भों में से एक हैं, अतः इनके काव्य में छायावादी सभी विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं, जिनका विवरण संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैयक्तिकता—छायावाद का पहला तत्त्व है वैयक्तिकता; अर्थात् समाज-चित्रण की अपेक्षा अपने ही हर्ष-विषाद को प्रधानता देना। प्रसाद ने 'आँसू' में अपने ही लिए आँसू बहाये हैं, पन्त ने 'ग्रन्थि' में अपनी ही ग्रन्थि खोली है और

महादेवी ने अपनी ही वेदना के संसार को रंग-विरंगा बनाया है। निराला के काव्य में भी भावनाओं की अभिव्यक्ति का आधिक्य है। इस अभिव्यक्ति को दो रीतियों से व्यक्त किया गया है—प्रत्यक्ष विधि और परोक्ष विधि। प्रत्यक्ष विधि का यह उदाहरण प्रस्तुत है—

'गूंथे तप्त अश्रुओं के मैंने कितने ही हार
बैठी हुई पुरातन स्मृति की मलिन गोद पर प्रियतम !
रुद्ध द्वार पर रखे थे मैंने कितने ही बार
अपने वे उपहार कृपा के लिए तुम्हारी अनुपम !
मेरे दग्ध हृदय का अतिशय ताप
प्रभाकर की उन स्वर किरणों में,
नुपूर-सी मैं बजी तुम्हारे लिए
तुम्हारी अनुरागिनियों के निष्ठर चरणों में'

इन पंक्तियों में कवि ने अपनी 'विमल वासना' का प्रत्यक्ष रूप से वर्णन किया है और—

'धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।,
धिक साधन जिनके लिए सदा ही किया शोध।'

इन पंक्तियों में राम के शब्दों में माध्यम से—परोक्ष विधि से अपने ही संघर्षपूर्ण जीवन की भर्त्सना कवि ने की है। अतः कहा जा सकता है कि निराला के काव्य में वैयक्तिकता का तत्व प्रचुर परिणाम में उपलब्ध होता है।

प्रेम का चित्रण—प्रेम का चित्रण छायावाद का दूसरा तत्त्व है। छायावादी काव्य में दो प्रकार का प्रेम-चित्रण हुआ है—लौकिक और अलौकिक। लौकिक प्रेम के चित्रण में छायावाद कवियों मे अपने ही प्रेम की—संयोग और वियोगजन्य सुख-दुख की अभिव्यक्ति की है। निराला में लौकिक प्रेम की की अपेक्षा अलौकिक प्रेम-चित्रण का आधिक्य है। प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम विशेषतः प्रकृति रही है यथा—

मूर्ति वह यौवन की बढ़-बढ़—
एक अश्रुत भाषा की तान,

उमड़ चली फिर फिर अड़ अड़
स्वप्न सी जड़ नयनों में पान,
मुक्त-कुन्तल, मुख व्याकुल लोल
प्रणय पीड़ित वे अस्फुट बोल।'

\+ \+ \+

'विजन-वन-बल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी—
स्नेह-स्वप्न-मग्न - अमल कोमल-तनु-तरुणी
जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल, पत्रांक में।'

प्रकृति पर चेतना का आरोप—छायावाद कवियों ने प्रकृति को चेतन सत्ता माना है और उसी के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति को इन्होंने कई रूपों में अपनाया है। यथा—यथातथ्य प्रकृति-चित्रण, उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण, पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का मानव-भावनाओं से प्रभावित प्रकृति, उपदेशात्मक-प्रकृति, प्रकृति का मानवीकरण अलंकार रूप प्रकृति-चित्रण आदि। इन सब रूपों का कारण प्रकृति पर चेतना का आरोप है। निराला काव्य में भी प्रकृति का यह रूप प्रचुरता से मिलता है। उदाहरणार्थ, 'यमुना के प्रति' कविता में कवि यमुना को संबोधित करके पूछता है—

बता कहाँ अब वह वंशीबट ?
कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहां आज वह वृन्दा धाम ?
कभी यहां देखे थे जिनके
श्याम विरह से तप्त शरीर,
किस विनोद की तृषित गोद में
आज पोंछती वे दृगनीर ?

रहस्य भावना की अभिव्यक्ति—प्रत्येक छायावादी कवि रहस्यवादी है, किन्तु इनका रहस्यवादी सन्त कवियों के रहस्यवाद के रहस्यवाद से भिन्न है, अतः इसे नवीन रहस्यवाद अथवा भावात्मक रहस्यवाद का नाम दिया गया है। छायावाद कवि अपनी रहस्य भावना को प्रायः जिज्ञासा तथा कौतूहलता के साथ प्रकट करता है—

> **'लहरों पर लहरों का चंचल नाच,**
> **याद नहीं थी करनी उसकी जाँच,**
> **अगर पूछता कोई तो वह कहती,**
> **उसी तरह् हँसती पागल सी बहती—**
> **नव जीवन की प्रबल उमंग,**
> **जा रही मैं मिलने के लिए पार कर सीमा,**
> **प्रियतम असीम के पास।'**

सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान—छायावादी कवियों ने अपनी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सूक्ष्म प्रतीकों का प्रयोग किया है। निराला-काव्य में भी सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान और लाक्षणिकता के प्रचुरता से प्रयोग मिलते हैं। यथा—

> **'हुआ रूप दर्शन**
> **जब कृतविद्य तुम मिले**
> **विद्या को दृगों से,**
> **मिला लावण्य ज्यों मूर्ति को मोहकर,**
> **शेफालिका का शुभ्र हीरक-सुमन-हार,—**
> **शृंगार**
> **शुचि दृष्टि मूक रस-सृष्टि को।'**

सामाजिक चेतना—छायावाद के कवियों के काव्य पर प्रबलतम आक्षेप यह है कि वह पलायनवादी है, अर्थात् उसमें जीवन का कोई सूत्र नहीं। छायावादी कवि इस विश्व के संघर्षण से पलायन करके अपनी कल्पना के स्वर्णिम लोक में रहने का आदी है, जहाँ कोलाहल की अवनि नहीं, वरन् सागर लहरी अम्बर के कानों में निश्च्छल प्रेम कथा कहती रहती है। यह आक्षेप प्रबलतम

होते हुए भी सही नहीं है, क्योंकि प्रत्येक छायावादी कवि के काव्य में सामाजिक चेतना मिलती है। छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद की तो इस विषय में यहाँ तक धारणा थी कि 'जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने कार्य न किया हो। तब तक केवल उपमा और शब्द वैचित्र्य तथा अलंकारों पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नहीं बिठा सकते जिसने अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियों को स्पन्दित करके उनमें जीवन डालने का उद्योग किया है।

निराला की सामाजिक चेतना भी प्रसाद और पन्त की चेतना से कम नहीं हैं। वे भी चाहते हैं कि देश के हर व्यक्ति में धर्म काठिन्य और कर्मण्यता हो। उसमें उन नवीन शक्तियों का आविर्भाव हो, जिससे वह अपने कर्त्तव्यों का सही रूप में पालन कर सके, अपने व्यक्तित्व के साथ ही साथ समाज के स्तर को भी उठा सके। इसलिए वे वीणावादिनी से यह प्रार्थना करती है—

'वर दे वीणा वादिनी वर दे।
प्रिय स्वतन्त्र-रव, अमृत नवभारत में भर दे।
काट अन्ध डर के बन्धन-स्तर
बहा ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।'

इस प्रकार की निराला की यह सामाजिक अथवा राष्ट्रीय चेतना निस्संदेह ही उच्चकोटि की वस्तु है। निराला किसी सीमित परिधि में रहने वाले प्राणी नहीं हैं, इसलिए वे न तो सामाजिक बन्धनों को ही स्वीकार करते हैं और न भावों को किसी लघु सीमा में बांधकर रखना चाहते हैं। यही कारण है कि उनकी सामाजिक चेतना किसी देश विशेष या समाज विशेष तक ही सीमित नहीं रहती। वे तो समूचे विश्व के लिए ही मंगल-प्रार्थना करते हैं—

'जग को ज्योतिर्मय कर दो।
प्रिय कोमल पद गामिनी ! मन्द उतर
जीवन्मृत तरु-तृण गुल्मों की पृथ्वी पर
हँस हंस निज पथ आलोकित कर
नूतन जीवन-भर।'

छायावादी कवियों ने उन मूल कारणों को खोजने का प्रयत्न किया है जिनके कारण समाज में अव्यवस्था है, दुःख दरिद्रता है, विषमता है और गति हीनता है। धर्माडम्बर समाज का भयंकर अभिशाप है और जब तक यह दूर नहीं हो जाता, समाज की गति में नवजीवन नहीं आ सकता। निराला धर्माडम्बरता पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं—

"मेरे पड़ौस के वे सज्जन, करते प्रतिदिन मज्जन,
झोली से पुए निकाल लिए, बढ़ते कपियों के हाथ दिए।
देखा भी नहीं उधर फिर कर, जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया दूर रहा मानव, बोला न धन्य श्रेष्ठ मानव।"

छायावादी कवि का बराबर यह प्रयत्न रहा है कि वह समूचे विश्व में नवीन शक्ति का मन्त्र फूंक दे। यही कारण है कि छायावादी काव्य में अनेक अमर उद्बोधन गीत मिलते हैं। महादेवी स्वयं को दीपक की भाँति इसीलिए जला देना चाहती है, ताकि दूसरों को प्रकाश मिले, विहग भी अंधेरे में अपना मार्ग न खो बैठे। प्रसाद विभावरी के बीतने पर सबको जग जाने का उद्घोष करते हैं। इसी प्रकार निराला भी जागरण के स्वरों में कहते हैं—

"जागो फिर एक बार !
\+ \+ \+
किसने सुनाया यह वीन मन मोहन अति
दुर्लभ संग्राम—राग
भाग का खेला रण बारह महीनों में
शेर की माँद में आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।"

अतः कह सकते हैं कि छायावाद में सामाजिक अथवा राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा में और उचित ढंग से हुई है। निराला के काव्य में भी सामाजिक चेतना काफी चित्रण उपलब्ध है।

छायावाद को देन—निराला जैसे क्रांतिकारी कवि से यह आशा करना अनुचित नहीं कि यह जिस क्षेत्र में उतरेगा, उसी में कुछ-न-कुछ अपनी मौलिक

प्रतिभा से न देगा। छायावाद के विषय में भी यही बात है। इन्होंने छायावादी भाषा को नूतन सामाजिक शब्दावली देकर उसके भण्डार को समृद्ध बनाया, उसे गूढ़ से गूढ़ भावों की अभिव्यंजना करने की शक्ति प्रदान की। अप्रस्तुत-विधान को परम्परा से बन्धनों से मुक्त करके नवीन ढंग से अलंकारों को योजना की ओर भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी के मानवीकरण (Personification), विशेषण विपर्यय (Transferred Episat), ध्वन्यर्थ व्यंजना (Oro matopoia) आदि अलंकारों का प्रयोग करके अलंकार प्रयोग के क्षेत्र को विस्तार दिया। मुक्त छन्द के तो ये जन्मदाता ही माने जाते हैं। इन्होंने कविता को छन्दों के बंधन से निकालकर उसे नवीन गति और संगीतात्मकता दी। विचार-क्षेत्र में भी इन्होंने वास्तविक दर्शन का समावेश करके छायावादी काव्य के दार्शनिक क्षेत्र का विस्तार किया, यद्यपि कहीं-कहीं इसका दर्शन प्रेम काव्य की सरलता एवं सुबोधता में बाधक बन गया है। अतः कहा जा सकता है कि निराला ने छायावाद को नवीन दिशा और नवीन शक्ति देकर प्राणवान बनाया है। यदि छायावाद से निराला-साहित्य को निकाल दिया जाये जाये तो वह अपूर्ण और पंगु बनकर रह जायेगा।

: ६ :

निराला और प्रगतिवाद

सामान्यतः 'प्रगति' शब्द का अर्थ है आगे बढ़ना, अतः प्रगतिवाद उस मार्ग को कहा जा सकता है जिसके द्वारा आगे बढ़ा जाए, प्रगति की जाये; पर हिन्दी-साहित्य में 'प्रगतिवाद' एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्थूलतः प्रगतिवाद वह मार्ग है जिसके द्वारा कवि काल्पनिक भूमि को छोड़कर यथार्थ भूमि के गीत गाता है। हिन्दी को प्रगतिवाद की प्रेरणा मार्क्सवाद से मिली है। मार्क्सवाद मुख्यतया तीन सिद्धान्तों पर आधारित है—

१. द्वन्द्वात्मक भौतिक विकास-वाद

२. मूल्य वृद्धि का सिद्धान्त

३. अर्थ-व्यवस्थानुसार विश्व-सभ्यता की व्याख्या

१. **द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद**—मार्क्स किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक आदि भावनाएँ केवल कल्पित हैं। वास्तव में इनका कोई अस्तित्व नहीं है। सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में उसका सिद्धान्त यह है कि इसकी उत्पत्ति एवं विकास भौतिक शक्तियों से ही होता है। दो वस्तुओं एवं शक्ति के संघर्ष से तीसरी वस्तु का जन्म और विकास होता है और यह विकास भौतिक शक्तियों की क्रिया तथा प्रतिक्रियाओं से ही निरन्तर बढ़ता जाता है। जिस वस्तु में जितनी शक्ति होती है, वह उतनी ही अधिक देर तक टिकती है और उसका उतना ही अधिक विकास होता है।

२. **मूल्ल वृद्धि का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मार्क्स ने चार बातों का विवेचन किया है—मूल पदार्थ, स्थल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य-वृद्धि। मूल पदार्थ और स्थूल साधन के अन्तर्गत वे साधन आते हैं जो उत्पादन में सहायक होते हैं, जैसे मशीन आदि। इन्हीं के सहयोग से श्रमिक अपने श्रम के द्वारा उत्पादन करता है जिसका लाभ पूंजीपति को पहुंचता है। इसीलिए मार्क्स ने समाज को दो भागों में विभाजित किया है—शोषक वर्ग

और शोषित वर्ग। शोषक वर्ग पूँजीपतियों का है और शोषित वर्ग श्रमिकों का। पूँजीपति श्रमिकों के श्रम से हुए लाभ को स्वयं बटोर लेता है और श्रमिक को उसके भाग्य पर भूखा मरने के लिए छोड़ देता है। इसका परिणाम यह होता है कि पूँजीपति दिन-प्रतिदिन धनाढ्य होता चला जाता है और श्रमिक दिन-प्रतिदिन भुखमरी और दरिद्रता की ओर चलता जाता है। जब तक समाज की इन दो गहरी खाइयों को समाप्त नहीं कर दिया जाता, शोषक और शोषित का भेद-भाव नहीं मिटा दिया जाता, तब तक कोई भी समाज न तो उन्नति कर सकता है और न उसकी सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में सन्तुलन आ सकता है। अपने लाभ का अंश और बढ़ाने के लिए पूँजीपति अपने उत्पादन में मूल-वृद्धि कर देता है। मार्क्स का यह अटूट विश्वास है कि जब तक समाज की अर्थ-व्यवस्था सन्तुलित न होगी, उत्पादन का और उसके द्वारा प्राप्त किए हुए धन को ठीक-ठीक बँटवारा नहीं होगा, तब तक समाज में विकास नहीं आ सकता।

३. **अर्थ-व्यवस्थानुसार विश्व-सभ्यता की व्याख्या**—मार्क्स समाज को जातिगत आधार पर विभाजित करना उचित नहीं समझता। उसने आर्थिक दृष्टिकोण को समाज के विभाजन का मुख्य आधार माना है और इसी आधार से उसने समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है—

१. शोषक वर्ग
२. शोषित वर्ग

शोषक वर्ग के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जो बिना श्रम किए हुए दूसरों के श्रम का लाभ उठाकर धनार्जन करते हैं। शोषित वर्ग के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जिन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता। इसी दृष्टि से मार्क्स ने विश्व-सभ्यता का अध्ययन किया है और उसे चार भागों में विभाजित किया है—

१. पहला युग : दास-प्रथा का युग
२. दूसरा युग : सामन्ती-प्रथा का युग
३. तीसरा युग : पूँजीवादी व्यवस्था का युग
४. चौथा युग : साम्यवादी व्यवस्था का युग

इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट है कि मार्क्स साम्यवादी व्यवस्था को ही समाज के लिए अन्तिम और श्रेयस्कर साधन मानते हैं। साम्यवाद का मूल सिद्धान्त

यह है कि समाज की आर्थिक व्यवस्था का संतुलन बनाए रखने के लिए सभी को उनका उचित धनांश मिलना चाहिए। जिस समाज में श्रम करने वाला श्रमिक भूखा मरता है और श्रम न करने वाला पूँजीपति दिन-प्रतिदिन मोटा और धनाढ्य होता जाता है, वह समाज मनुष्यों के रहने के योग्य नहीं रह जाता। वह भी इसी लोक का नरक है, जिसमें परिश्रमी व्यक्ति भयंकर यातनाएँ भोगते हैं।

भाग्य अथवा प्रारब्ध पर विश्वास करने से दो बातें उत्पन्न होती हैं—पहली तो यह कि पूँजीपति इसके आवरण में अपनी शोषक प्रवृत्ति को छिपाने में सफल होते हैं। वे श्रमिकों के मन में यह धारणा भर देते हैं कि धन का श्रम से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो भाग्य का खेल है। जिसके भाग्य में धन लिखा है, वही सदैव धनी रहेगा और जिसके भाग्य में भूखा मरना लिखा है, वह रात-दिन हड्डी-तोड़ परिश्रम करने के बाद भी भूखा ही सोयेगा। दूसरी यह है कि इससे श्रमिकों के मन में अनुचित सन्तोष की भावना जागृत होती है। वे यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि उनके भाग्य में भर-पेट रोटी जब लिखी ही नहीं तो वे धनवान कैसे बन सकते हैं। इससे श्रमिकों में तो अपने कार्यों के प्रति उदासीनता उत्पन्न होती है और पूँजीपति को अपने श्रमिकों से विरोध का कोई भय नहीं रहता। इसलिए साम्यवाद में भाग्य की सत्ता को पूर्णतया अस्वीकार किया है। अतः साम्यवाद सम्पत्ति के राष्ट्रीकरण पर बल देता है—

'व्यक्ति समाज का अंग है और समाज के लिए उसकी सत्ता है। जब तक वह समस्त समाज के विकास और बुद्धि में उपयोगी है, जब तक उसका उतना ही मूल्य है, जितना किसी अन्य व्यक्ति का। अतएव सम्पत्ति का विभाजन व्यक्तिपरक न होकर व्यक्ति को सामाजिक उपयोगिता के आधार पर होना चाहिए तथा किसी व्यक्ति का मूल्य इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि उसके चुकाने में दूसरे व्यक्ति को कष्ट हो। इस मूल्य-नियन्त्रण के लिए सम्पत्ति पर से व्यक्ति का नियन्त्रण हटा कर समाज का नियन्त्रण आवश्यक है। साम्यवादी व्यवस्था का यही मूल तत्व है।'

प्रगतिवाद के तत्त्व—यही साम्यवाद साहित्यिक रूप लेकर हिन्दी-साहित्य में उतरा और प्रगतिवाद के नाम से विख्यात हुआ, इसके तत्त्व निम्नलिखित हैं—

१. रूढ़ि-विरोध
२. शोषितों के प्रति सहानुभूति
३. क्रान्ति अथवा विद्रोह की भावना
४. वेदना और निराशा
५. साम्यवाद का गुण-गान
६. नारी-चित्रण
७. उद्‌बोधन

अब यह देखना है कि निराला के काव्य में ये तत्त्व किस रूप में मिलते हैं।

१. रूढ़ि विरोध—निराला स्वभावत: ही क्रांतिकारी कवि थे, अतः रूढ़ियों को और परम्पराओं को अन्धानुकरण करना इनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल था अपने रूढ़ि-विरोधी स्वभाव के कारण इन्होंने हिन्दी-साहित्य में अनेक नवीन परम्पराओं को जन्म दिया। मुक्त छंद का प्रयोग इन परम्पराओं में सर्वप्रमुख है। निराला ने ही सबसे पहले यह घोषित किया कि छन्द कविता के बन्धन हैं और इनसे कविता को मुक्त करना उसे नवीन शक्ति और प्राणवत्ता प्रदान करना है। इन्हीं शब्दों में—

'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधनों से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना। मुक्त छन्द में बाह्य समता के प्रति कविता में जो अतुल आग्रह होता है, वह समाप्त हो जाता है, केवल मुक्त छन्द में आन्तरिक साम्य होता है, जो उसके प्रवाह में सुरक्षित रहता है। उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को दुख-प्रवाहसिक्त करती है, वही इसका प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त निराला ने हिन्दी-कविता में अनेक प्रयोग किए हैं। इन्होंने उर्दू-छन्दों का, विशेषतः गजल का, हिन्दी में बहुत ही सबलता से प्रयोग किया है। भाषा में नवीन चेतना और शक्ति लाने के लिए इन्होंने अनेक अंग्रेजी अलंकारों को अपनाया है।

सामाजिक क्षेत्र में भी निराला रूढ़ियों का विरोध करने वाले थे। वास्तविकता तो यह है कि इनका समूचा जीवन ही रूढ़ियों का विरोध करते-करते बीता। सरोज-स्मृति नामक शोकगीत में अपनी पुत्री के सौन्दर्य का वर्णन करना साहित्य और समाज की रूढ़ियों का सबसे प्रबल विरोध है।

शोषितों के प्रति सहानुभूति— शोषित और दु:खी जन ही प्रगतिवादी कवि के प्रतिपाद्य होते हैं और इनकी यथार्थता का चित्रण करना उसके काव्य का

का प्रयोजन होता है। उदाहरण के लिए निराला की भिक्षुक के प्रति सहानुभूति देखिए—

'वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने की—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बाँये से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।
भूख से सूख ओठ जब जाते,
दाता—भाग्य विधाता से क्या पाते ?
घूँट आंसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।'

इन पंक्तियों में यथार्थ और रोमांचकारी चित्रण के साथ-साथ भिक्षुक के प्रति कवि की अगाध सहानुभूति भी मुखरित है। ऐसा वर्णन वही कवि कर सकता है, जिसने अपने मन की आँखों से किसी भिक्षुक को निर्निमेष दृष्टि से घंटों देखा हो। एक मजदूरनी का चित्रण और देखिए—

वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

नहीं छायादार
पेड़ वट जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रज मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, आकार।

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन
दिन का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई;
प्रायः हुई दुपहर—
वह तोड़ती पत्थर।'

कितना यथार्थ और मर्मान्तिक चित्रण है उस मजदूरनी का जो रुई के समान भू को जलाने वाली लूओं में भी अपने काम में बराबर लगी हुई है। यह उसकी विवशता है। आखिर उसे रोटी मिलेगी भी कैसे, यदि वह काम न करेगी, लूओं से डरकर किसी छायादार वृक्ष का आश्रय लेगी।

इन दो ही उद्धरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि निराला के उदार मन में शोषितों के प्रति कितनी सहानुभूति है।

३. **क्रांति अथवा विद्रोह की भावना**—जब प्रगतिवादी कवि सामाजिक विषमता के कारण समाज में ऐसे भी मनुष्यों को देखता है, जिन्हें जीने के अधिकारों से समाज ने पूर्णतया वंचित कर दिया है, पर फिर भी वे अपने देह कंकाल को सँजोकर जीने का उपक्रम करते हैं तो उसका मन विद्रोह कर उठता है। वह चाहता है कि इस धरा का—जिस पर मानवता की लाश ही नजर आती है—नाश हो जाये। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए वह या तो प्रलयंकारी शिव का आह्वान करता है या श्यामा का। निराला श्यामा का आह्वान करते हुए कहते हैं—

'एक बार बस और नाच तू श्यामा !
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुमको हार ?
कर मेखला मुंड मालाओं के बन मन-अभिरामा—
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

४. **वेदना और निराला**—सामाजिक विषमताओं को देखकर कवि का मन खिन्न हो जाता है। उसके मन में वेदना और निराशा के भाव भर जाते हैं।

ये भाव कभी तो व्यक्तिपरक होते हैं और कभी समाजपरक; अर्थात् कभी तो कवि अपनी ही वेदना और निराशा से दुखी होता है और कभी समाज की वेदना और निराशा उसके दुख का कारण बनती है। निराला में व्यक्तिपरक वेदना और निराशा का ही आधिक्य है। यथा—

मैं अकेला;
देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला।'

और कभी कवि को इसलिए वेदना और निराशा होती है कि उसका स्नेह निर्झर समाप्त हो गया है—

'स्नेह निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है—'अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन दह गया है।'

५. **साम्यवाद का गुण-गान**—प्रगतिवादी कवि की यह धारणा होती है कि समाज के सारे अनर्थों का मूल अर्थ-व्यवस्था की विषमता है। जब तक यह विषमता दूर नहीं होगी, समाज में सुख और शांति किसी प्रकार भी नहीं आ सकती। इन विषमताओं को समाप्त करने का एकमात्र हल साम्यवाद है। अत: वह साम्यवाद का गुण-गान करता है। 'बनवेला' नामक कविता में साम्य-वाद की प्रशंसा करते हुए निराला जी कहते हैं—

'फिर पिता संग
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता उमंग,
करता प्रचार
मंच पर खड़ा हो साम्यवाद इतना उदार।'

६. **नारी-चित्रण**—अन्य विषयों की भांति नारी-चित्रण में भी प्रगतिवादी कवि यथार्थवादी रहे हैं। इसके शरीर-सौन्दर्य पर भी यद्यपि इन कवियों का ध्यान गया है, पर सबसे अधिक ध्यान इसकी उन परिस्थितियों की ओर गया है जिनसे इसे बाँधकर निष्ठुर समाज ने अधिकारहीन बना रक्खा है। निराला का ध्यान उस विधवा की ओर गया है जिसका सारा सुख समाज ने छीनकर उसे अनाथ असहाय और तिरस्कृता बनाया हुआ है। कितना मर्मान्तिक है यह वर्णन—

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शान्त, भाव में लीन
बस क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी
वह टूटे तरु की छटी-लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।'

७. **उद्बोधन**—प्रगतिवादी कवि वस्तुतः क्रांतिकारी होता है। क्रांति की दो दिशाएँ होती हैं— ध्वंस और नव-निर्माण। प्रगतिवादी इन दोनों ही दिशाओं को अपनाता है। जब वह ध्वंस की भेरी बजाता है तो शिव और श्यामा का आह्वान करता है और जब वह नवनिर्माण की इच्छा करता है तो समाज को उद्बोधन के गीत सुनाता है। निराला में ये दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। ध्वंस के लिए ये श्यामा का आह्वान करते हैं और नवनिर्माण के लिए समाज का उद्बोधन—

'पशु नहीं, वीर तुम ; समर-शूर क्रूर नहीं ;
काल-चक्र में हो दबे आज तुम राजकुँवर
समर सरताज !

× × ×

तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन भाव, कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम, पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार, जागो फिर एक बार !

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला में वे सभी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जो एक प्रगतिवादी के लिए अपेक्षित हैं। निराला का प्रगतिवाद की स्थापना में और उसमें प्राणवत्ता भरने में जो योगदान हिन्दी-साहित्य को मिला है, वह अविस्मरणीय एवं गौरवमय है।

: ७ :

निराला की सौन्दर्याभिव्यक्ति

सत्य और शिव के साथ-साथ सौन्दर्य को भी काव्य का आवश्यक तत्त्व माना गया है। अतः प्रत्येक कवि किसी न किसी रीति से अपने काव्य में सौंदर्य का आधान करता है। निराला की सौन्दर्याभिव्यक्ति का विवेचन करने के लिए इस विवेचन को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित करना उनयुक्त है—

१. प्रकृति का सौन्दर्य

२. नारी का सौन्दर्य

३. भावों का सौन्दर्य

प्रकृति का सौन्दर्य—अनादिकाल से ही प्रकृति सौन्दर्य का अतुल भंडार रही है और अपने इस भंडार से यह अपना सौन्दर्य बिखेर कर कवियों के भावों एवं काव्यों को शोभा, सम्पन्न बनाती रही है। निराला ने भी अपने काव्य को एवं भावों को मंडित करने के लिए प्रकृति के सौन्दर्य की खूब जी खोलकर अभिव्यक्ति की है। फलतः निराला द्वारा अभिव्यक्ति प्रकृति-सौन्दर्य को दो शीर्षकों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है—

१. शुद्ध प्रकृति-चित्रण

२. भावों के परि[illegible] प्रकृति-चित्रण

शुद्ध प्रकृति-चित्रण के रूप में निराला ने अनेक गीतों की सृष्टि की है। उदाहरण के लिए सन्ध्या सुन्दरी, बसंत आया अस्ताचल रवि, रवि गये ऊपर पार, तरंगों के प्रति, आये घन पावस के, प्रपात के प्रति, जलाशय किनारे कुहरी थी आदि गीत लिए जा सकते हैं।

'सन्ध्या सुन्दरी' में सायंकालीन प्रकृति का बड़ा ही मनोरम चित्रण हुआ है। सन्ध्या पर सुन्दरी का आरोप होने के कारण यह मनोरमता और भी अधिक बढ़ गई है। प्रकृति-सौन्दर्य का यह काव्यात्मक चित्र निराला की हिन्दी साहित्य को अमर देन है—

'दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे ।
तिमिरांचल चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर, —
किन्तु जरा गम्भीर — नहीं है उनमें हास-विलास'

'बसन्त आया' में बसन्त आगमन पर प्रकृति की जो शोभा होती है, उसका चित्रण किया गया है—

'सखि ! बसन्त आया ।
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया
किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय उर तरु-पतिका
मधुप वृन्द बन्दी—
पिक-स्वर नभ सरसाया ।'

'अस्ताचल रवि' में अस्त होते हुए कवि की शोभा का वर्णन है—

'अस्ताचल रवि, जल छलछल-छवि
स्तब्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन
मन्द पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की यह कथा पुरातन ।'

जब सायंकाल में सूर्य छिपता है तो उसकी किरणें चंचल जल में किस प्रकार अपूर्व शोभा की सृष्टि करती हैं, कवि उसके सौन्दर्य पर भाव-विभोर हो जाता है और धीरे-धीरे बहने वाली पवन तो गत सुन्दर सुधों को नवीन बना देती है । कितना यथार्थ और भावपूर्ण चित्रण है यह सायंकालीन अस्त होते हुए रवि का !

सन्ध्या के समय जब सूर्य छिप छाता है तो श्रमिक अपने घरों को लौटने लगते हैं, पवन धीरे-धीरे बहने लगती है, जिसके स्पर्श से संकुचित जुही की कली खिल जाती है और सुवसना प्रिया भवन दीप जलाकर आरती उतारने लगती है । यह काल और इसमें घटित होने वाली ये क्रियाएँ बड़ी ही सुहावनी लगती हैं । 'रवि गये ऊपर पार' में निराला ने इसी वातावरण की ओर इसमें होने वाली इन्हीं क्रियाओं की अभिव्यक्ति की है—

'देकर अंतिम कर रवि गए ऊपर पार ;
श्रमित-चरण लौटे गृहिजन निज निज द्वार।
अम्बर पथ से मन्थर सन्ध्या श्याम
उतर रही पृथ्वी पर कोमल-पद-भार।
मन्द मन्द बही पवन खुल गई जुही
अंजलि कल विनत नवल पद-तल-उपहार।
सुवसना उठी प्रिया प्रानत-नयना
भवन दीप जला रही आरती उतार।'

'तरंगों के प्रति' में कवि ने उठती फिरती तरंगों का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया है—

'किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मंडलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?
सोह रहा है हरा क्षीण कटि में अम्बर-शैवाल
गाती आन आप देती हो ललित करों के ताल।'

'आये घन पावस के' में कवि ने वर्षाॠतु में घिर आने वाले मेघों की ओर तज्जन्य वातावरण का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

'अलि ! फिर आये घन पावस के।
लख, ये काले काले बादल
नील सिन्धु में खुले कमल दल
हरित ज्योति चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के।'

निर्झर जब झरते हैं तो उनकी शोभा अत्यन्त मनोहर होती है। उनका उज्ज्वल झरता हुआ जल बड़ा प्रिय लगता है। उसे झरना है, अतः वह तो झरता ही रहेगा—

'अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात !
मचलते हुए निकल आते हो,
उज्ज्वल ! घन-वन-अंधकार के साथ
खेलते हो क्यों ? क्या पाते हो ?
अन्धकार पर इतना प्यार

क्या जाने यह बालक का अविचार
बुद्ध का या कि साम्य व्यवहार।'

'जलाशय किनारे कुहरी थीं' में कवि ने प्रातःकाल का वर्णन किया है। यह वर्णन क्रमबद्ध है और मन पर विविध प्रतिबिम्बों को अंकित करता हुआ अपना अमिट प्रभाव डालता है—

जलाशय के किनारे कुहरी थी,
हरे नीले पत्तों का घेरा था,
पानी पर आम की डाल आई हुई,
गहरे अंधेरे का डेरा था,
किनारे सुनसान थे, जुगनू के
दल दमके—यहाँ कहाँ-चमके
वन का परिमल लिए मलय बहा,
नारियल के पेड़ हिले तुमसे,
ताड़ खड़े ताक रहे थे सबको,
पपीहा पुकार रहा था छिपा,
स्यार बिचरते थे आराम से,
उजाला सो गया और तारा दिया,
लहरें उठती थीं सरोवर में
तारा चमका या अन्तर में।'

भावों के परिवेश में प्रकृति का चित्रण मुख्य नहीं, गौण होता है। वहाँ पर उसका उद्देश्य भावों को सबल एवं सक्षम बनाना होता है। निराला ने भावों को उत्कर्ष बनाने के लिए सहायिका के रूप में भी प्रकृति का चित्रण बहुत किया है। यथा—

'तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर सुख की छाया—
जग के दाध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
'यह तेरी रण-तरी,
भरी आकांक्षाओं से,
घन, मेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर

उर में पृथ्वी के आशाओं से
नव जीवन भी, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ये विप्लव के बादल !
फिर फिर ।'

इस 'बादल राग' में कवि ने बादल के चित्रण के माध्यम से अपने विद्रोही भावों का चित्रण किया है।

'जुही की कली' में शृंगार का बहुत स्पष्ट वर्णन हुआ है। इस कविता में जुही को एक नायिका के रूप में चित्रित किया है, जो अपने प्रिय की छेड़खानी से विविध प्रकार के भावों का प्रदर्शन करती है—

'निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की जड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रँग प्यारे संग।'

कहीं-कहीं प्रकृति को उद्दीपन रूप में भावों के जागृत करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। यथा—

'अस्ताचल ढले रवि,
शशि छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी गन्धा जगी,
एकटक चकोर कोर दर्शन प्रिय
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी
घेर रही चन्द्र को चाव से
शिशिर भार व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए
आया कलियों में मधुर

मद-उर यौवन उभार—
जागो फिर एक बार।'

इसी प्रकार 'राम की शक्ति-पूजा' में भी भावों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति की संयोजना की गई —

'है अमा निशा ; उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा निशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-भार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल।'

यह प्रकृति वातावरण राम के उन हताश भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सहायक है, जो युद्ध में रावण को न जीत सकने के कारण खिन्नता, अवसाद और भय से भर गये हैं।

नारी का सौन्दर्य—सौन्दर्य-क्षेत्र में नारी की महत्ता सदैव से असंदिग्ध रही है। कोई भी ऐसा काव्य नहीं, जिसमें सौन्दर्य का चित्रण तो हो, पर नारी के रूप वर्णन का अभाव हो। समय-समय पर नारी के सौन्दर्य मापदंडों में परिवर्तन होता रहा है। एक समय था जब नारी के सौन्दर्य के स्थूल एवं मांसल चित्रण प्रस्तुत करके कवि नारी सौन्दर्य की व्यंजना करते थे। आधुनिक काल में सामाजिक कारणों से कवि को ऐसा करना सम्भव नहीं रहा, फलतः वह नारी सौन्दर्य के सूक्ष्म चित्रों का विधान अपने काव्य में करने लगा। निराला का नारी-सौन्दर्य इसी विधान के अन्तर्गत आता है। 'प्रेयसी' नामक कविता ने नारी के रूप का इस प्रकार चित्रण किया है—

'घेर अंग अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की,
ज्योतिर्मयि-लता-सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु तन।

खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगन्ध के,
प्रथम बसन्त में गुच्छ-गुच्छ।

दृगों की रंग नई प्रथम प्रणय रश्मि—
चूर्ण हो विच्छुरित
विश्व ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहु रंग भाव भर

शिशिर ज्यों पत्र पर कनक-प्रभात के
किरण-सम्पात से ।'

इन पंक्तियों में मुग्धा नायिका का वर्णन है 'जो अत्यन्त सूक्ष्म विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । इसकी सूक्ष्मता का बोध तब और अधिक स्पष्ट हो जाता है, यदि हम बिहारी के निम्नलिखित दोहे से इनकी तुलना करें—

'अपने कुल के जानकर, जोवन-नृपति प्रवीन ।
स्तन मन नैन नितंब को, बड़ौ इजाफा कीन ।।'

कहने का भाव यह है कि निराला ने नारी सौंदर्य के जिन चित्रों को अंकित किया है, वे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं । अपनी इसी सूक्ष्मता और संयम के कारण ये अपनी पुत्री सरोज के सौन्दर्य-चित्रण में सफल हो सके हैं जो हिन्दी-साहित्य में विलक्षण देन है—

धीरे धीरे फिर बढ़ा चरण, बाल्य की कीर्तियों का प्रांगण
कर पार कुंज तारुण्य सुधर, आई लावण्य भार धर कर
काँपा कोमलता पर सस्वर, ज्यों मालकोश तव वीणा पर ।

'राम की शक्ति-पूजा' में सीता के सौन्दर्य-चित्रण में भी कवि ने इसी प्रकार के संयम और पवित्र प्रतीकों का सहारा लिया है—

ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय-ज्ञान प्रथम स्वीय
जानकी नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।।'

संक्षेप में कह सकते हैं कि नारी-सौन्दर्य के चित्रण में निराला ने प्रतीकात्मकता तथा संकेतात्मकता भाषा का प्रयोग करके सूक्ष्मता का परिचय दिया है ।

भावों का सौंदर्य—काव्य विविध भावों का आगार है । कवि के सारे प्रयत्न अपने प्रतिपाद्य भावों को सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिए ही होते हैं । भावों के सौन्दर्य से तात्पर्य है भावों की समुचित संयोजना, जिनसे श्रोता अथवा पाठकों के मानस चमत्कृत होते हैं । निराला का सम्पूर्ण काव्य भाव-सौन्दर्य से मंडित है । विविध भावों को औचित्यपूर्ण रीति से व्यक्त करने की निराला में अपूर्व क्षमता है । यथा —

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी

वह टूटे तरु की छुटी-लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।'

इन पंक्तियों में विविध औचित्यपूर्ण उपमानों का प्रयोग करके निराला ने विधवा के वैधव्यजनित दुख को साकार कर दिया है।

'ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेग हो उठा शक्ति खेल-सागर अपार,
हो श्वसित पवन उनचास पिता-पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग भंग, उठते पहाड़,
जल-राशि-जल पर चढ़ता खाता पहाड़,
तोड़ता बंध—प्रतिसंध धरा, हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता सक्षम,
शत-वायु देव-बल········।'

राम जब रावण को युद्ध में पराजित न कर सके तो उन्हें अपनी विजय की कोई आशा न रही। वे अत्यन्त उदास और खिन्न हो गये। दुख: के कारण उनके आँसू निकल आये। उन आँसुओं को देखते ही हनुमान का वीरभाव जग उठा। इसी भाव की अभिव्यक्ति करने के लिए निराला ने उपर्युक्त पंक्तियों में जो शब्द-योजना की है, उससे भाव साकार हो उठा है, हनुमान का रौद्र रूप आँखों के आगे नाचने लगता है।

भावों के अनुकूल शब्द-योजना करने में निराला पूर्णतया सिद्धहस्त है। जैसे भाव होंगे, वैसे ही शब्द-योजना होगी। हनुमान का रौद्र-रूप चित्रित करने के लिए यदि इन्होंने ओजपूर्ण शब्दों की योजना की है तो वसन्त-श्री का चित्रण करने के लिए कोमल शब्दों की—

'लता-मुकुल हार गन्ध-भार भर, वही पवन मन्द मन्दतर,
जागी नयनों में बन-यौवन भी माया।'

अतः कह सकते हैं कि निराला-काव्य में सौन्दर्य की पूर्ण सफलता और प्रभावोत्पादकता के साथ अभिव्यक्ति हुई है।

: ८ :

निराला की गीति कला

गीति हिन्दी-साहित्य का ही नहीं, विश्व-साहित्य का प्रियतम काव्यरूप है, इसीलिए इसकी परम्परा किसी न किसी रूप में आदिकाल से ही चली आ रही है। संस्कृत में भी यह परम्परा काफी पुरानी है। वेदों में गीतों के बीज मिलते है, अतः कतिपय आलोचक हिन्दी-गीति परम्परा को वेदों में गीति-परम्परा से जोड़ते हैं। भारतीयता के प्रति उनका यह अपार मोह श्लाघनीय तो अवश्य है, किन्तु आधुनिक हिन्दी-गीति परम्परा पर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यह तो अंग्रेजी-साहित्य की 'लिरिकल पोयट्री' (Lyrical poety) का ही अनुकरण है। इस मत को मानने में हमें तनिक भी हिचक नहीं होनी चाहिए। डा० नगेन्द्र की भी यही मान्यता है—

'यों तो गीति-काव्य हिन्दी में सदा से ही चला आता है, विद्यापति, सूर, मीरा और घनानन्द के भाव-प्रवण पद संसार के गीति-साहित्य में अमर रहेंगे, क्योंकि वे उनके हृदय के उन्मुक्त एवं उन्मत्त गान हैं, परन्तु जिस गीति-शैली का विकास द्विवेदी-युग के पश्चात् हुआ, वह पाश्चात्य लिरिक (Lyric) के ढंग का था।

गीति की परिभाषा एवं तत्व

पाश्चात्य साहित्य में हीगल (Hegal), अर्नेस्ट रिस (Ernest Rhys), जॉन ड्रिंक वाटर (John Drink water), गमर (Gummere) और हडसन (Hudson) आदि विद्वान् प्रमुख हैं, जिन्होंने गीति-काव्य की परिभाषा करने का प्रयत्न किया है। इनके मत इस प्रकार हैं—

१ 'गीति-काव्य में किसी ऐसे व्यापक कार्य का चित्रण नहीं होता, जिससे बाह्य संसार के विभिन्न रूपों एवं ऐश्वर्य का उद्घाटन हो। उसमें तो कवि की निजी आत्मा के ही किसी एक रूप-विशेष का निदर्शन होता है। उनका एक-मात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आल्हाद की तरंगों और उसकी वेदना की चीत्कारों का

उद्घाटन करना ही है।'

—हीगल

२. 'गीतिकाव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण आधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।'

—अर्नेस्ट रिस

३. 'गीति-काव्य एक ऐसी अभिव्यंजना है जो विशुद्ध काव्यात्मक (भावात्मक) प्रेरणा से व्यक्त होती है तथा जिसमें किसी अन्य प्रेरणा के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती।'

—जान ड्रिक वाटर

४. 'गीतिकाव्य वह अन्तवृत्ति-निरूपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है, तथा जिसका सम्बन्ध घटनाओं से नहीं, अपितु भावनाओं से होता है और जो किसी समाज की परिष्कृत अवस्था में निर्मित होती है।'

—गमर

५. 'वैयक्तिकता की छाप गीतिकाव्य की सबसे बड़ी कसौटी है, किंतु वह व्यक्ति-वैचिञ्य में सीमित न रह कर व्यापक मानवीय भावनाओं पर आधारित होता है, जिससे प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सके।'

—हडसन

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से गीतिकाव्य के निम्नलिखित तीन तत्त्व उपलब्ध होते हैं—

१. वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति

२. संगीतात्मकता

३. भावप्रवणता

हिन्दी-आलोचकों को भी ये तत्त्व मान्य है, यद्यपि गीति तत्वों की संख्या में मतैक्य नहीं है, अतः इन्हीं के आधार पर निराला की गीति-कला का विश्लेषण करना उपयुक्त होगा।

वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति

गीतिकाव्य में वैयक्तिकता अथवा आत्मभिव्यक्ति दो विधियों से की जाती है—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष या परोक्ष विधि। प्रत्यक्ष विधि में कवि प्रथम पुरुष में अपने सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा का वर्णन करता है। हिन्दी में डा० 'वच्चन' इस विधि के प्रतिनिधि गीतिकार हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष विधि में गीतिकार कल्पना के आवरण में या प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करता है। कुछ आलोचकों का मन्तव्य है कि प्रत्यक्ष विधि में कलात्मकता का अभाव होने के कारण प्रभावशीलता को ठेस लगती है, किन्तु यह मन्तव्य उचित नहीं जान पड़ता। हमें तो प्रत्यक्ष विधि ही अधिक प्रभावशालिनी प्रतीत होती है क्योंकि इसमें कवि और पाठक अथवा श्रोता का सीधा सम्बन्ध स्थापित रहता है, उसके मध्य कल्पना या प्रतीकों की प्राचीर नहीं होती।

निराला के गीतों में दोनों प्रकार की विधियाँ अपनाई गई हैं। यदि वे 'सरोज-स्मृति' जैसे गीतों में अपना गहन विषाद प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करते हैं, 'हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र में अपने उपेक्षित जीवन की कथा कहते हैं तो 'बन-वेला', 'स्वप्न-स्मृति' आदि गीतों में अपनी कसक को परोक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि निराला का निर्भीक व्यक्तित्व प्रत्यक्ष-विधि को भी अपनाने से कभी नहीं हिचकिचाया, तथापि अपेक्षाकृत परोक्ष-विधि का ही अधिक आलम्बन इन्होंने लिया गया है।

संगीतात्मकता

संगीत गीति का अनिवार्य तत्व माना जाये अथवा नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर निर्विवाद नहीं हैं। पाश्चात्य विद्वान आल्फ्रेड आस्टिन इसकी अनिवार्यता इन शब्दों ने स्वीकार करते हैं—

'No verse which is unmusical or obscure can not be regarded as poetry, whatever other qualities it may possess.'

अर्थात् जिस पद्य में संगीत का सौन्दर्य नहीं है, उसमें चाहे अन्य कितने भी गुण हों, उसे काव्य का पद नहीं दिया जा सकता। इसके विपरीत श्री रामखेलावन पाण्डेय का मत है —

संगीतमय अथवा संगीतात्मक होना गीति-काव्य की अन्यतम कसौटी

नहीं।'

श्री पाण्डेय का यह मन्तव्य ग्राह्य नहीं है। गीति काव्य में संगीत का होना अनिवार्य है, भले ही वह किसी प्रकार का संगीत हो—चाहे वर्णों का हो, चाहे स्वरों का और चाहे नाद का।

निराला संगीत में निष्णात थे और इन्होंने संगीत को ही गीति का सबसे अधिक आवश्यक तत्व मानकर अपने प्रत्येक गीति में संगीत की सुष्ठु योजना की है। यथा—

'अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी-अभी ही तो आया है,
मेरे वन में मृदुल बसन्त।
अभी न होगा मेरा अन्त।'

× × ×

'तिमिरदारण मिहिर दरसो।
ज्योति के कर अन्ध कारा—
गार जग का सजग परसो।'

भाव-प्रवणता

भाव-प्रवणता या भावों का उच्छलन गीतिकाव्य के प्राण हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि दुख-सुख की आवेशमयी स्थिति में ही गीति का जन्म होता है। इसी मान्यता को प्रसिद्ध गीतिकार डा० 'बच्चन' ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

'मैं रोया तुम कहते हो इसको गाना,
मैं फूट पड़ा तुम कहते हो छन्द बनाना।'

पन्त की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी इस मत का समर्थन करती हैं—

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान

उमड़ कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।'

भाव-प्रवणता के लिए हृदय की सहज स्वाभाविकता की आवश्यकता है। जहाँ हृदय निबन्ध होकर अपनी ही भाषा में बोलता है, वहाँ भाव-प्रवणता स्वतः आ जाती है। यही कारण है कि साहित्यिक गीतों की अपेक्षा लोकगीतों में

अधिक भाव-प्रवणता होती है। इस दृष्टि से निराला के गीतों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग में तो वे गीत आते हैं जो दार्शनिक हैं, जिनमें चिन्तन की प्रधानता है। दूसरे वर्ग में वे गीत आते हैं, जो कवि के हृदय के सहज स्फुरण हैं। इनमें भावना का प्राधान्य है। ये गीत अधिक भाव-प्रवण हैं। यथा —

'जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग—से
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कम्पन-सा निद्रित
सरोवर में।'

इन पंक्तियों में चिन्तन की प्रधानता है। और—

'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु !
पूछेग: सारा गाँव बन्धु !
यह घाट वही जिस पर हँसकर
वह कभी नहाती थी धँसकर
आँखें रह जाती थीं फँसकर
कँपते थे दोनों पांव बन्धु !'

इन पंक्तियों में हृदय की सरसता का प्राधान्य है। अत: ये पंक्तियाँ उपर्युक्त पंक्तियों की अपेक्षा अधिक भाव-प्रवण हैं निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तात्विक दृष्टि से निराला की गीति-कला पूर्णत: खरी है—

वर्गीकरण

निराला ने अनेक विषयों पर गीत लिखे हैं। अत: विपय के आधार पर इनके गीतों को निम्नलिखित वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

१. प्रार्थना-प्रधान गीत
२. नारी-सौन्दर्य-प्रधान गीत
३. प्रकृति-प्रधान-गीत
४. राष्ट्रीयता-प्रधान गीत

प्रार्थना-प्रधान गीत

निराला प्रारम्भ से ही आस्तिक रहे हैं, इसीलिए इनके काव्य में प्रार्थना-परक गीतों की प्रधानता है। 'गीतिका' तो एक प्रकार से प्रार्थना-परक गीतों का ही संग्रह कहा जा सकता है। अपनी जीवन की समस्त निराशा और अशेष अवसाद से खिन्न होकर जब कवि 'जननि' को अपनी व्यथा सुनाने लगता है तो पाठक भी द्रवित हो उठते हैं—

सार्थक करो प्राण
जननि दुःख अवनि
दूरित से दो भाग।'

'अणिमा', 'अर्चना' और 'आराधना' में भी ऐसे गीत पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

नारी-सौंदर्य-प्रधान गीत

छायावादी कवियों ने जहाँ अनेक विषयों में विद्रोह किया, वहाँ नारी-विषयक धाराओं के विरुद्ध भी झंडा उठाया। रीतिकाल में नारी का रूप केवल एक रंग-बिरंगी पुतली का रह गया था, जो नर का केवल मनोरंजन करती थी, इससे आगे उसकी कोई सत्ता न थी। छायावादी कवियों ने नारी को इस कठहरे से निकाला और उसके बाह्य तथा आन्तरिक सौन्दर्य का उद्-घाटन किया। इस वर्ग के गीत निराला के 'परिमल' और 'गीतिका' काव्य-संग्रहों में विशेष रूप से मिलते हैं। ऐसे गीतों में शेफालिका, जुही की कली और नर्गिस के स्वच्छन्द प्रेम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले भाव अंकित किये गये हैं। निराला को केवल आभिजात्य वर्ग में ही सौन्दर्य दृष्टिगोचर नहीं होता, बल्कि उन्हें कृषक की वधू की आँखें भी खंजन की आँखों की तरह सुन्दर दिखाई देती हैं—

'ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पांखें।'

प्रकृति-प्रधान गीत

अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला ने भी प्रकृति-प्रधान गीत काफी संख्या में लिखे हैं। इन गीतों के दो प्रकार हैं—एक तो वह जिनमें केवल प्रकृति-चित्रण किया गया है, और दूसरा वह जिनमें प्रकृति के रम्य व्यापारों द्वारा हृदय में उत्पन्न भावनाओं के विविध व्यापारों का चित्रण है। यथा—

'काँप उठी विधि के यौवन
प्रथम कम्प मिस मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज चितवन स
भाव सुमन छाये ।'

इन पंक्तियों में प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन है और—

'विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी—
स्नेह-स्वप्न-मग्न-अमल-कोमल-तनु-तरुणी,
जुही की कली
दृग बन्द किए, शिथिल पत्रांक में।'

इन पंक्तियों में लौकिक शृंगार की अभिव्यक्ति के साथ-साथ अलौकिक भावनाओं को व्यक्त किया गया है। निराला ने आलम्बन रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत ही कम किया है।

राष्ट्रीयता-प्रधान गीत

निराला के हृदह में देश प्रेम का अजस्र स्रोत प्रवाहित था और इन्हें अपने प्रिय देश की दुर्दशा पर बहुत अधिक दुख था। इसीलिए इन्होंने जागरण के अनेक गीत लिखे हैं। इस प्रकार के गीतों में भारतीय वन्दना, जागो फिर एक बार, जागो जीवन धनि के, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

शैली की दृष्टि से इनके गीतों को इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. सम्बोधगीत (Odes)
२. शोकगीत (Elegy)
३. पत्र गीति (Epistles)
४. नाटक काव्य (Dramatic Poetry)
६. आख्यानक गीति (Ballads)

ये शैली पाश्चत्य साहित्य की देन हैं और हिन्दी के लिए एकदम नवीन उपहार हैं किन्तु निराला की काव्य-प्रतिभा इन रूपों में भी बहुत सफल हुई है।

अन्त में कहा जा सकता है कि गीतिकार की दृष्टि से निराला का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

: ६ :

निराला और प्रकृति

प्रगति और मानव का अनादि काल से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। जब मानव आज की आडम्बरपूर्ण सभ्यता से असंख्य योजन दूर था और प्रकृति की क्रोड़ में एकाकी वास करता था, तब प्रकृति ही उसके लिए सब कुछ थी। वह अहर्निशि प्रकृति के साथ ही खेला करता था और इससे ही अपने सुख-दुख की वार्ता किया करता था। लेकिन ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्यता के पथ पर बढ़ता गया, प्रकृति के साथ उसका सम्वन्ध भी शिथिल होता गया और वह प्रकृति की मनोरम गोद को छोड़कर नगरों के भव्य भवनों को अपना निवास स्थान बनाता गया। किन्तु प्रकृति उसकी भावनाओं में रम चुकी थी, इसलिए उससे दूर रहकर भी वह उसे अपने भावों से दूर न कर सका। प्रकृति ही उसकी भावनाओं को उद्बुद्ध करती रही, उनमें नवीन कल्पनाओं तथा प्रेरणाओं के रंग-बिरंगे रंग भरती रही। यही कारण है कि काव्य और प्रकृति का आज भी अविच्छिन्न सम्बन्ध बना हुआ है।

युग के साथ भावनायें और मान्यतायें परिवर्तित होती रहती हैं, फलत: कवियों के प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण भी बदलते रहे हैं और बदलते रहेंगे। छायावादी कवियों ने प्रकृति का इतनी विधाओं से वर्णन किया है कि कतिपय आलोचक छायावाद को 'प्रकृति काव्य' के अतिरिक्त कुछ नहीं समझते। इन कवियों ने कुछ तो प्रकृति विषयक परम्पराओं को ज्यों का त्यों अपना लिया है और कुछ नए रूप भी स्थिर किए हैं। आज प्रकृति जड़ न रह कर चेतन सत्ता है। आज का कवि उसके साथ अपने मनोनुकूल विविध सम्बन्धों की स्थापना करता है। मुख्य रूप से छायावादी काव्य में प्रकृति का वर्णन निम्नलिखित रूपों में हुआ है—

१. आलम्बन रूप में

२. उद्दीपन रूप में

३. मानवीकरण

४. रहस्य भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए

५. जिज्ञासा भाव की अभिव्यक्ति के लिए

निराला छायवाद के प्रमुख कवि हैं, अतः उनके काव्य में प्रकृति के ये सभी रूप मिल जाते हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

आलम्बन रूप

जब प्रकृति में किसी प्रकार की भावना का अध्याहार न करके उसका ज्यों का त्यों वर्णन कर दिया जाता है, तो वह उसका आलम्वन रूप होता है। निराला के काव्य में इस प्रकार के वर्णनों के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। यथा—

'लख ये काले काले बादल,
नील सिन्धु में खुले कमल दल
हरित ज्योति, चपला अति चंचल,
सौरभ के, रस के,
अलि, घिर आये घन पावस के।'

उद्दीपन रूप

जब प्रकृति का प्रयोग भावनाओं को उद्दीपन करने के लिए किया जाता है, तो वह प्रकृति का उद्दीपन रूप होता हैं। यमुना की लहरों को देखकर निराला को भी कुछ अतीत की स्मृति आ जाती है और इनकी भावनाएँ उद्दीप्त हो हो उठती हैं—

'यमुने ! तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान ?
पथिक प्रिया सी जाग रही है
उस अतीत के नीरव गान ?'

मानवीकरण

प्रकृति में चेतन-सत्ता का आरोपण ही मानवीकरण कहलाता है। छाया-वादी काव्य ने प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में ही देखा है, जड़ के रूप में नहीं। यही कारण है कि छायावाद इसी रूप को विशेषतः अपना कर चला

है। निराला के काव्य में भी इसी रूप के अगणित उदाहरण उपलब्ध होते हैं। सन्ध्या को इन्होंने एक सुन्दरी के रूप में चित्रित किया है—

"मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे।"

दार्शनिकता

प्रकृति के माध्यम से दर्शन की अभिव्यक्ति करना छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। निराला की निम्नलिखित पंक्तियों में ब्रह्म और जीव में रूप में प्रकृति के क्रीड़ा विलास का चित्रण पाया जाता है—

'विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली
दृग बन्द किये शिथिल पत्रांक में।'

जिज्ञासा भाव

छायावादी कवि जहाँ एक ओर प्रकृति के माध्यम से अपनी रहस्य भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है, वहाँ दूसरी ओर अपनी जिज्ञासा एवं कौतूहलता को भी प्रकट करता है। निराला में भी अन्य छायावादी कवियों की भाँति यह भाव पर्याप्त मात्रा में मिलता है। तरंगों को देखकर उनकी कौतूहल भावना इन शब्दों में फूट पड़ती है—

'किस अनन्त का नील अंचल हिला हिला कर
आती हो तुम सजी मण्डलाकर ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?'

और गिरि से प्रवाहित प्रपात को देखकर कवि की जिज्ञासा इस प्रकार जग उठती है—

'अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात
मचलते हुए निकल आते हो,
उज्ज्वल ! घन अन्धकार के साथ
खेलते हो क्यों ? क्या पाते हो ?'

इन रूपों के अतिरिक्त निराला के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों रूप ही मिलते हैं ।एक ओर यदि वे प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण कोमल शब्दावली में करते हैं—

'निशा के उर की खुली कली
भूषन बसन सजे गोरे तन,
प्रीत-भीति काँपे पग उर मन,
बाजे नूपुर रुन-रिन-रन-झन,
लाज विवश सिहरी ।'

तो दूसरी बादल राग की कठोरता भी मिलती है—

'सरित-तडित-गति-चकित पवन में
मन में विजय-गहन-कानन में
आनन आनन में रव-घोर-कठोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर ।'

अतः कहा जा सकता है कि निराला के काव्य में प्रकृति का विशद एवं व्यापक चित्रण मिलता है, साथ ही वे सब रूप भी उपलब्ध होते हैं, जो आधुनिक कवियों ने प्रकृति के लिए अपनाए हैं ।

निराला की भाषा

भावपक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी-साहित्य में छायावाद का महत्वपूर्ण योग है। भावपक्ष के क्षेत्र में छायावाद ने हिन्दी में अनेक विषयों का समावेश किया और कलापक्ष के क्षेत्र में नवीन अलंकारों को तथा नवीन भाषा-शक्ति को जन्म दिया। निराला की भाषा भी छायावादी भाषा के गुणों से सम्पन्न है। छायावादी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं - कोमलता, शब्दों की मधुर योजना, प्रकृतिगत प्रतीकों की प्रचुरता, भाषा का लाक्षणिक प्रयोग संगीतात्मकता, चित्रात्मकता और प्राचीन भाषागत रूढ़ियों से प्रति विद्रोह। निराला की भाषा का विश्लेषण करने के लिए ये ही आधार उपयुक्त हैं।

कोमलता

छायावादी कवियों ने भाषा में कोमलता लाने का अत्यधिक प्रयास किया है और अपने इस प्रयास को सफल बनाने के लिए उन्हें अंग्रेजी और बंगला की कविता-पद्धतियों को अपनाना पड़ा है। 'स्वर्ण-समय', 'कनक प्रभात' 'स्वप्निल मुस्कान' आदि शब्दों का ग्रहण छायावादियों ने अंग्रेजी से किया और 'छलछल', 'कुहकिनी', 'छलना' आदि शब्द बंगला से लिए। सभी छायावादी कवियों की भाषा में कोमलता है। निराला की भाषा में यह गुण अपेक्षाकृत कम मिलता है, किन्तु इसका अभाव नहीं है। यथा—

'कहाँ कनक-कोरों के नीरव,
अश्रु कणों में भर मुस्कान,
विरह मिलन के एक साथ ही,
खिल पड़ते वे भाव महान्।'

शब्दों की मधुर योजना

प्रत्येक छायावादी ने अपनी भाषा को भावानुसारिणी बनाने के लिए शब्दों की मधुर योजना की है। नन्ददास की भाँति पन्त तो इस क्षेत्र में शब्दों के 'जड़िया' कहे जा सकते हैं। शब्दों की सुन्दर पहचान का अद्भुत परिचय

निराला की भाषा में भी मिलता है। यथा—

> 'अलि अलकों के तरल तिमिर में
> किसकी लोल लहर अज्ञात
> जिसके गूढ़ मर्म से निश्चल
> शशि-सा मुख ज्योत्स्ना-सी गात ?'

प्रकृतिगत प्रतीकों की प्रचुरता

प्रकृति और छायावादी कवियों का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। छायावादी काव्य में प्रकृति का प्रयोग इतने अधिक रूपों में हुआ है कि कतिपय आलोचक छायावादी काव्य को 'प्रकृति काव्य' कहना ही समीचीन मानते हैं। छायावादी कवियों ने प्रकृति का उपयोग जिस कुशलता मे भावक्षेत्र में किया है, उसी कुशलता से कलापक्ष के क्षेत्र में भी किया है। प्रकृतिगत प्रतीकों के द्वारा उन्होंने अपनी अभिव्यंजना शवित को शक्ति एवं प्रभावोत्पादकता प्रदान की है। अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला ने भी प्रकृतिगत प्रतीकों का अपनी भाषा में प्रचुरता से प्रयोग किया है। यथा—

> 'वहाँ नयनों में केवल प्रात
> चन्द्र-ज्योत्स्ना ही केवल गात
> रेणु छाये ही रहते पात
> मंद ही बहती सदा बयार।'

यहाँ प्रातः, चन्द्र-ज्योत्स्ना और रेणु क्रमशः स्फूर्ति शांति और शीतलता के प्रतीक हैं।

भाषा का लाक्षणिक प्रयोग

भाषा का लाक्षणिक प्रयोग छायावाद की विशेषता है। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही छायावादियों को लाक्षणिक प्रयोगों की आवश्यकता हुई। निराला की भाषा में भी लाक्षणिक प्रयोगों का प्राचुर्य है। यथा—

> 'बहती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियां कितनी
> दग्ध चिता के कितने हाहाकार।'

यहाँ 'दग्ध चिता के हाहाकार' और 'स्मृतियों का बहना' लाक्षणिक प्रयोग है।

संगीतात्मकता

संगीतात्मक भाषा का छायावादी कवियों ने बहुलता से प्रयोग किया है। तुक के संगीत को इन्होंने बहिष्कृत सा कर दिया, और उसके स्थान पर लय-संगीत को इन्होंने प्राथमिकता दी। डा० केसरीनारायण शुक्ल से शब्दों में—

'प्रत्येक समय की सर्वोत्तम कविता के समान आज की (छायावाद की) कविता भी सच्ची भाव सृष्टि का परिणाम है जिसमें शब्द और अर्थ को उपमान और प्रतीक के समान मधुर लय से योग रहता है।'

निराला की भाषा में भी लय-संगीत का प्राधान्य है। यथा—

'प्रिय मुद्रित दृग खोलो।
जीवन प्रसून वह वृन्त हीन
खुल गया उषा-नभ में नवीन
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर-भर
बह चली चतुर्दिक कर्मलीन
तुम भी निज तरुण तरंग खोल
नव अरुण संग हो लो।'

चित्रात्मकता

छायावादी कवियों में चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। वे शब्दों के बल पर ही भाव-चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है। निराला ने भी निम्नलिखित पंक्तियों में 'संध्या सुन्दरी' का चित्र प्रस्तुत किया है—

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किन्तु जरा गम्भीर—नहीं है उसमें हास-विलास।'

रूढ़ियों के प्रति विद्रोह

छायावाद का जन्म ही विद्रोह की भूमिका पर हुआ था, फलतः छायावादी

कवि समाज और साहित्य में विद्रोह की भावना लेकर अवतीर्ण हुए । प्राचीन रूढ़ियों से इन्हें न तो लगाव ही था और न उनके प्रति कुछ आस्था ही थी । भाषा के विषय में भी इन्होंने विद्रोहात्मक प्रवृत्ति से काम लिया । इन्होंने भाषा को केवल भावाभिव्यक्ति का साधन माना, इसीलिए भावों की सहज एवं पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए व्याकरण के बन्धन तोड़ दिये गये, छन्दों की पायलें उतार दी गईं । निराला इस क्षेत्र में अग्रणी हैं ।

इन छायावादी विशेषताओं के अतिरिक्त निराला की भाषा की कुछ अपनी भी विशेषताएँ है । इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है । जिसमें तत्सम शब्दों की बहुलता हैं । तत्सम शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से इनकी भाषा के दो रूप हैं—सरल और क्लिष्ट । जहाँ निराला ने सरल भाषा का प्रयोग किया है, वहाँ पर भाषा इतनी सरल है कि सामान्य पाठक भी आसानी से उसका अर्थ निकाल देता है । यथा—

> 'वह आता !
> **दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता ।'**

इस प्रकार की भाषा इनके प्रगतिकाव्य में अधिक मिलती है । जहां इनकी भाषा का क्लिष्ट रूप है, वहाँ तत्सम शब्दों के अतिरिक्त समास-पद्धति के भी दर्शन होते हैं । यथा—

> **'राघव-लाघव—रावण-वारण—गतयुग्म-प्रहर**
> **उद्धत—लंकापति—मर्द्धित—कपि-दल-बल-विस्तार,**
> **अनिमेष-राम—विश्वजिद्दिव्य—शरभंग-भाव—**
> **विद्धांग—बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि—खर-रुधिर-स्राव**
> **रावण-प्रहार-दुर्निवार—विकल-वानर-दल-बल—**
> **मूर्च्छित—सुग्रीवांगद—भीषण—गवाक्ष—गय-नल,—**
> **वारित—सौमित्रि—भल्लपति—अगणित—मल्लरोध,**
> **गर्जित-प्रलयाब्धि—क्षुब्ध—हनुमत्—केवल—प्रबोध···।'**

फिर भी यह कहना अनुपमुक्त न होगा कि निराला की शब्द-योजना भावानुसारिणी है । यदि प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने कोमल एवं सरल शब्दावली का प्रयोग किया है तो ओज गुण को व्यक्त करने के लिए शक्तिशाली और समासयुक्त शब्दावली प्रयुक्त की है ।

अलंकार योजना

मनुष्य में सौन्दर्य की भावना प्राकृतिक है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुन्दरता के निराला का प्रयत्न करता है और दूसरों से भी सौन्दर्य की अपेक्षा करता है। यही नियम उसकी अभिव्यक्ति पर भी चरितार्थ होता है। वह चाहता है कि उसकी वाणी भी अधिकाधिक सुसज्जित और प्रभावशाली हो। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए उसने काव्य में अलंकारों का विधान किया है।

अलंकार तीन प्रकार के होते हैं — शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार। जहाँ शब्द में चमत्कार होता है, वहाँ शब्दालंकार माना जाता है और जहाँ अर्थ में चमत्कार होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है और जहाँ शब्द तथा अर्थ दोनों में चमत्कार होता है, वहाँ उभयालंकार होता है। छायावाद के अन्य कवियों की भाँति निराला के काव्य में भी इन तीनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। पहले शब्दालंकारों के कुछ उदाहरण देखिए—

'कम्पित उनके करुण करों में
तारक-तारों को सी तान,
बता बता अपने अतीत का
क्या तू भी गाती है गान ?'

इन पंक्तियों में छेकानुप्रास और वीप्सा अलंकारों दोनों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। और—

'वह सहसा सजीव कम्पन-द्रुत
सुरभि-समीर अधीन वितान,
वह सहसा स्तम्भित वक्षःस्थल
टलमल पद प्रदीप निर्वाण।'

यहाँ वृत्यनुप्रास है। और—

'झूम-झूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर पर निज रोर।'

इन पंक्तियों में वीप्सा अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों के अतिरिक्त निराला काव्य में अर्थालंकारों का प्रयोग भी सफल एवं भावपूर्ण हुआ है यथा—

'अलि अलकों के तरल तिमिर में
किसकी लोल लहर अज्ञात,
किसके गूढ़ मर्म में निश्चित
शशि-सा-मुख ज्योत्स्ना-सा गात ।

इन पंक्तियों में उपमा अलंकार है और प्रभाव-समय का प्राधान्य है। सन्देह अलंकार का भी सफल प्रयोग देखिए—

'तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता,
या किसी दुख हीन की है आह तू
या किसी तरु की-तरुण बनिता-लता ।'

छायावाद-काव्य में ध्वनि-चित्रण या नाद-व्यंजना के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते है । निराला-काव्य में भी इन उदाहरणों का अभाव नहीं है—

'निशा के उर की कली खिली !
मूँद पलक प्रिया की शैया पर
रखते ही पग, उर धर-धर-धर
काँप उठा वन में तरु—मर्मर
चली पवन पहली ।'

पाश्चात्य प्रभाव के कारणों से छायावादी काव्य में कुछ विदेशी अलंकार भी आ गये हैं । विशेषण-विपर्यय भी उनमें से एक है । समस्त छायावादी कवियों ने इनका प्रयोग किया है । निराला-काव्य का यह उदाहरण देखिए—

'यमुने ! तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान ।
पथिक-प्रिया-सी जगा रहे
उस अतीत के नीरव गान ।'

अतः कहा जा सकता है जिस प्रकार छायावादी काव्य में अलंकार-योजना का सबल और समृद्ध रूप दिखाई देता है, उसी प्रकार निराला काव्य में भी इसका यही रूप परिलक्षित होता है। निराला की अलंकार योजना भाषा की शक्ति में वृद्धि और भावों में उत्कर्षता उत्पन्न करती है ।

छन्द-योजना

एक समय था, जब छन्द काव्य का का अनिवार्य अंग माना जाता था, किंतु आधुनिक काल में छन्द का महत्व अस्वीकार कर दिया गया है । निराला तो यहाँ तक कहते हैं कि काव्य का वास्तविक विकास छन्दों के बन्धन से मुक्त होकर होता है । ये लिखते हैं—

'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है । मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना । जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं, फिर भी स्वतन्त्र; इसी तरह कविता का भी हाल है । मुक्त-काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उसके साहित्य में एक प्रकार की एक स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है ।'

यही कारण है कि आधुनिक काल में सर्वप्रथम निराला ने ही कविता को छन्दों के बन्धनों से मुक्त किया । प्रारम्भ में इनकी इस प्रवृत्ति का घोर विरोध हुआ और मुक्त छन्दों को खण्ड छन्द, केंचुआ छन्द और कंगारू छन्द का नाम दिया गया । निराला इन विरोधों से विचलित नहीं हुए और अपनी साधना में रत रहे । जिसका परिणाम यह हुआ कि आज हिन्दी साहित्य में मुक्तछन्द का बोलबाला है ।

कुछ लोगों की धारणा थी कि मुक्तछन्द की रचना और गद्य में कोई अन्तर नहीं होता । निराला ने उनके इस अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न किया और मुक्तछन्द का विश्लेषण करते हुए लिखा—

'मुक्तछन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है ।...उसमें नियम कोई नहीं, केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पड़ता है । कहीं-कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं । मुक्तछन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति ।

इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि मुक्तछन्द में किसी नियम-पालन की अपेक्षा नहीं, तथापि प्रवाह उसका अनिवार्य धर्म है ।

निराला ने मुक्त छन्दों का बड़ी ही सफलता से प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ ही पर्याप्त होंगी—

'फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित गहन गिरि-कानन
कुञ्ज लता-पुञ्जों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ ।'

यहाँ 'पवन' से लेकर 'कानन' तक की अधिकतर इकहरे वर्गों वाली पंक्ति एक साँस में पढ़ी जा सकती है । लगता है, जैसे पवन बेरोक-टोक बढ़ रही हो, किन्तु तीसरी पंक्ति में लघु-गुरु वर्णों की योजना और 'कुंज तथा पुंज' के संयुक्ताक्षर मानो पवन के मार्ग में अटकाव बनकर अड़े हैं कि उसे झाड़ी-झुरमुटों से उलझ-उलझ कर आगे बढ़ना पड़ रहा हो और 'पहुंचा' का आकार तो जैसे सारी क्रिया की समाप्ति पर अपेक्षित विराम-स्थल की सूचना देता है । यही है मुक्तछन्द की विशेषता ।

मुक्तछन्द के अतिरिक्त निराला ने तुकान्त कवितायें भी लिखी हैं । यथा —

'भारति, जय विजय करे
कनक-शस्य-कमलधरे
लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे
× × +
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर ऊपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित—
द्युति ने क्षमा माँगी ।
(प्रिय) यामिनी जागी ।'

इन उद्धरणों के देखने से यह बोध हो जाता है कि तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार की कविताएँ लिखने में निराला पूर्णतया सिद्धहस्त हैं । इन दोनों प्रकार की कविताओं से ही मंडित होने का निराला की भाषा को गौरव मिला है ।

: ११ :

राम की शक्तिपूजा की कथावस्तु

इस कविता की रचना सन् १९३६ ई० में हुई थी। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह कविता आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगति की सीमा मानी जा सकती है। इसमें राम और रावण के युद्ध का वर्णन है।

दिन भर के घमासान राम-रावण के युद्ध के पश्चात् सूर्य अस्त हो गया। दिन के हृदय पर आज का राम-रावण का अनिर्णीत एवं अमर युद्ध लिखा रह गया। दोनों ओर के योद्धा तेज हाथों से धनुष पर बाण चढ़ाकर चलते थे। जिनकी गति बहुत तेज थी। वे बाण सैकड़ों भालों को रोकने में समर्थ थे, उनकी आवाज से नीला आकाश गूंज रहा था। प्रत्येक पल नए-नए व्यूह बदले जा रहे थे; शत्रु के अनेक प्रकार के कौशल का भेदन किया जा रहा था। राम की सेना राक्षस सेना की कुशलता को नष्ट कर रही थी। क्रुद्ध बानर भयानक शब्द करते हुए राक्षस सेना पर टूट रहे थे। अपने बाणों को लक्ष्य-भ्रष्ट देखकर कमलनैन राम की आँखों से क्रोध की आग निकलने लगती थी और वह लाल आँखों से रावण के अहंकार का नाश करने के लिए आगे बढ़ते थे। राम अत्यन्त कुशलता के साथ आक्रमण करते थे और रावण इस आक्रमण को विफल कर देता था, इस प्रकार दो पहर बीत गए। दुस्साहसी रावण बानर सेना के बल के विस्तार को मसल रहा था। विश्व को जीतने की सामर्थ्य रखने वाले राम अपने दिव्य बाणों की लक्ष्य-भ्रष्टता को आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। राम का शरीर रावण के बाणों से बिंधा हुआ था, क्रोध के कारण वे अपनी मुट्ठी में धनुष को कसे हुए थे। उनके शरीर से रक्त की प्रवल धारा वेग से बह रही थी। रावण इतनी भयंकर तथा कुशलता से युद्ध कर रहा था कि उसके प्रहारों को रोकना असंभव था, इसीलिए वलवान वानरों की सेना विकल हो उठी थी। सुग्रीव, अंगद, विभीषण, गवाक्ष, गय, नल आदि समस्त वानर-नेता मूर्च्छित हो गए थे। लक्ष्मण और जाम्बान असंख्य राक्षस योद्धाओं के रोकने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। रणक्षेत्र में ऐसा

कोलाहल मचा रहा था मानों प्रलय-समुद्र उद्वेलित होकर गर्जना कर रहा हो इस कोलाहल के बीच केवल हनुमान जी ऐसे थे जो अपने होश में थे, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों किसी विशाल ज्वालामुखी से अग्नि की लपटें निकल रही हों। इस प्रकार हनुमान चार प्रहर तक रावण के साथ अकेले युद्ध करते रहे और सीता के भयभीत हृदय में आशा उत्पन्न करते रहे। इस प्रकार हनुमान रावण का दमन करते रहे।

दोनों दल—राम और रावण की सेना—अपने-अपने शिवरों को लौटे। विजय के दम्भ से राक्षक अपने भारी पैरों से पृथ्वी को कम्पित कर रहे थे और उनके महान् हर्ष के भारी कोलाहल से आकाश बार-बार विकल हो रहा था। वानर सेना उदास थी। वह अपने पति राम के चरण-चिह्नों को देखकर इस प्रकार शान्ति के साथ अपने शिविरों को लौट रही थी; जैसे कोई वौद्ध साधुओं का दल विपिन्न-दशा में अपने शिविर की ओर लौट रहा हो। वातावरण शान्त था। सन्ध्या के समय झुके हुए मुख वाले कमल के समान चिन्तातुर होकर आगे-आगे लक्ष्मण चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे सारे वानर वीर चल रहे थे। आगे-राम अपने मक्खन के समान कोमल चरणों को पृथ्वी पर टेकते हुए चले जा रहे थे। राम के धनुष की डोरी ढीली पड़ी हुई थी, कमरबन्द भी ढीला था, जिसमें तूणीर को रखते थे। दृढ़ता से बँधी हुई जटाएँ और मुकुट अस्त-व्यस्त थे और उनकी प्रत्येक लट खुलकर उनकी पीठ पर वाहुओं और विशाल हृदय पर पड़ गई थी जो इस प्रकार दिखाई देती थी मानों किसी दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अन्धकार उतर आया हो और राम की खिन्न आँखें उसमें कहीं दूर से चमकने वाली ताराएँ हों।

रघुकुल-मणि राम पत्थर की शिला पर बैठ गए और कुशल हनुमान उनके हाथ पैर धोने के लिए निर्मल जल ले आये। अन्य वीर संध्याकालीन विधान तथा ईश्वरोपासना करने के लिए तालाब के किनारे पर चले गए और वहाँ से जल्दी से लौट आए। सब राम की आज्ञा की प्रतीक्षा में उनको घेरकर बैठ गए। राम के पीछे लक्ष्मण बैठे हुए थे; सामने विभीषण, धैर्यवान जाम्बन्त तथा सुग्रीव; चरण कमलों के पास हनुमान एवं अन्य सेनापति अपने-अपने स्थानों पर बैठकर एकटक राम के कमल को जीत लेने वाले उस मुख की ओर देख रहे थे जो अपनी पराजय की खिन्नता से स्याह पड़ गया था।

अमावस्या की रात्रि है। आकाश गहरा अन्धकार उगल रहा है। अंधेरे के कारण दिशाओं का भी ज्ञान नहीं रहा। हवा का संचारण शांत है। पीछे न रोका जाने वाला विशाल सागर उद्वेलित होकर गरज रहा है। पर्वत किसी ध्यान-मग्न तपस्वी की भाँति शान्त है और वहाँ पर केवल एक मशाल जल रही है।

स्वभावत: ही शांत राम को बार-बार संशय झकझोर रहा था और वे इस जग के जीवन में ही रावण की विजय के भय से बार-बार कांप उठते थे। शत्रुओं का दमन करने वाले राम का वह हृदय जो कभी आज तक थका नहीं था, निराश नहीं हुआ था और जो अकेला ही दस हजार लाखों शत्रुओ में अविचलित रहता था, यद्यपि कल को युद्ध करने के लिए बार-बार विकल हो रहा था, तथापि उनका मन तैयार होकर भी बार-बार अपने को असमर्थ मान कर अपनी पराजय स्वीकार करता था।

निराशा एवं अवसाद के इन क्षणों में राम के मन में कुमारी सीता की छवि इस प्रकार चमक उठी जैसे अन्धकार से घिरे हुए बादल में विजली चमक जाती है। उन्हें राजा जनक का वह उपवन याद आया, जिसमें राम ने एकटक सीता की छवि को देखा था। वहीं पर लताओं के बीच में उन दोनों का प्रथम प्रेमपूर्ण मिलन हुआ था। तब उन दोनों में कोई सम्भाषण नहीं हुआ, वरन् दोनों के नेत्रों ने ही परस्पर एक दूसरे से मूक सम्भाषण किया था। पहली ही बार पलक नव पलकों पर उठी और झुकी थीं; वहाँ छोटे-छोटे से पत्ते हिल रहे थे। पराग हर्ष के साथ झर रहा था। पक्षी इस प्रकार प्रसन्न होकर गा रहे थे मानों उन्हें नवीन जीवन का परिचय प्राप्त हो गया है। चन्दन के वृक्षों का समूह झूम रहा था। प्रात:कालीन सूर्य की ज्योति ऐसी सुन्दर लग रही थी मानों स्वर्ग से कोई झरना झर रहा हो। उसी दिन राम सीता को अपनी-अपनी छवि का प्रथम बार ज्ञान हुआ था। सीता के सुन्दर नयनों में इस प्रथम मिलन के कारण एक प्रकार की पुलक दौड़ गई थी, जिसका आनन्द तुरीयावस्था से प्राप्त आनन्द के समान था।

राम को जब सीता के प्रथम मिलन की याद आई तो हर्ष के कारण उनका मन रोमांचित हो गया, उनका मन प्रसन्न हो गया और उनका हाथ अपने आप ही इस प्रकार उठ गया जैसे वह फिर शिव के धनुष को तोड़ना चाहते

हों। सीता के ध्यान में डूबे हुए राम के अधर पर मुस्कराहट फूट गई और उनके हृदय में विश्व को पराजित करने की भावना भर आई। उन्हें अपने वे दिव्य और मंत्रों से पवित्र किए हुए असंख्य बाण याद आए जो सारे के सारे अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए देवदूत की भांति आकाश में उड़ गये थे। अपनी कल्पना में तब राम ने देखा कि सारे राक्षस ताड़का, सुबाहु, विराध, त्रिशिरा, दूषण और खर उनके बाक्षों की आग में पतंगों की भाँति जल रहे हैं। इसके वाद राम की स्मृति में वह विशाल मूर्ति आई जो आज उन्होंने रण में देखी थी। वह मूर्ति सारे आकाश को अपनी विशालता से ढके हुए थी और राम के सारे अग्निबाण उसमें लग-लग कर क्षण भर में ही समा गये थे। वे बाण उस भीमाकार मूर्ति को पाकर उसके तन में क्षण भर में ही समा गये थे। इस दृश्य को देखकर अपार बलशाली तथा विष्णु के अवतार राम अपनी पराजय की शंका से व्याकुल हो उठे और अपनी आंखों में सीता के वे नेत्र झाँकने लगे, जिनमें राम की छवि समाई हुई थी। इसके बाद राम ने खल-खल करते हुए रावण का अट्टहास सुना; जिसके कारण स्मृति में लीन उनकी आखों से दो मोतियों के समान उज्ज्वल आँसू गिर पड़े।

हनुमान वैठे हुए राम के चरण कमलों को देख रहे थे और सोच रहे थे कि राम के ये चरण युद्ध की समस्त दार्शनिक मान्यताओं के ब्रह्म हैं और नहीं हैं—ही एक रूप है जो निर्दोष गुणों के समूह हैं, साधना करते समय उपासक सहज भाव से इन्हीं चरणों का ध्यान करते हैं। ये चरण साधना के मध्य भी साम्य है। यह सोचकर हनुमान ने राम की ओर देखा। राम का बायाँ हाथ दाहिने पैर पर तथा दाहिने हाथ की हथेली पर बायाँ हाथ रखा हुआ था। हनुमान राम के इस स्वरूप में सत्य 'ब्रह्म के' सच्चिदानन्द रूप के दर्शन कर भक्ति के आवेश के कारण गद्‌गद् हो गये। राम का वह रूप मुक्तिलोक के समान था, जहाँ जीवन अनंत विजय प्राप्त करता है। राम की इस भावमयी तथा गम्भीर मुद्रा को देखकर हनुमान सहज भक्ति-भावना के साथ द्वैत-भावना से युक्त होकर—राम ब्रह्म हैं और ब्रह्म से भिन्न भी हैं—राम नाम का जाप कर रहे थे। इसी समय राम के नेत्रों से गिरे हुए दो आँसू उनके चरणों पर आ गिरे। हनुमान ने जब उन आँसुओं को देखा तो उन्हें प्रतीत हुआ जैसे

आकाश में तारों का समूह चमक उठा हो। इस दृश्य को देखकर उन्होंने सोचा कि ये राम के नहीं, बल्कि श्यामा के शुभ चरण हैं और ये दोनों आँसू उन चरणों के मध्य सुशोभित होने वाले या तो दो हीरे हैं अथवा दो कौस्तुभ मणियां हैं। हनुमान के ध्यान का तारा टूटा, उनका स्थिर मन विकल हो उठा और उन्होंने संदिग्ध भाव से अपनी दृष्टि ऊपर उठाकर राम की ओर देखा। यद्यपि वही कमलनयन बैठे थे, किन्तु उनकी आंखों के आंसू उमड़े हुए थे और उनका सदैव प्रसन्न रहने वाला मन कुछ-कुछ व्याकुल और उदास था।

राम के चरणों पर गिरते हुए अश्रुओं को देखकर और यह सोचकर कि ये राम के ही आँसू हैं—राम अत्यन्त दुःखी एवं विकल हैं—अपार शक्ति के साथ खेलने वाला तथा सागर के समान अथाह हनुमान उत्तेजित हो उठा। उसकी उत्तेजना से प्रेरित होकर उनके पिता की ओर से भयंकर शोर करते हुए उनचासों पवन एक साथ चलने लगे, जिससे हनुमान के हृदय पर इकट्ठी हुई चिन्ता रूपी अतुल भाप उड़ गई; अर्थात् उनकी चिन्ता दूर हो गई, क्योंकि उन्हें निश्चय हो गया था कि रावण की संरक्षिका महाशक्ति इस प्रलय से न बच सकेगी। सैकड़ों भयंकर चक्कर लगते हुए भँवर चलने लगे। तरंगों की भयंकर गति से पहाड़ उठने लगे बहने लगे। पानी का ढेर पछाड़ खाता हुआ दूसरे पानी के ढेर पर चढ़ने लगा। पानी का वह अथाह प्रवाह पृथ्वी की सीमा को तोड़कर सागर का हृदय विशाल करने लगा। वह सैकड़ों वायु के बल-वेग से बहने लगा, जिससे स्थान का ज्ञान भी न रहा। विपुल जलराशि को मथता हुआ वायु भयंकर शब्द कर रहा था। इस प्रकार का भयानक दृश्य उपस्थित करते हुए वज्र के समान दृढ़ अंग वाले तथा एकादश रुद्र के अवतार हनुमान क्षुब्ध होकर भयंकर अट्टहास करते हुए महाकाश में पहुंचगये

हनुमान जब महाकाश में पहुंचे तो वहाँ एक ओर तो रावण की महिमा को बनाये रखने वाली तथा रात के अंधकार के समान श्यामवर्ण वाली महाशक्ति थी और दूसरी ओर शिव-भक्त राम की पूजा के प्रताप के द्वारा तेज का प्रसार करने वाले हनुमान थे, उस ओर रावण के द्वारा पूजित शिव की शक्ति थी और इस ओर राम के द्वारा उच्चारण की हुई शिव की वन्दना थी, जिसके बल पर अटल होकर हनुमान समस्त आकाश को निगलने का साहस कर रहे थे। भावी महाविनाश देखकर अचल शिव क्षण भर के लिये चंचल हो गये और श्यामा के पदतल का भार धारण करने वाले शिव मंद स्वर में बोले—

'देवि ! अपना तेज रोको। यह वानर नहीं है । यह कभी काम-वासना से पीड़ित होकर नारी के साथ आबद्ध नहीं हुआ है। यह महावीर है। यह राम की पूजा का साक्षात् प्रतीक और अक्षय शरीर वाला है । यह राम का परम भक्त और उनकी लीलाओं का साथी है। हे देवि ! इन पर प्रहार करने से तुम्हारी भयानक हार होगी । इसलिए विद्या का सहारा लेकर इनके मन को शान्त करो। इस प्रकार यह बानर विनीत बन जायेगा और आने वाला संकट टल जायेगा।' शिव की यह बात सुनकर महाशक्ति ने हनुमान-माता अंजनी का रूप धारण किया और हनुमान से बोलीं—'जब बचपन में तुमने सूर्य को निगल लिया था, तब तो तुम्हें ज्ञान नहीं था, क्योंकि तब तुम केवल बालक थे। यही भाव तुम्हें रह-रहकर व्याकुल कर रहा है और इसी घटना के दुःख को तुम्हारी माता सहन करती रहे, यह बड़ी लज्जा की बात है । यह महाकाश है, जहाँ पर उस शिव का निवास-स्थान है, जिसकी पूजा तुम्हारे आराध्यदेव राम भी करते हैं। क्या तुम्हारे आराध्यदेव राम तुम्हें ऐसा करने की अनुमति देंगे ?' यह सुनकर हनुमान का क्रोध शांत हो गया, वे नम्र बन गए। उसी समय अंजना का रूप धारण करने वाली महामाया अन्तर्धान हो गई। तब हनुमान धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतर आए और फिर दीन-भाव से राम के चरणों के पास बैठ गये।

कुछ क्षण तक राम के दुःख में डूबे हुए विभीषण राम से कहने लगे—'हे सखा ! आज तुम्हारा वह मुख प्रसन्न नहीं हैं, जिसे देखकर सारे वीर वानर और भल्लूक आदि युद्ध के श्रम को भूलकर शांति एवं नवजीवन प्राप्त किया करते थे। हे रघुवीर ! तुम्हारे तरकश में आज भी वे ही बाण सुरक्षित हैं, जिनसे तुमने रावण-कुल का संहार किया है। रण में कौशल दिखाने वाले हाथ भी वे ही हैं और वही तुम्हारा अपार बल है। मेघनाद को रण में जीतने वाले लक्ष्मण भी वही हैं वही जामवन्त है, वही सुग्रीव है और वही अंगद है। किंतु न जाने क्यों इस अनुचित समय में तुम्हारे मन में दुःख और निराशा के भाव भर गये हैं। हे रघुकुल-गौरव ! तुम इस समय छोटे बनते जा जा रहे हो। जब रण में विजय प्राप्त होने वाली है, तब तुम रण से उदासीन बन रहे हो। तुम्हारी इस भावना से अब तक का किया हुआ सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा जब सीता से मिलने का, उसे रावण के बन्दीगृह से छुड़ाने का अवसर आया है तो तुम सीता की मुक्ति से अपना हाथ खींच रहे हो। रावण को तुम जानते

ही हो। वह बड़ा लम्पट, खल, पापी और आचारहीन है। वह उपवन में बैठ कर सीता को अनेक प्रकार के दुःख देगा और अपने सभासदों से घिर कर अपनी विजय की कथा सुनाता रहेगा। इस प्रकार आप न तो सीता की मुक्ति ही कर पायेंगे और न मुझे लंका का राज्य ही दे पायेंगे, जिसे देने के लिए आपने मुझे वचन दिये हैं।'

विभीषण की बातें सुनकर राम अत्यन्त संयमित एवं स्वाभाविक स्वर में बोले—हे मित्रवर ! अब हमारी युद्ध में विजय नहीं होगी, क्योंकि अब यह नर-वानर का राक्षस से युद्ध नहीं रहा है, बल्कि रावण का निमन्त्रण पाकर महाशक्ति उसकी सहायता कर रही है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिधर अन्याय है, उधर ही महाशक्ति लड़ रही है। यह कहते-कहते राम के नेत्र छलछला आए और आँसुओं की बूँदें गिरने लगीं। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और आगे वे फिर एक भी शब्द न कह सके। राम की इस स्थिति को देखकर लक्ष्मण का प्रचंड तेज चमक उठा; हनुमान राम के दोनों चरणों को पकड़कर लज्जा के मारे पृथ्वी में धँस से गये, पुष्ट भुजाओं वाले जामवन्त पत्थर की मूर्ति की भाँति स्थिर बन कर रह गये। सुग्रीव व्याकुल हो गये। अपने स्वभाव से संयत होकर राम फिर कहने लगे—'मेरी समझ में यह दैवी-विधान नहीं आया कि अधर्म में लगे हुए रावण को भी महाशक्ति ने क्यों अपना समझ लिया है ? और मैं धर्म में लगा हुआ भी क्यों गैर हो गया हूं ? हे शंकर ! आज का समर तो महाशक्ति का ही खेल रहा। मैं बार-बार उन तीक्ष्ण बाणों के समूह की योजना करता, जिनसे सारा संसार जीत जा सकता है, जो तेज के समूह हैं, पर ये भी निष्फल हो गये। मैंने रण में देखा था कि महाशक्ति रावण को अपनी गोद में इस प्रकार लिए हुए थी जैसे निःशंक होकर चन्द्रमा आकाश में अपने लांछन को लिए हुए है। वे बार-बार मेरे बाणों को बीच में ही तोड़कर रावण की रक्षा कर रही थीं। मैं जब भी रौद्र रूप धारण करता, महाशक्ति की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगतीं। उसकी दृष्टि से मेरे हाथ बँध गये। तब फिर मुझसे धनुष भी नहीं उठाया गया।'

अपनी विवशता बताकर राम फिर मौन हो गये। तब जामवन्त विश्वास भरे स्वरों में बोले—'हे रघुवर ! मैं आपका अपने पथ से विचलित होने का कोई कारण नहीं देखता। आप भी यह शक्ति धारण करके पूजा का उत्तर दृढ़

पूजा से दो। यदि रावण अशुद्ध होकर भी आपको भयभीत कर सका है तो आप निश्चय ही महाशक्ति की सिद्धि करके उसे नष्ट कर देंगे। आप महाशक्ति की पूजा कीजिए। जब तक आपको अपनी पूजा में सिद्धि न मिले, तब तक आप रण में जाना छोड़ दीजिए। तब तक लक्ष्मण इस विशाल सेना के सेनापति होंगे।' राम को जामवन्त की बात समझ में आई और वे तदनुसार ही पूजा करने के लिए तत्पर हो गये। राम की खिन्न एवं निराश सेना में एक बार फिर सुख और आशा की लहर दौड़ी। राम की आँखों के समक्ष दुर्गा की कल्पित मूर्ति झूल गई। वे बहुत देर तक उस कल्पित मूर्ति के ध्यान में मग्न रहे, फिर आँखें खोलकर बोले—'हे बन्धुवर! सामने जो यह पर्वत स्थित है, जो सैकड़ों हरे-भरे कुंजों से शोभित, श्यामल और सुन्दर है, वह पार्वती का ही काल्पनिक रूप है और मकरंद बिन्दु के समान मधुर, शीतल तथा प्राणवान है। उसके नीचे गरजने वाला सागररूपी सिंह है।'

इसके अनन्तर राम अपनी मधुर दृष्टि से हनुमान की ओर देखकर बोले—'हे हनुमान! हमें एक सौ आठ कमल पुष्प चाहिए। यदि इनसे अधिक ला सको तो अच्छी बात है। तुम उषाकाल होते ही तुरन्त देवीदह चले जाओ। वहाँ से तोड़कर कमल-पुष्प लाओ और फिर बाद में युद्ध करना।' हनुमान ने जामवन्त से देवीदह का मार्ग पूछा। वह स्थान बहुत दूर था। वहाँ के लिए हनुमान अपने स्वामी राम के चरणों की धूलि अपने शीश पर चढ़ा सहर्ष चल दिये। विश्राम करने का समय जानकर राम ने सब को विदा किया और पुनः अपने ही विचारों में लीन हो गये।

अमावस्या की काली रात्रि समाप्त हुई। आकाश के ललाट पर सूर्य की प्रथम किरण दमकने लगी। राम ने अपनी पूजा प्रारम्भ की। चारों ओर से युद्ध के कोलाहल को सुनकर भी उनका मन विचलित नहीं हुआ, वे एकाग्र मन से अपनी साधना में लीन हो गये। वे मन में दुर्गा के असंख्य गुणों का जाप करने लगे। इस प्रकार उनकी साधना गहन से गहनतर होती गई। राम को पूजा करते-करते पाँच दिन बीत गये। वे पूरी एक माला फेरकर कमल का एक पुष्प चढ़ाते जाते थे। इस प्रकार वे अपना जाप पूरा करते जाते थे। साधना में निरत उनका ऊर्ध्वगामी मन निरन्तर आलस्यहीन भाव से ऊपर चढ़ता जा रहा था। छठे दिन उनका मन आज्ञा-चक्र पर जाकर स्थिर हो गया। प्रत्येक जाप के प्रभाव से उनकी साधना में महान् आकर्षण उत्पन्न होता

चला गया। राम के मुख से निकले हुए जप के स्वर को सुन-सुनकर आकाश थर-थर काँप रहा था। इस प्रकार राम दो दिन तक एक ही आसन पर निश्चल बैठे रहे और दुर्गा का जाप करके कमल पुष्प चढ़ाते रहे। अन्त में तपस्या का अन्तिम और आठवाँ दिन भी बीत गया। राम ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर विजय प्राप्त कर ली। राम की इस कठोर तपस्या को देखकर देवतागण आश्चर्य चकित रह गये। अन्त में चढ़ाने के लिए केवल एक कमल पुष्प शेष रह गया। घोर रात्रि थी। रात्रि के उस घोर अंधकार में छिपकर दुर्गा प्रकट हुई और मन ही मन हँसकर राम की पूजा के अन्तिम कमल-पुष्प को चुराकर ले गई।

यह अन्तिम जाप है, यह सोचते हुए राम ने दुर्गा के दोनों चरणों पर अपना ध्यान लगाया और नीला कमल लेने के लिए अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन उनके हाथ कुछ भी न लगा। फूल को वहाँ न पाकर राम का स्थिर मन विचलित हो उठा। उनका ध्यान भंग हुआ। उन्होंने अपनी पवित्र पलकें खोलीं और देखा कि जहाँ पर पुष्प रक्खा हुआ था, वह स्थान खाली है। यह सोच कर कि यह जप के पूर्ण होने का समय है और आसन छोड़ने से जप भंग हो जायेगा, राम की दोनों आँखों में आँसू छलछला आये। वे कहने लगे कि इस जीवन को धिक्कार है जो सदैव ही विरोधों का सामना करता आया है और उन साधनों को भी धिक्कार है, जिनकी खोज के लिए और प्राप्ति के लिए मैं सदैव प्रयत्नशील रहा हूँ। हे जानकी! मुझे बहुत दुःख है कि मैं तुम्हारा उद्धार न कर सका। चेतनाहीन मन में बिजली की गति से सहसा एक स्मृति जग जाने से राम का खिन्न मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने सोचा कि माता मुझे सदैव कमलनयन कहा करती थी। अभी तो मेरी आँखों के रूप में दो कमल बचे हुए हैं। मैं अपनी एक आँख चढ़ाकर इस मन्त्र का जाप पूरा करता हूं। यह सोचकर राम ने अपने तरकश की ओर देखा जिसमें पड़ा हुआ ब्रह्म-वाण झलक रहा था। राम ने वह वाण अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने बायें हाथ से अपना अस्त्र पकड़ा और दाँये हाथ से दाईं आँख पकड़ ली। जिस समय राम ने अपनी आँख को वेधने का दृढ़ निश्चय किया, उसी समय सारा ब्रह्माण्ड कांप उठा। भगवती दुर्गा ने प्रकट होकर राम का हाथ पकड़ लिया। साक्षात् दुर्गा के दर्शन करके राम उनके चरणों में झुक गये। तब दुर्गा उन्हें यह आशीर्वाद देकर कहा कि रण में तुम्हारी विजय अवश्य होगी, राम के मुख-मण्डल में समा गईं।

: १२ :

राम की शक्ति-पूजा का काव्य-रूप

काव्य विविध भावों की मनोरम स्थली है, अतः किसी एक निश्चित आधार पर काव्यों का वर्गीकरण करना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। काव्य को वर्गीकृत करने के स्थूलतः दो आधार निर्धारित किये गये हैं स्वरूप का आधार और रमणीयता का आधार।

स्वरूप से तात्पर्य काव्य के आकार, शैली आदि से है। अतः इस आधार पर काव्य के दो भेद हैं—श्रव्यकाव्य और दृश्य काव्य। जिन काव्यों का वास्तविक आनन्द उन्हें सुनने अथवा पढ़ने से मिलता है; उन्हें श्रव्य काव्य कहते हैं और जिन काव्यों का वास्तविक आनन्द उनका अभिनय देखने से मिलता है, उन्हें दृश्य काव्य कहते हैं। शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के तीन भेद किये गये हैं—गद्यकाव्य, पद्यकाव्य और चम्पूकाव्य। गद्यकाव्य पद्य शैली में लिखा जाता है, जिसके कारण इसमें लय और संगीत का अभाव होता है। कहानी, उपन्यास आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं लय, संगीत और छन्दों से मुक्त या मुक्त रचना को पद्यकाव्य कहते हैं। महाकाव्य खंडकाव्य, आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। गद्य-पद्य शैली से मुक्त काव्य को चम्पूकाव्य कहते हैं।

प्रबंध की दृष्टि से पद्यकाव्य के दो भेद होते हैं—प्रबंधकाव्य और मुक्तक-काव्य। प्रबंधकाव्य में किसी कथा का धारावाहिक वर्णन होता है और उसके पद्य परस्पर सम्बद्ध होते हैं। इसके विपरीत मुक्तक काव्य होता है; अर्थात् मुक्तक काव्य में न तो किसी धारावाहिक कथा की योजना होती है और न उसके पद परस्पर सम्बद्ध होते हैं। विस्तार की दृष्टि से प्रबंध काव्य के दो भेद होते हैं -महाकाव्य और खंडकाव्य। महाकाव्य में जीवन और जगत् का विस्तृत वर्णन होता है। इसमें आकार की विपुलता के साथ-साथ विषय की व्यापकता भी होती है। खण्डकाव्य में पूर्ण कथा के किसी एक अंश का वर्णन होता है; अतः इसमें महाकाव्य की भाँति न तो आकार की विपुलता होती है और न विषय की व्यापकता।

अब देखना है यह कि प्रस्तुत कविता—राम की शक्ति-पूजा— इन दोनों काव्य रूपों में से किसके अन्तर्गत आती है।

महाकाव्य का स्वरूप—संस्कृत और पाश्चात्य दोनों ही काव्य शास्त्रों में महाकाव्य के स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया गया है। डा० शम्भूनाथसिंह ने इन दोनों का समन्वय करके महाकाव्य का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया है—

'महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथानक काव्य रूप है, जिसमें क्षिप्र कथा-प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से मुक्त ऐसा सुनियोजित, सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक होता है तो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ होता है। जिसमें यथार्थ कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्त्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक चित्रण होता है जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं, और जिनमें किसी महत्प्रेरणा से परचालित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्वपूर्ण गम्भीर अथवा आश्चर्योत्पादक और रहस्यमय घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति-विशेष और युग-विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं अथवा रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया रहता है और जिसकी शैली इतनी उदात्त और गरिमामयी होती है कि युग-युगान्तर में महाकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान करती है।'

इस उद्धरण से महाकाव्य के चार प्रमुख तत्त्वों का बोध होता है—

१. कथानक

२. चरित्र

३. प्रेरणा और उद्देश्य

४. शैली

उपर्युक्त उद्धरण के ही आकार पर इन तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है।

१. **कथानक**—महाकाव्य का कथानक अनेक विशेषताओं से युक्त होना चाहिए। ये विशेषताएँ हैं—

१. कथा का क्षिप्र-प्रवाह

२. अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण

३. सुनियोजित, सांगोपांग और विपुल आकार से युक्त

४. रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ।

जहां तक राम की शक्ति-पूजा का सम्बन्ध है, उनमें ये सब विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, केवल आकार की विपुलता नहीं है। हमारे कथानक का सारांश यह है—

राम और रावण का युद्ध चल रहा है। राम ने रावण के परिवार के सभी वीरों को मार दिया है, केवल रावण बचा है। रावण की मृत्यु और जीवन पर ही राम की जीत और हार आधृत है। राम अपनी पूरी शक्ति लगाकर रावण को मारने का प्रयत्न करते हैं, पर रावण नहीं मारा जाता और राम के सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि महा-माया अथवा महाशक्ति रावण की रक्षा में लगी हुई है। राम जो भी बाण उसकी ओर चलाते हैं, महाशक्ति उन्हें बीच में ही पकड़ तोड़ देती है। इस घटना से राम के मन में अत्यन्त दुःख होता है और जीत की कोई आशा न देखकर पूर्णतया निराश हो जाते हैं। जब उनके पार्षद उनके दुख का कारण पूछते हैं तो राम उन्हें बता देते हैं कि जब तक महाशक्ति रावण की रक्षा कर रही हैं, तब तक उसे कोई नहीं मार सकता। साथ ही राम ने यह भी बताया कि समझ में नहीं आता कि जो रावण अधर्म के लिए लड़ रहा है, महाशक्ति उसकी क्यों रक्षा करती हैं। यह कहकर राम की आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं, जिन्हें देखकर उनके सभी पार्षद दुखी हो जाते हैं। हनुमान से अपने स्वामी का यह दुख नहीं देखा जाता है। वे अपना रूप रौद्र बनाकर महाकाश में पहुंच जाते हैं, जहाँ महाशक्ति रहती है। उनका विचार है कि पहले महाशक्ति से ही निपट लिया जावे। शिव जब हनुमान को अपने निवास की ओर आता हुआ देखते हैं तो महाशक्ति (पार्वती) को समझाते हैं कि यदि कुशलतापूर्वक हनुमान का रोष शांत नहीं किया गया तो यह तुम्हें हरा देगा, क्योंकि विश्व की कोई

भी ऐसी शक्ति नहीं है जो हनुमान को पराजित कर सके। फलतः महाशक्ति हनुमान की माता अंजना का रूप धारण करती है और हनुमान की भर्त्सना करती हुई कहती है कि तुम कितने नासमझ हो। जब छोटे थे तो सूर्य को निगल गये, जिसके कारण सभी सृष्टि को अत्यन्त दुख भोगना पड़ा। और आज शिव के पवित्र निवास पर आक्रमण करने चले हो। तुम्हें यह पता होना चाहिए कि शिव तुम्हारे आराध्य राम के भी आराध्य हैं। तुम शिव-निवास पर आक्रमण मत करो। राम तुम्हें कभी भी ऐसा करने की अनुमति नहीं दे सकते। हनुमान पर इन बातों का प्रभाव पड़ा और वे तुरन्त लौटकर फिर राम के चरणों के पास बैठ गये।

जब राम का दुख बढ़ता ही गया, उनके मन की खिन्नता और निराशा पनपती ही गई तो जाम्बवान ने प्रस्ताव रखा कि जिस प्रकार रावण ने महाशक्ति को वश में किया हुआ है, उसी प्रकार राम भी उसकी पूजा करके उसे अपने वश में कर लें। सभी इस प्रस्ताव से सहमत हुए। राम भी शक्ति की पूजा करने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने देवीदह से १०८ कमल पुष्प मंगाये और एक समीपस्थ पर्वत पर निश्चित होकर महाशक्ति की पूजा में लग गये। राम की अटल और निश्चल पूजा को देखकर सारा ब्रह्मांड कांप उठा, देवतागण आश्चर्यचकित रह गये। राम की पूजा निरन्तर पूर्णता की ओर बढ़ रही थी। जब एक पुष्प शेष रह गया तो महाशक्ति धीरे से आकर उस पुष्प को चुराकर ले गई। राम ने आँखें बन्द किये हुए ही जब पुष्प की ओर हाथ बढ़ाया तो वहाँ पुष्प न देखकर उन्हें बहुत दुख हुआ। उनके साथ समस्या यही थी कि बिना पुष्प चढ़ाये उनकी सारी साधना अधूरी और निष्फल थी। वे अन्य पुष्प लेने के लिए अपने आसन से उठ भी नहीं सकते थे, क्योंकि इससे उनका तप-भंग होता था। वे बड़े असमंजस में पड़े। एक बार पुनः उनके मन में खिन्नता और निराशा के भाव आ गये। उन्हें अनुभव हुआ जैसे अब वे रावण को युद्ध में पराजित करके सीता को उसके कारागार से मुक्त न कर सकेंगे। परन्तु कुछ देर बाद उनका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उन्हें ध्यान आया कि उनकी माता उन्हें राजीवनयन कहा करती थीं नेत्रों के रूप में अभी भी उनके पास दो कमल-पुष्प शेष हैं। यह सोचकर राम ने अपना तीर उठाया और अपनी आँख

को निकालने के लिए तैयार हुए। तभी महाशक्ति प्रकट हुई। उन्हें राम को आर्शीवाद दिया कि तुम्हारा तप पूरा हो गया है और अब युद्ध में तुम्हारी विजय अवश्य होगी।

इस कथानक में कथा का क्षिप्र प्रवाह भी है, अलंकृत-वर्णन और मनोवैज्ञानिक चित्रण भी हैं, सुनियोजित कथा भी है और रसात्मकता तथा प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति भी है। परन्तु किसी महाकाव्य के लिए जिस व्यापक कथानक की आवश्यकता होती है, उसका इसमें अभाव है। अतः केवल इतना-सा कथानक महाकाव्य के उपयुक्त नहीं हो सकता और न इस कथानक पर लिखी किसी लम्बी कविता को महाकाव्य कहा जा सकता है।

महाकाव्य के चरित्र उदात्त होने चाहिए। विशेषतः नायक तो ऐसा हो जो अत्यन्त वल-सम्पन्न एवं प्रभावशाली हो। उसमें सभी-उदात्त गुणों का समावेश हो। नायक के महत्व का प्रतिपादन संस्कृत-काव्य शास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है। आचार्य विश्वनाथ ने नायक के अनिवार्य गुणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वह किसी राजवंश से सम्बद्ध होना चाहिए। उसमें धीरोदात्त नायक के गुण होने चाहिए। वह ख्याति-प्राप्त भी होना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि प्रस्तुत कविता का नायक राम इन सभी गुणों से मंडित है। कविता के अन्य पात्र जाम्वान, विभीपण, हनुमान, सुग्रीव, अंगद आदि भी उदात्त गुणों से युक्त हैं। कहने का भाव यह है कि महाकाव्य के पात्रों में जिन गुणों की अपेक्षा होती है, वे प्रस्तुत कविता के पात्रों में विद्यमान हैं। पर यहां पर भी अवरोध व्यापकता का है। महाकाव्य में पात्रों के चरित्र-चित्रण में जिस व्यापकता का आधान जाता है, कि वह इन पात्रों में नहीं है। इस कविता में इन पात्रों के चरित्रों की कुछेक झांकियां ही दृष्टिगोचर होती हैं, सम्पूर्ण चरित्र नहीं। अत चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी प्रस्तुत कविता महाकाव्य के अन्तर्गत नहीं आ सकती।

जहाँ तक प्रेरणा, उद्देश्य और शैली का सम्बन्ध है, महाकाव्य में किसी महत्प्रेरणा, महत् उद्देश्य और महान् शैली का होना आवश्यक माना गया है। प्रस्तुत कविता प्रेरणा और उद्देश्य की दृष्टि से महाकाव्यीय क्षेत्र में आती है, पर चूंकि महाकाव्य में व्यापकता होती है, अतः उसकी शैली में वैविध्य होना

स्वाभाविक है। प्रस्तुत कविता में विस्तार का अभाव है, अतः शैली का वैविध्य यहां पर परिलक्षित नहीं होता।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा में महाकाव्यीय गुणों को समेटे हुए भी 'राम की शक्ति-पूजा' महाकाव्य नहीं मानी जा सकती, क्योंकि किसी महाकाव्य के लिए जिस व्यापकता और वैविध्य की अपेक्षा होती है, उसका इस कविता में नितान्त अभाव है।

जहां तक खंड काव्य का सम्बन्ध है, इसकी आत्मा भी इन गुणों से विभूषित होनी चाहिए जो किसी महाकाव्य की आत्मा के लिए अपेक्षित हैं, अर्थात् इसमें भी उदात्त कथानक, उदात्त चरित्र, महत्प्रेरणा और महत् उद्देश्य तथा महान् शैली का विद्यमान होना आवश्यक है पर आकार की दृष्टि से यह महाकाव्य से छोटा होता है, अतः इसमें उस व्यापकता और वैविध्य की संयोजना नहीं हो सकती, जो महाकाव्य में की जाती है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने खण्ड काव्य के स्वरूप का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है—

'मोटे ढंग से कहा जा सकता है कि खण्डकाव्य एक ऐसा पद्यबद्ध काव्य है जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो कि उसमें अप्रासंगिक कथाएँ सामान्यतया अन्तर्युक्त न हो सकें, कथा में एकांगिता—साहित्यदर्पण के शब्दों में एकदेशीयता हो, तथा कथा-विन्यास में क्रम—आरम्भ, विकास, चरम-सीमा और निश्चित उद्देश्य में परिणति हो। कथा की एकांगिता के परिणाम-स्वरूप खण्डकाव्य के आकार में लघुता-स्वाभाविक है और साथ ही उद्देश्य की महाकाव्य जैसी महनीयता सम्भव नहीं है। कथा की एकांगिता के फलस्वरूप खण्डकाव्य का प्रतिपाद्य चाहे कोई चरित्र, घटना-प्रसंग, परिस्थिति-विशेष या कोई सामयिक अथवा जीवन-दर्शन सम्बन्धी सत्य हो, कवि अपने व्यक्तित्व का उसके साथ अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठतापूर्वक तादात्म्य कर लेता है। अतः खंड काव्य के कवि का दृष्टिकोण उतना व्यक्ति-निरपेक्ष और वस्तुपरक नहीं रहता जितना महाकाव्य के लिए अपेक्षित है। कथा-विन्यास में नाटकीयता खण्डकाव्य के आकर्षण को बढ़ा देती है। खण्ड-काव्य में वर्णन-विस्तार नहीं हो सकता। उसकी वस्तु भावात्मक अधिक होती है, अतः गीतिकाव्य की भाव-प्रवणता और तीव्र अनुभूति उसमें जितनी अधिक होती है, उसका प्रभाव भी उतना ही अधिक

होता है। इस प्रकार उसकी कथा का विकास बहुत-कुछ भाव-विकास पर आधारित होता है। खण्डकाव्य का यही लक्षण उसे चरित्र-काव्य या साधारण प्रबन्धकाव्य से भिन्न करता है। खंडकाव्य का कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक, कल्पित, प्रतीकात्मक—किसी भी प्रकार का हो सकता है, ब्रह्मरूप रचना संवंधी सर्गबद्धता का नियम जिस प्रकार महाकाव्य की रचना में कठोरता के साथ पालन नहीं किया गया है, उसी प्रकार खण्डकाव्य के लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी वस्तु भिन्न-भिन्न सर्गों में अनिवार्य रूप से विभाजित होनी चाहिए। सर्गों की संख्या निर्धारित करना और भी अप्रासंगिक है। साधारणतया खण्डकाव्य में छन्दो की विवधता नहीं होती, प्राय: सम्पूर्ण काव्य एक ही छन्द में रचा जाता है।'

इस उद्धरण के अनुसार खण्डकाव्य के निम्नलिखित अनिवार्य तत्व हैं—

१. कथानक में व्यक्ति-निरक्षेपता तथा वस्तु-परकता की अपेक्षा भावत्मकता अधिक होती है।

२. कथानक की कथा एकदेशीय होती है।

३. इसके कथानक में भावात्मकता के कारण गीतितत्त्व आ जाने स्वाभाविक हैं।

४. छन्दों में वैविध्य नहीं होता।

यदि हम इन लक्षणों के आधार पर 'राम की शक्ति-पूजा' की समोक्षा करें तो यह कविता खंडकाव्य के ही अधिक निकट है। पर इसमें उतना भी विस्तार नहीं है, जितना किसी खंडकाव्य के लिए अपेक्षित है। अत: इसे असंन्दिग्ध रूप से खंडकाव्य भी नहीं माना जा सकता।

हमारे विचार से, 'राम की शक्ति-पूजा' आख्यानात्मक कविता है।

: १३ :

राम की शक्ति-पूजा का काव्य-सौष्ठव

सौन्दर्य की सुन्दर रीति से अभिव्यक्ति काव्य है । इस अभिव्यक्ति के सहायक रूप में कवि को अनेक अन्य अंगों की संयोजना करनी पड़ती है। यथा—कथानक, भाषा, अलंकार, छन्द आदि । 'राम की शक्ति-पूजा' के काव्य सौष्ठव की परीक्षा करने के लिए मुख्यता इन्हीं अंगों का विवेचन करना उपयुक्त है।

'राम की शक्ति-पूजा' की कथा बंगाल की कृत्तिवासी रामायण से ली गई है, किन्तु कथा में अनेक परिवर्तन भी कवि ने अपनी ओर से किये हैं । ये परिवर्तन आवश्यक भी होते हैं । क्योंकि कवि कथा के मूल को संभालता हुआ भी प्रभावान्विति के लिए अपने काव्य में अनेक परिवर्तन करने के लिए बाध्य भी होता है । अत: इस कथा का चैतन्य रूपाकार कवि का अपना है । कथा से सम्बद्ध सभी प्रसंग संक्षिप्त कर दिये गये हैं अथवा शून्य बना दिये गये हैं । कुछ नवीन प्रसंगों की उद्भावना भी की गयी है । इस कविता के कथानक का सारांश यह है—राम-रावण युद्ध में महाशक्ति द्वारा रावण का पक्ष लेना, राम की निराशा, हनुमान के रौद्र रूप के आयोजन से आच्छन्न उस निराशा का विघटन करने का प्रयास, सीता की कुमारिता छवि की स्मृति, विभीषण द्वारा वीर-भाव की उत्तेजना का प्रयत्न, जाम्बवान के प्रस्ताव पर राम की शक्ति-आराधना, सात्विक यौगिक क्रिया से राम का आराधनारूढ़ होना, महाशक्ति का एक पुष्प चुराकर ले जाना, राम की निबिड़ ग्लानिजन्य निराशा से फूटती आशा की किरण के माध्यम से स्वयं को राजीवनयन होने का स्मरण होना, राम का पुष्प के स्थान पर अपना नेत्र अर्पित करने के लिए सन्नद्ध होना, शक्ति का प्रकट होकर विजय का वरदान देना ।

यह कथानक अत्यन्त सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इनकी कथा-योजना में नाटक की पांचों कार्यावस्थाओं का समुचित रूप से पालन हुआ है युद्ध के वातावरण की उत्तेजना और उसकी भूमिका में राम की सभा का

विषादपूर्ण चित्रण प्रारम्भ अवस्था है। राम की निराशा, हनुमान का रौद्र-रूप धारण करके अपनी शक्ति का प्रदर्शन और विभीषण के द्वारा उद्बोधन प्रयत्न अवस्था है। जाम्वान के द्वारा राम को शक्ति पूजा का परामर्श देना प्राप्त्याशा है। राम द्वारा पूजा का विधान करना नियताप्ति है और शक्ति द्वारा विजय का वरदान फलागम है। इस कविता का प्रारम्भ और अन्त भी ऐसे नाटकीय ढंग से होता है कि पाठक के मन में कौतूहल, हर्ष, उत्कंठा, औत्सुक्य आदि नाट्य-संचारियों का तांता बँध जाता है। इस कविता में वर्णित राम का अन्तर्द्वन्द्व, विजय के साधनों के रहते हुए भी निराशा किन्तु साधना में विश्वास चरमबिंदु को स्पर्श करता है। एक ही क्षण में राम के उठने-गिरने सर्वथा विरोधी भावों का यह सुन्दर एवं प्रभावशाली चित्रण देखिए—

'देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर:

इसी अवसर का यह विरोधी चित्रण भी देखिए—

'फिर देखी भीमा-मूर्ति आज रण देखी जो
× × ×
फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल
भावित नयनों से गिरे दो मुक्तादल।'

इससे अधिक नाटकीयता और क्या हो सकती है ! अपार पौरुष चीख उठे इससे अधिक कला की साधना और क्या होगी ! सिंह स्वयं को असहाय समझे, जीवन की इससे अधिक विडम्बना और क्या होगी—

'धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसका सदा ही किया शोध।'

'विप्लव, संघर्ष और विरोध की ध्वजा लेकर भी अपनी विजय का आत्म-विश्वास कैसा होगा, इसका अनुमान वही व्यक्ति लगा सकता है जिसने संघर्षों के पर्वतों पर खड़े होकर विजय की हरीतिमा के स्वप्न देखे हैं। निराला ने राम को मानव के रूप में चित्रित किया है। यह चित्रण विलक्षण है। राम के वीर और कर्त्तव्य-परायण जीवन में जो विह्वलता और निराशा के दर्शन होते हैं वे राम को यथार्थ मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। वैसे निराला राम के ईश्वर-रूप को भी नहीं भूल पाये हैं—

'मर्यादा-पुरुषोत्तम वे सर्वोत्तम, अनन्य
लीला-सहचर, दिव्य भारधर······।'

निराला ने तुलसी की भाँति राम को पृथ्वी के भारों का विनाश करने के लिये अवतरित नहीं किया है, वरन् समस्त संघर्षों को उनके सामने ले जाकर प्रस्तुत कर दिया है। निराला के राम की यही मानवीयता है। बौद्धिकता एवं भावुकता तथा उनके मध्य से निःसृत कल्पना का यह अप्रतिम शृंगार है।

क्रोचे का यह कथन कि अभिव्यंजना ही कला है, कुछ सीमा तक ठीक है। काव्य में अभिव्यंजना का माध्यम भाषा है। निराला की भाषागत साधना उच्च एवं प्रशंसनीय है। 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला द्वारा प्रयुक्त भाषा के अध्ययन को दो वर्गों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है—

१. वर्ण-योजना

२. वाक्य-योजना

वर्ण-योजना भाव के स्थरीकरण का सबसे अच्छा साधन है। प्रस्तुत कविता में ओज और रौद्र भावों के लिए महाप्राण, द्वित्व एवं फैलाव वाले वर्णों का प्रयोग किया गया है। यथा—

'शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़,
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बंध—प्रतिसंध धरा, हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समथ बढ़ता समक्ष,
शत-वायु-वेग-बल, डूबा अतल में देश-भाव,
जल-राशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव,
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुंचा एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।'

मसृण भावों के लिए कोमल वर्णों का प्रयोग हुआ है। यथा—

'ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का,—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय सम्भाषण,—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान—पतन·····।'

निराला की भाषा की वर्ण-योजना पूर्णतया संगीत पर आधृत है । भावों का आरोह तथा अवरोह के समय इन्हीं ध्वनियों के व्यंजक वर्ण या शब्द इसके गये हैं यथा—

'गर्जित—प्रलयाब्धि – क्षुब्ध—हनुमत केवल प्रबोध
उद्गीरित वन्हि—भीम—पर्वत—कपि भतु:-प्रहर—
जानकी-भीर-उर—आशा भर—रावण सम्बर ।
लौटे मुगदल । राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल,
बिध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।'

वर्ण-योजना करते समय कवि ने वातावरण सृष्टि का सर्वत्र ध्यान रक्खा है । राम युद्ध से लौट रहे हैं किन्तु उनकी मुख-श्री आज पहले जैसी तेजमयी नहीं है । शिथिल शरीर व श्लथ अंग-विन्यास और सभी वीरों के कार्य-रत रहते भी सर्वत्र निराशा और खिलता का वातावरण है—

'है अमा-निशा; उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध पवन-भार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल ।'

'केवल जलती मशाल' ने समूचे खिन्न वातावरण को मूर्तिमय बना दिया है ।

जिस प्रकार निराला की शब्द छवि का वर्ण-योजना भावों के अनुरूप है, उसी प्रकार इनकी वाक्य योजना भी भावों को, मूर्ति-मंत बनाने में सक्षम है । भाव सघनता से पूर्ण तथा त्वरित गति वाले चित्रों के प्रत्यंवन में समास-बहुल वाक्यों का प्रयोग है । यथा--

'तीक्ष्ण-शर-विधृत—शिप्रकर– वेग-प्रखर,
शत-मेल-सम्वरण-शील, नील नभ गर्जित स्वर ।'

और प्रसादगुण से युक्त भावों के लिए असमासिक वाक्यों का प्रयोग है । यथा—

'कहती थी माता सदा राजीव नयन ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की भाषा में वर्ण और वाक्यों का इतनी सतर्कता और जागरूकता से प्रयोग किया है कि उनके तद्विषयक भावों का अर्थ ही नहीं, वरन् ध्वनि भी निकलती है । यह योजना कवि की संगीतात्मकता के ज्ञान की पूर्ण परिचायिका है ।

काव्य में अलंकारों का भी महत्त्व होता है। समर्थ कवि केवल भाषा को मंडित करने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग नहीं करते, वरन् उनके माध्यम से भावों को भी उत्कर्षता प्रदान करते हैं। निराला ने प्रस्तुत कविता में भावों को उत्कर्षता प्रदान करने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग किया है। यथा—

'ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका छवि····· ।'

इन पंक्तियों में उपमा अलंकार का बड़ा ही भावपूर्ण प्रयोग है। राम के निराशा से भरे हुए हृदय को अन्धकार से घिरे हुए आकाश ने उपमित करना और उसमें चमकने वाली बिजली को सीता की स्मृति से उपमित करना भाव-सौन्दर्य भी सृष्टि करता है।

'रघुवीर ! तीर सब वही तूण में है रक्षित,
है वही वक्ष, रण-कुशल हस्त, बल वही अमित;
हैं वही सुमित्रानन्दन मेघनाद जित रण
हैं नहीं भल्लपति वानरेन्द्र सुग्रीव प्रयन,
ताराकुमार भी वही महाबल श्वेत धीर,
अप्रतिभट वही एक अर्बुद-सम महावीर,
हैं वही वक्ष सेनानायक, है वही समर,
फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव-प्रहर।'

इसमें विशेषोक्ति अलंकार है। इस अलंकार के प्रयोग से राम की विवशता और भी गहन बन गई है।

जिस प्रकार निराशा ने अर्थालंकारों का भावपूर्ण प्रयोग किया है, उसी प्रकार शब्दालंकारों का भी किया है। यथा—

'रावण, रावण, लम्पट खल, कल्मष-गताचार,
जिसने हित कहते—किया मुझे पाद-प्रहार,
बैठा उपवन में देगा दुःख सीता को फिर,
कहता रण की जय-कथा परिषद-दल से घिर,
सुनता बसन्त में उपवन में कल-कूजित-पिक,
मैं बना किन्तु लंकापति, धिक्, राघव, धिक् धिक् ।'

इन पंक्तियों में वीप्सा और काकुवक्रोक्ति अलंकारों का भावोत्कर्षक प्रयोग हुआ है।

जहाँ तक छन्द-योजना का सम्बन्ध है, इस कविता में मुक्तछन्द का प्रयोग हुआ है। इस सफल प्रयोग के द्वारा मानो निराला जी मुक्तछन्द-विरोधी आलोचकों को बता रहे हैं कि यह छन्द अच्छी से अच्छी कविता की रचना में सहायक हो सकता है। खंडकाव्य और महाकाव्य तक इस छन्द में लिखे जा सकते हैं।

इस कविता का मुख्य रस वीर रस है। सर्वत्र वीर रस के अनुकूल शब्दों की योजना हुई है। वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए समासबहुल वाक्य और पुरुष एवं कठोर शब्दों की योजना ही उपयुक्त होती है। निराला जी ने इस कविता में ऐसा ही किया है यथा—

> **'प्रति-पल-परिवर्तित व्यूह—भेद-कौशल-समूह —**
> **राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह – क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,**
> **विच्छुरित-वह्नि—राजीवनयन—हतलक्ष्य-बाण,**
> **लोहित-लोचत-रावण-मदमोचन—महीयान···।'**

इन पंक्तियों में युद्ध का वर्णन है जिसके माध्यम से वीर रस की सृष्टि की गई है।

रौद्र रस वीररस का सहायक है। इसलिये इन दोनों रसों को मित्र-रस माना गया है। 'राम की शक्ति-पूजा' में रौद्र रस का भी सफल चित्रण है। यथा—

> **'ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,**
> **उद्वेग हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार,**
> **हो श्वसित पवन उनचास पिता-पक्ष तुमुल**
> **एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,**
> **शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग, उठते पहाड़,**
> **जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़,**

इन पंक्तियों में हनुमान के रौद्र रूप का वर्णन है। अतः हम कह सकते हैं कि 'राम की शक्ति-पूजा' हिन्दी-साहित्य की, विशेषतः आधुनिक हिन्दी-साहित्य की, सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यदि इसे आधुनिक हिन्दी-साहित्य की काव्यगत सीमा मान लिया जाये तो अनुचित न होगा।

: १४ :

राम की शक्ति-पूजा में रस-योजना

काव्य का मुख्य ध्येय पाठक अथवा श्रोता में रसानुभूति उत्पन्न करना है, अर्थात् उसे वह आनन्द प्रदान करना है जो सांसारिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द से भिन्न होता है। इस आनन्द को लोकोत्तम आनन्द की संज्ञा दी गई है इसीलिए काव्य में रस-योजना को कवि का मुख्य व्यापार माना गया है।

व्याकरणशास्त्र में 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की गई है— 'सरते इति रस' अर्थात् जो बहे वही रस है, और 'रस्यते इति रस' अर्थात् जो आस्वादित किया जाय, उसे रस कहते हैं। प्रथम व्युत्पत्ति में द्रवत्य को रम का गुण माना गया है और द्वितीय व्युत्पत्ति में रस स्वाद-विशेष का धर्म है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार रस के चार वर्ग हो सकते हैं—

१. पदार्थों का रस—खट्टा, मीठा, तिक्त आदि।

२. आयुर्वेद का रस—पारद आदि।

३. भक्ति या मोक्ष का रस।

४. साहित्य अथवा काव्य का रस।

साहित्य अथवा काव्य से प्राप्त रस उपर्युक्त तीनों प्रकार के रसों से भिन्न होता है। काव्य-रस का अर्थ है काव्य से मिलने वाला आनन्द। यह आनन्द लौकिक पदार्थों से मिलने वाले आनन्द लौकिक पदार्थों से मिलने वाले आनन्द से भिन्न होता है, इसीलिए इसे 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा गया है। यह रस अखण्ड स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, वेद्यान्तरस्पर्शशून्य, ब्रह्मास्वाद-सहोदर और लोकोत्तरचमत्कारप्राण माना गया है।

काव्यगत रसों की संख्या ११ मानी जाती है—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत शान्त, वात्सल और भक्तिरस। 'राम की शक्ति पूजा में मुख्यतः वीर और रौद्र रस की योजना की गई है। इनके अतिरिक्त शृंगार और शान्त रस के संकेत भी दिये गये हैं।

वीर-रस—सामाजिक के हृदय में संस्कार रूप से स्थित उत्साह स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर स्वाद का विषय बन जाता है, तब उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे वीर-रस कहते हैं। इस रस के अंग निम्नलिखित हैं—

स्थायी भाव—उत्साह।

आलम्बन विभाव—तीर्थस्थान, याचक, पर्व आदि।

उद्दीपन विभाव—शत्रु का आक्रमण, उसकी चेष्टायें आदि।

अनुभाव—शत्रु के प्रति कठोर प्रहार अथवा वचन आदि।

संचारी भाव—हर्ष, गर्व, आदि।

'राम की शक्ति-पूजा' वीररस से ओर-प्रोत कविता है। इसका प्रारम्भ ही वीररस की अभिव्यक्ति से होता है। कवि राम-रावण के युद्ध का वर्णन करता हुआ कहता है—

'रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत शिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शत-शेल-सम्वरण-शील, नील-नभ-गर्जित-स्वर,
प्रति-पल-परिवर्तित व्यूह - भेद-कौशल-समूह—
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह - क्रुद्ध-कपि-विषम हूह,
विच्छुरित-वन्हि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित-लोचन रावण-मदमोचन - महीयान...।'

रौद्र-रस—रौद्र रस वीर रस का मित्ररस माना गया है, क्योंकि यह उसकी अनुभूति में सहायक होता है। सामाजिक के हृदय में संस्कार रूप से स्थित क्रोध स्थायीभाव जब विभाव अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है, तब उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे रौद्र रस कहते हैं। इसके अंग निम्नलिखित हैं—

स्थायी भाव—क्रोध

आलम्बन विभाव—शत्रु एवं उसके पक्ष वाले आदि।

उद्दीपन विभाव—शत्रु द्वारा किये गये अनिष्ट कार्य आदि।

अनुभाव—नेत्रों की लाली, होठों का चबाना, क्रूरता से देखना आदि।

संचारी भाव—मद, उग्रता, अमर्ष आदि।

'राम की शक्ति-पूजा' में रौद्र-रस के अन्तर्गत हनुमान के क्रोध का वर्णन किया गया है। महाशक्ति के द्वारा संरक्षित रावण पर राम को जब अपनी विजय की कोई आशा नहीं रह जाती तो उनका मन खिन्न एवं निराश हो जाता। उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। हनुमान से अपने आराध्यदेव की यह स्थिति नहीं देखी जाती। वे क्रोध में भर कर महाकाश को चल देते हैं जहाँ महाशक्ति निवास करती है। इसी स्थिति का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है—

'ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेग हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार,
हो श्वसित पवन उनचास पिता-पक्ष से तुमुल
एकत्र पक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल
शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग, उठते पहाड़,
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बंध—प्रतिसंध धरा हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष,
शत-वायु-वेग-बल, डूबा अतल में देश-भाव,
जल-राशि-विपुल पथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।'

शृंगार-रस—शृंगार रस भी सहायक है, अतः प्रस्तुत कविता में इस रस की झाँकी भी दिखाई गई है। अपनी विजय की कोई आशा न देखकर राम का मन प्रगाढ़ निराशा से आच्छन्न हो जाता है। उन्हें यह सोचकर कि अब रावण के कारागार से सीता की मुक्ति न हो सकेगी बहुत ही दुःख होता है और उन्हें सीता के प्रथम मिलन की स्मृति आती है—

'ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जगी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का—नयनों से गोपन—प्रिय सम्भाषण—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन—
कांपते हुए किसलय—झरते पराग-समुदय—
गाते खग नव-जीवन-परिचय—तरु मलय-वलय—
ज्योतिः प्रपात स्वींय ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।'

राम की शक्ति पूजा में विप्रलम्भ शृंगार की भावना स्फुट रूप में मिलती है, निराला की औदात्य गुण वाली रचना में इसकी एक झलक मिलती है। सीता लंका में अशोक वन में है और रावण से राम का युद्ध चल रहा है। राम अपने सारे प्रयत्न कर हार गये। युद्ध में विजय नहीं मिली इसीलिए शक्ति की आराधना करने के लिए प्रयत्नशील हैं, पर जब साधना पूर्ण होने वाली थी या सिद्धि मिलने वाली थी, वह मिलते ही मिलते रह गई क्योंकि साधना पूर्ण करने के लिए जिस इन्दीवर को समर्पित करना था वह नहीं था। उस समय राम का हृदय चीत्कार कर उठा और उनके हृदय के अभिव्यक्त उद्‌गारों से यह स्पष्ट हो जाता है—

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी हाय उद्धार प्रिया का न हो सका ।'

निराला जी ने राम के हृदय की इस अन्तर्वेदना को उक्त उद्‌गारों में प्रकट किया है जिससे वियोग की झलक मिल जाती है तथा राम जैसे धीरोद्धत नायक के नायकत्व की गरिमा की भी रक्षा हो जाती है।

वात्सल्य रस—शृंगार के अतिरिक्त निराला की इस रचना में वात्सल्य रस भी पाया जाता है। माता-पिता का जो संतान के प्रति स्नेह है, उससे पुष्ट रस वात्सल्य कहा जाता है।

स्थायीभाव—पुत्र-स्नेह।

आलम्बन-विभाग—पुत्र-पुत्री आदि।

उद्दीपन-विभाग—बालक की चेष्टाएँ, उनका खेलना-कूदना अनेक प्रकार के कुतूहल करना आदि।

अनुभाव—प्रसन्नता, पुलक, रोमांच आदि ।

संचारी—हर्ष, गर्व, आवेग आदि ।

हनुमान जब अपने स्वामी राम के दोनों नेत्रों में अश्रु देखते हैं तो वे एकदम व्याकुल हो जाते हैं और उनके मन का क्षोभ उत्साह और क्रोध में बदल जाता है और वह झपटकर आकाश की ओर उड़ान भरने लगते हैं। उनको आकाश लीलने के लिए उत्सुक देखकर शंकर सांकेतिक शैली में शक्ति को उद्बोधित करते हैं। वह स्पष्ट रूप से शक्ति को उद्बोधित करते हैं। यह स्पष्ट रूप से शक्ति को बता देते हैं कि यह ब्रह्मचारी है और शृंगारी रूप का इस पर प्रभाव न पड़ेगा। शिव के द्वारा सुझाये गये उपाय के अनुसार शक्ति ने ज्यों ही अंजना का रूप धारण किया त्यों ही हनुमान का क्रोध शान्त पड़ने लगा—

सहसा नभ में अंजना रूप का हुआ उदय
बोली माता – 'तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें; रहे बालक केवल
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह
यह लज्जा की है बात कि मा रहती सह-सह ।'

शान्त रस—इस कविता में शान्त रस का भी उल्लेख मिलता है। सामाजिक के हृदय में संस्कार रूप से स्थित निर्वेद या शम स्थायी भाव जब विभाव अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है, तब उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे शान्त रस कहते हैं। इसके अंग निम्नलिखित हैं—

स्थायी भाव—निर्वेद या शम ।

आलम्बन विभाव | संसार की असारता का ज्ञान ।

उद्दीपन विभाव—ऋषियों के आश्रम, निराशा आदि ।

अनुभाव—रोमांच, संसार-भीरुता आदि ।

संचारी भाव—निर्वेद आदि ।

'राम की शक्ति-पूजा' में शांत रस का प्रसंग उस समय आता है जब राम की पूजा का पुष्प चुरा लिया जाता है और उन्हें पूजा की सफलता की कोई आशा नहीं रह जाती—

देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय
आसन छोड़ता असिद्धि, सर गये नयन-वय;—
धिक् जीवन जो पाता ही आया, विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध,
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का न हो सका ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि लघु-कलेवर में भी राम की शक्ति-पूजा में रस-योजना का सफल प्रयास है ।

: १५ :

राम की शक्ति-पूजा में भाव-व्यंजना

छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल के प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी चार प्रर्वतक स्तम्भों में निराला का स्थान उनके ओज और दार्शनिकता के कारण महत्वपूर्ण है। रामशक्ति पूजा भी अपने औदात्य के कारण हिन्दी साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखती है। इस कारण इसकी प्रबन्ध रूप में कल्पना भी है। वैसे भी आलोचकों के मत में अनामिका की यह एक महत्वपूर्ण रचना है। सुमित्रानन्द पंत ने छायावाद के पुनर्मूल्यांकन में लिखा है कि, "सूक्ष्म-जटिल कलाकारिता तथा संकल्पशक्ति का द्योतक माना है। अपनी अबाध शिल्प शक्ति के अदम्य वेग तथा पौरुष सौन्दर्य-क्षमता के कारण वह हिन्दी में एक अभूतपूर्व लम्बी कविता है।"

औदात्य—पाश्चात्य विद्वान लोंगिनुस के अनुसार "औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है। औदात्य की सृष्टि के लिए उदात्त विचार और प्रेरणा-प्रसूत आवेग का होना अनिवार्य है। उदात्त का सृजन भी वही कलाकार कर पाते हैं, जिनके विचार महान और गम्भीर होते हैं। इस उदात्तता का प्रभाव व्यक्तित्व की छलनी के भीतर से छनता हुआ कृतित्व तक प्रसृत होता रहता, जो कि अत्यन्त प्रबल और दुर्निवार हुआ करता है। साधारणतः औदात्य के उन उदाहरणों को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनन्द दे सकें।" उदात्त रचना करने के लिए यह आवश्यक है कि कवि को उदात्त आलम्बन विभाव को ग्रहण करना चाहिए। ऐसे आलम्बन को ग्रहण कर रचनाकार आलम्बन के भीतर अनन्त विस्तार, असाधारण वेग अलौकिक ऐश्वर्य तथा उत्कट एवं स्थायी प्रभाव क्षमता नहीं होगी तक तब उसके कार्यों वाणी तथा व्यक्तित्व में औदात्य प्रसूत सम्भ्रम श्रद्धा प्रभविष्णुता नहीं आ सकती है।

लोंगिनुस ने उदात्त भाषा के पाँच मुख्य स्रोत माने हैं। इन पाँचों के तल में वक्तव्य शक्ति की प्रतिष्ठा होती हो, मानों वही सबकी नींव है। वह

अनिवार्य है। सर्व प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। महान विचारोद्भावना की क्षमता है। दूसरा तत्व है प्रेरणा प्रसूत एवं उद्दाम आवेग। उदात्त के दो तत्व अधिकांश में नैसर्गिक होते हैं। शेष तत्व अंशतः कला की निष्पत्ति हैं। तीसरा अवयव है समुचित अलंकार-योजना, जिसके अन्तर्गत भाव और अभिव्यंजना दोनों से सम्बन्धित अलंकार आ जाते हैं। इसके पश्चात् साधु भाषा आती है, जिसके अन्तर्गत शब्द चयन, रूपकादि का प्रयोग और भाषा विस्तार का समावेश है। उदात्त का पाँचवाँ कारण है गरिमामय रचना विधान। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा पृष्ठ ५१)

डा० नगेद्र ने काव्य के उदात्त तत्व में लोंगिनुस की विचारधारा का विश्लेषण करते हुए उनके उदात्त तत्व के सिद्धान्त को दो भागों में विभाजित कर दिया है। एक अन्त:रंग तथा दूसरा वहिरंग अन्त:रंग तत्वों के अन्तर्गत वे मन की ऊर्जा, उल्लास, संभ्रम अर्थात आदर और विस्मय तथा अनुभूति अर्थात् सम्पूर्ण चेतना के अभिभूत हो जाने की अनुभूति को लेते हैं। इसके बहि:रंग तत्वों में वे समुचित अलंकार-योजना उत्कृष्ट भाषा गरिमामय एवं ऊर्जित रचना विधान तथा कल्पना तत्व का होना आवश्यक समझते हैं।

राम की शक्ति-पूजा का मूल स्रोत देवी भागवत की कथा है, जिसमें इस प्रकार का बर्णन आया है कि राम ने युद्ध की अन्तिम देवी की पूजा की थी। नारद के आदेश से रामचन्द्र ने नवरात्रि का वर्णन किया था और देवी को प्रसन्न किया था। शिव महिम्न स्त्रोत के अनुसार भी विष्णु ने शिव की भक्ति की थी। इसी पूजा में एक सहस्र कमल चढ़ाने का उल्लेख भी हुआ है। पूजा के अवसर ही एक कमल की कमी पड़ने पर विष्णु ने पुंडरीकांक्ष होने के कारण अपने एक नेत्र को अर्पित करने का उद्यम भी किया था। इससे शिव प्रसन्न हो गये। पवन पुत्र का शैशवावस्था में ही सूर्य को निगलने तथा आकाश को ग्रसने का उल्लेख पुराणों में ही हुआ है। रावण को युद्ध में देवी का वरदान प्राप्त हुआ था। इन पुराणों तथा धार्मिक उल्लेखों के आधार पर ही राम का शक्ति-पूजा की वस्तु योजना का संयोजन किया गया है।

राम की शक्ति पूजा में उपरोक्त कथा में अन्तर कर कवि ने उसको काव्योचित बनाते हुए महाकाव्यात्मक शैली के अनुरूप उसका नियोजन किया

है। कवि ने इस कथा के औदात्य की पृष्ठभूमि में रखकर अनेक आवश्यक परिवर्तन भी किये हैं। इसमें राम नवरात्रि का पूर्ण पारायण करते हैं। उस काल में लक्ष्मण के ऊपर युद्ध का सारा भार डाल दिया जाता है। जाम्बवान जैसे गम्भीर और वृद्ध से शक्ति की पूजा का परामर्श दिलवाया गया है। शिव महिम्न स्त्रोत के समान राम शक्ति की आराधना १०८ इन्दीवरों को लेकर आरम्भ करते हैं। कथा की अन्तिम परिणति में भी कथा तत्व में औदात्य कम नहीं होता।

कथा में औदात्य तत्व बना रहे, इसके लिए पूर्ण कवि रूप से सन्नद्ध था। इस कथा के पाँच आयाम हैं। प्रथम आयास में कथा का प्रारम्भ, युद्ध से वानर सेना का युद्ध से लौटते हुए है। लौटते हुए राम दिन भर के युद्ध का विश्लेषण करते हैं और संध्या समय राम को घेर कर बैठते हैं तथा विचार-विमर्श करते हैं। दूसरे आयाम में लंका का रात्रि का वर्णन है जिसमें राम की मनोदशा का वर्णन किया गया है। यहाँ पर अनेक छोटे-छोटे दृश्यों को प्रस्तुत किया गया है। पुष्पवाटिका, सीता-मिलन, धनुषभंग, विश्व विजय की कामना, ताड़का सुबाहु-विराध खर-दूषण के वध की स्मृति आती है। इस अन्तर्दर्शन में रावण का विजय घोष सर्वत्र व्याप्त हो जाता है और राम का मन शंका से भर उठता है। इसके पश्चात् एक अन्तर्कथा का आयोजन हुआ है जिसमें हनुमान की खिन्न दशा का वर्णन करते हैं। इस तीसरे आयाम में हनुमान महा आकाश को लीलने के लिए चल देते हैं। इससे महा नाश की कल्पना कर शिव भी विचलित हो जाते हैं। आकाश में शक्ति अंजना के रूप में अवतरित होती है और वह पवन पुत्र को प्रबोध देती है। हनुमान पुनः अपना आसन ग्रहण कर लेते हैं। कथा के चौथे आयाम में विभीषण राम को उनकी शक्ति का प्रबोध कराते हैं, इसी में वह सीता की दयनीय दशा और रावण के अत्याचारों का वर्णन है।

विभीषण के द्वारा उत्तेजित होने पर राम युद्ध की वस्तुस्थिति से सबको परिचित कराते हैं और स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हैं कि महाशक्ति की छत्रच्छाया के कारण वह रावण को नहीं जीत सकते। इस पर जाम्बवान उनको सुझाते हैं कि आराधना का प्रत्युत्तर आराधना से दिया जाना

चाहिए। राम उनकी बात को स्वीकार कर लेते हैं और सर्वत्र दल में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो जाती है। राम शक्ति की पूजा करने बैठते हैं, यहीं से कथा का पाँचवाँ और अन्तिम सोपान प्रारम्भ हो जाता है। हनुमान उनको एक सौ आठ इन्दीवर लाकर देते हैं और राम आराधना आरम्भ कर देते हैं। अन्तिम आहुति के समय एक इन्दीवर कम हो जाता है। राम दुःखी होते हैं और तभी राजीवनयन शव्द की याद आते ही उनके मन में प्रबोध होता है और वह अपना बायाँ नेत्र उनको समर्पित करने को तैयार हो जाते हैं। वहीं पर उन्हें शक्ति का वरदान मिलता है और महाशक्ति उनके शरीर में लीन हो जाती है।

इस प्रकार इनकी कथा में राम से परम्परा मुक्त चरित्र में एक त्रुटि तथा स्खलन आ गया है लेकिन समाप्ति तक सारी कथा का रूप ही वदल जाता है। राम के मन की ऊर्जा और उनका अदम्य साहस तथा सूझ-बूझ के कारण अपनी साधनावस्था के क्षणों में यह कथा सफलता और असफलता के झूले में झूलती हुई भारतीय संस्कृति के अनुरूप व्यापक आयाम को लिए हुए उदात्त लक्ष्य प्राप्त कर लेती है। वैसे भाषा और कला की दृष्टि से प्रायः सभी ने इस रचना के औदात्य को स्वीकार किया है।

कवि के मन का प्रतिबिम्ब—राम के माध्यम से कवि ने अपने जीवन की आशा-निराशा को भी व्यक्त किया है। इस कविता में जब कवि लिखता है।

'धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !'

यह वह अवस्था है कि राम युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए जो भी उपाय अपनाते हैं उसमें असफल होते हैं। जो राम ब्रह्मत्व के प्रतीक हैं उन्हें भी निराला ने युग के मनोवैज्ञानिक प्रभावस्वरूप एक मानव के रूप में चित्रित कर उनके अन्तःसंघर्ष का चित्र ही उभारा है। इसमें राम की अमर जीत के कहीं दर्शन नहीं होते—

'स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय,
रह रह उठता जग जीवन में रावण जय-भय;'

निराला की जीवनी भी यही कहती है कि उनको जीवन भर समाज, सम्पादक तथा समीक्षकों से संघर्ष करना पड़ा। अपने अदम्य साहस तथा अटूट

विश्वास के बल पर वे विषम परिस्थितियों से लड़ते रहे। जीवन की ये अस्थिर परिस्थितियाँ स्थिर निराला के हृदय को बार-बार कंपित कर देती थीं और वे अर्धनग्न-से इलाहाबाद की सड़कों पर घूमते रहते थे। निराला का उदय साहित्याकाश में एक धूमकेतु के समान हुआ था। जिस समय खड़ी बोली में सपाट अभिधा भाषा में कविता लिखी जाती थी, निराला अपनी प्रयोगमयी भाषा के आधार पर लक्षणा और व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग करते थे तथा शास्त्रीय छन्दों के स्थान पर मुक्त छन्द लिखा करते थे, जिसके कारण प्राचीन रूढ़िवादी आलोचकों की आँख में वे सदा खटकते रहे। काव्य रचना की प्रक्रिया नवीन भाव, भाषा, छंद, अलंकार के कारण सारा जीवन निराला को विरोध सहना पड़ा। इतिहास इस बात का गवाह है कि आजीवन विरोध पाने पर भी निराला का समाज और साहित्यिकों ने सबसे अधिक अभिनन्दन किया तथा उन्हें पुष्पाजंलियाँ अर्पित की गईं।

सत्-असत् की व्यंजना—राम की शक्ति पूजा में सत्-असत् वृत्तियों का भी अंकन किया गया है। उच्च मानव मूल्यों का दुष्ट मानव-मूल्यों के विरुद्ध संघर्ष सदा होता रहा है। इस काव्य में भी आशा-निराशा, जय-पराजय की भावना का एक साथ चित्रण हुआ है। इससे जहाँ एक ओर मानव मन की इन विरोधी वृत्तियों का चित्रण हुआ हैं वहाँ काव्य में स्वाभाविकता भी आ गई है। निराला ने राम के जीवन में ही इन वृत्तियों का चित्रण किया है। राम के मन के बारे में कवि कहता है—

कल लड़ने को हो रहा है विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार;

राम के हृदय में यद्यपि विषाद और क्षोभ के बादल छाए हुए हैं पर अब भी उनके मन में पूर्ण नैराश्य की भावना नहीं है अपितु इसके स्थान पर उनके मन मे एक आह्लाद की भावना भी है, जिसके कारण राम को इस समर में विजय प्राप्त होगी।

'वह एक और मन रहा राम का जो न थका।
जो नहीं जानता दैन्य नहीं जानता विजय।
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय।'

यह विजय वस्तुतः राम की रावण पर नहीं है, वस्तुतः यह सत् वृत्ति की

असत् वृत्ति पर है, जिसके कारण मानवीय मूल्यों का सदा सम्मान होता रहेगा। यह इस भावना का चरित्र है जिसके कारण निराशाजन्य भावनाओं से आक्रांत मन सदा आशान्वित होता हुआ जय लाभ करता रहेगा।

मानवीय संबन्धों की व्यंजना—भारतीय साहित्य और संस्कृति के अन्तर्गत राम का कथानक बड़ा महत्त्वपूर्ण है। निराला ने भी उस मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र का चित्रण अपने काव्य में किया है, पर इसके वर्णन का ढंग ईश्वरीय पद या ब्रह्मत्व का प्रदान न कर सर्वथा मानवीय है। राम और लक्ष्मण, राम-विभीषण, हनुमान-अंजना के रूप में पुत्र और माता का तथा शिव और शक्ति तथा राम-सीता में दाम्पत्य भावनाओं का चित्रण भली-भाँति देखा जा सकता है। इन संबंधों में राम और विभीषण के सम्बन्ध में अन्य धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर भगवान और भक्त का सा सम्बन्ध नहीं है। यहाँ पर इन दोनों में जिस सम्बन्ध की कल्पना की गई है, उसमें राजवंशोचित कूटनीति को प्रश्रय दिया गया है—

'हे सखा' विभीषण बोले, आज प्रसन्न वदन
वह नहीं देखकर जिसे समग्र वीर वानर—

विभीषण जो कुछ भी राम से कहता उसका राम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वह जानते हैं कि रावण ने पाद-प्रहार कर उसे भगा दिया है और वह आज उनको लड़ने को उद्यत करना चाहता है। कवि ने भी लिखा है—

जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न इन्हें कुछ चाव, न हो कोई दुराव,
ज्यों हों वे शब्दमात्र—मैत्री की समनुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति।

छायावादी कवियों ने नारी को अनन्त प्रेरणा शक्ति का स्रोत माना है। निराला ने भी उन्हें इसी रूप में ग्रहण किया है। राम का मन जो नैराश्य में डूबा जा रहा था, सीता की मधुर स्मृति के कारण सहसा सिहर उठा और उनके मन में विश्व-विजय करने की कामना जाग गई तथा इनके हाथ अब शिव का धनुष भंग करने को सन्नद्ध हो गये। इस प्रकार पराजित पुरुष के मन में नारी की स्मृति मात्र से आशा और विश्वास की भावना का संचार होने

लगा—

'सिहरा तन, क्षण भर भूला मन-लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता—ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर ।'

इसके साथ ही मानवीय सम्बन्धों की मर्यादा का भी पूर्णरूपेण पालन किया गया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार छोटे भाई को बड़े भाई का अनुचर कहा गया है। निराला ने राम और लक्ष्मण से सम्बन्धों में इसी बात की रक्षा की है—

'लक्ष्मण चिन्तापल पीछे वानर-वीर सकल
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण ।'

इसी प्रकार जब राम अपने सहयोगियों के समक्ष वैठते हैं तो कवि ने उनकी मर्यादा का पूरा-पूरा पालन किया है—

सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर,
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण, भल्ल धीर,

राम सेनापति हैं अत: उनकी आज्ञा के बिना सेना का कोई भी आदमी कुछ नहीं कर सकता। सेनापति की आज्ञा को शिरोधार्य करना सबका ही कर्त्तव्य है, इसी भावना को व्यक्त करते हुए कवि ने कहता है—

रुक गया कंठ चमका लक्ष्मण तेजः प्रचण्ड
धँस गया धरा में कपि गह युग पद मसद दंड,
स्थिर जाम्बवान ।

जातीय संस्कृति—इसके साथ ही इस में भारतीय संस्कृति के अनुरूप जातीय भावना का भी चित्रण किया गया है। राम और रावण को हमारी संस्कृति में धर्म-अधर्म का प्रतीक माना गया है। देश की इस सांस्कृतिक मर्यादा के अनुरूप कवि ने भी इन्हें इसी भावना के अनुरूप ग्रहण किया है। रावण केवल राम का ही विरोधी नहीं, अपितु वह समस्त संस्कृति का विरोधी रहा है। उसके विनाश के लिए सुग्रीव, अंगद, हनुमान, नल-नील, जाम्बवान, विभीषण आदि सभी ने राम का नेतृत्व स्वीकार कर लिया है। विभीषण स्पष्ट रूप में कहता है—

'रावण, रावण, लम्पट, खल कल्मष—गताचार',

भारतीय संस्कृति का एक अन्य तत्त्व आनन्दवाद है । भारतीय दर्शन के अनुसार सर्वत्र आनन्दवाद की स्थापना की गई । भारतीय संस्कृति तथा दर्शन का मूलाधार आध्यात्मिक है । इसके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है । माया अज्ञान उत्पन्न करने वाली है । हमारे यहाँ के प्रत्येक साहित्यकार ने सांस्कृतिक आदर्श को चिरकाल तक अपनाया है । निराला ने भी राम को अपनी रचना में जय पराजय और विषाद की धूमिल पृष्ठभूमि में भटकता हुआ दिखाया है और अन्त में मानवीय मूल्यों के आधार पर सत् पात्र की विजय दिखाई है । इस आध्यात्मिकता के आवरण के कारण ही निराला ने भी राम को शक्ति की पूजा करते दिखाया है ।

हो गये ध्यान में लीन पुन: करते विचार
देखते सकल—तन पुलकित होता बार-बार ।
कुछ समय अनन्तर इन्दीवर निन्दित लोचन
खुल गये, रहा निष्पलक भाव में मज्जित मन
बोले आवेग-रहित स्वर से विश्वास स्थित—
'मात: दश भुजा, विश्व-ज्योति: मैं हूँ आश्रित
हो विद्ध शक्ति से है महिषासुर खल मर्दित
जन रञ्जन-चरण-कमल-तल धन्य सिह गर्जित !
यह, यह मेरा प्रतीक मात: समझा इंगित;
मैं सिह इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित ।'

भक्ति-भावना—भक्ति-भावना भारतीय संस्कृति का एक अनिवार्य अवयव है । हमारे सांस्कृतिक जीवन में वेदान्त का एकेश्वरवाद, कर्मकांड-जनति भक्ति भावना तांत्रिक क्रियाओं में निष्ठा आदि अनेक प्रवृत्तियाँ हैं । इस प्रकार भक्ति-भावना का जोर हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में पूरा था । भक्ति काल में जितना भी साहित्य लिखा गया, उसमें भक्त कवियों ने भगवान से विविध रूपों की कल्पना का उसके विभिन्न रूप से रिझाने का प्रयत्न किया । सूर ने सख्य भक्ति तथा तुलसी ने दास्य भक्ति का प्रचलन किया । आधुनिक काल में राम-कृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द ने पुन: अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की और जिसका प्रभाव आधुनिक काल के कवियों पर पड़ा, फलत: उन्होंने रहस्यवादी रचनायें

लिखीं। राम की शक्ति-पूजा में हनुमान दास्य तथा विभीषण में सख्य भक्ति की प्रवलता है। भक्त हनुमान का वर्णन कवि के शब्दों में—

बैठे मारुति देखते राम-चरणारविन्द—
युग अस्ति-नास्ति के एक रूप गुण गण अनिन्द्य,
साधना मध्य भी साम्य-वाम-कर दक्षिण पद,
'दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गदगद
पा सत्य, सच्चिदानन्द रूप, विश्राम-धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो रामनाम।'

राम की शक्ति-पूजा की एक अनन्य विशेषता है कि जैसे रावण ने महा-शक्ति की उपासना कर उससे अनेक वरदान माँग लिए थे तथा युद्ध में स्वयं आमंत्रित कर लिया था, उसी प्रकार राम को भी उसी शक्ति की उपासना करने के लिए वाध्य होना पड़ा क्योंकि राम ने स्वयं ही यह अनुभव किया कि जिन वाणों के बल पर वह सारी सृष्टि को पराजित कर सकते थे तथा जिनसे सारी सृष्टि का भी नाश हो सकता था, ऐसे अनेक तीक्ष्ण वाण भी वहाँ असफल हो गये तथा उसने जब देखना आरम्भ कर दिया तो हाथ बँध गये तथा वह फिर तीर नहीं चला सके।

'विचलित लख कपिदल क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों
झक झक झलकती वन्हि वामा के दृग त्यों-त्यों;
पश्चात् देखने लगीं मुझे, बँध गये हस्त
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ त्रस्त!'

इसीलिए उन्होंने जाम्बवान की सलाह मानकर आराधना का प्रत्युत्तर आराधना से देने का संकल्प किया। उपासनारत राम के चरित्र तथा वातावरण के चित्रण में कवि ने अद्भुत कुशलता का परिचय है—

पूजोपरान्त जपते दुर्गा दशभुजा नाम,
मन करते हुए मनन नामों के गुण ग्राम;
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण,
गहन से गहनतर होने लगा समाराधन।

कल्पना-तत्व—औदात्य रचना के लिए भाव और भक्त के साथ-साथ औदात्य कला की भी आवश्यकता होती है। निराला के काव्य में औदात्य

भाव का वह रूप भी मिलता है जिसके प्रयोग के कारण उनके काव्य में अनेक सुन्दर बिम्ब शब्दों के माध्यम से बने हैं। इसीलिए कवि ने अपना प्रखर कला के सहारे जिन बिम्बों की कल्पना की है वे अपने में मौलिक तथा श्रेष्ठ हैं। वाह्य प्रकृति तथा आन्तर प्रकृति का एक संश्लिष्ट चित्र निम्न है—

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल।
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार
चमकतीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार॥

इसी प्रकार का और चित्र है जिसमें कवि ने वर्णन किया है कि गगन में घना अंधकार छा रहा है, पवन की गति मन्द पड़ गई है तथा एक मशाल उसके बीच में जल रही है, जैसे कि सबके हृदय जीतने की एक क्षीण आशा है—

है अमा निशा: उगलता गगन घन अंधकार।
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार॥
अप्रतिहत गरज रहा, पीछे अम्बुधि विशाल।
भूधर ज्यों ध्यानमग्न केवल जलती मशाल॥

निराला ने प्रकृति के इन चित्रों के माध्यम से अनेक ऐसे संश्लिष्ट चित्रों का नियोजन किया है जिनसे प्रकृति की अतिप्राकृतिक समस्याओं की पुष्टि होती है, कवि के गरिमामय विचारों का चित्रण उसकी इस गरिमामय शैली में होता है। अंधकार का निरन्तर बढ़ते जाना तथा पवन का स्तब्ध हो जाना, विशाल सागर का गरजना तथा भूधर का स्थिर रहना एक भव्य चित्र की झाँकी है, जिसकी कल्पना के उपरान्त भावक को सहज में ही अपनी लघुता ज्ञात हो जाती है और वह सहसा उस विराट शक्ति तथा उसके नियामक के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है। राम की शक्ति-पूजा में प्रकृति के इन विराट चित्रों की योजना इसी कारण की गई है। इससे स्पष्ट है कि कवि ने विराट चित्र तथा बिम्बों की योजना कर काव्य-कला के औदात्य रूप का परिचय दिया, जिसके कारण उसकी इस रचना की श्रेष्ठता का इसी रूप में परिचय पाठक को भी हो जाता है।

: १६ :

राम की शक्ति-पूजा में चरित्र-चित्रण

राम की शक्ति-पूजा का सबसे प्रमुखतम पात्र राम है । आधुनिक मनोविज्ञान के फलस्वरूप प्राचीन पात्रों की उदात्तता के साथ उनकी अनुदात्तता का भी चित्रण होने लगा है जिसके फलस्वरूप आज के साहित्य में नायकों का धीरोदात्त रूप प्रायः समाप्त हो गया। उनका ईश्वरत्व तथा अतिमानवीयत्व भी समाप्तप्रायः हो गया है। आभिजात्य काल के साथ-साथ उसकी साहित्य रचना प्रायः समाप्त होती जा रही है। आभिजात्य रचना के लिए जो मानदंड बनाये गये, वे भी अब शिथिल पड़ चुके हैं तथा आज साधारण से साधारण मनुष्य को भी काव्य का नायक बनाया जा सकता है। एक बात और भी है कि आज का कवि न तो मठ-मन्दिरों में बैठ कर काव्य-रचना करता है और न दरबारों में। इस कारण उनका वैभव आज के साहित्य में नहीं झलकता। आज का कवि साधारण से साधारण व्यक्ति को भी काव्य का नायक बना देता है और उसका चरित्र-चित्रण बड़ी साधारण तथा आडम्बरहीन परिस्थितियों में किया है। इसी वातावरण के अनुरूप उसकी शैली भी है । राम की शक्ति-पूजा का कवि औदात्य गुण से मंडित है, इसलिए उसने भी राम के जिस रूप की कल्पना की है, वह परम्परा से सर्वथा भिन्न है।

राम -- योद्धा—कवि ने जिस राम का वर्णन किया है, वह एक योद्धा का रूप है। राम-रावण का घनघोर युद्ध चल रहा है। राम के तीक्ष्ण वाणों का रावण की सेना पर अभीप्सित प्रभाव नहीं हो रहा है। इसके विपरीत रावण के वाणों के कारण वीर वानर सेना विचलित हुई जा रही है। इसी बीच राम और अधिक क्रोधित होकर और तेजी से वाण वर्षा प्रारम्भ करते हैं। इसी बीच एक अद्भुत कार्य होता है कि राम के वाण जो लक्ष्य साध कर वर्षाये गये थे वे वाण बीच में ही नष्ट हो गये और सैनिकों तक पहुंच न पाये। राम के हाथ

तथा अंगूठा क्षत-विक्षत हो गये। वे अपनी सेना से रावण के ऊपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, पर अपने इस कार्य में विफल होते हैं। सभी सैनिक तथा यूथपति अचेत हो गये, केवल हनुमान के प्रबोधन का स्वर ही सुनाई देता रहा—

अनिमेष राग—विश्वजिद् दिव्य-शर-भंग-भाव,
विद्धांग—बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि—खर-रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार विकल-वानर-दल-बल,
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण गवाक्ष-गय-नल
वारित सौमित्र-भल्लपति-अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत्-केवल-प्रबोध।

राम के सारे प्रयत्न व्यर्थ होते हुए लगे, इससे वे कुछ खिन्न हो गए। क्योंकि रावण का आमन्त्रण पाकर महाशक्ति रणभूमि में उतरी थी। उस शक्ति के कारण भी रावण युद्ध में विजय प्राप्त करने में असफल रहा और राम भी नहीं जीत सके। रावण तथा सेना का पराक्रम देखकर राम का वीर भाव भाग गया। धनुष की प्रत्यंचा खुल गई। कटिबंध श्रम-शिथिल होने के कारण ढीला हो गया और वे उदासीन से अपनी सेना में लौट आये। संशयग्रस्त राम के मन में अनेक द्वन्द्व भाव उठ रहे हैं। जो हृदय आज तक कभी शत्रु से भयभीत नहीं हुआ था, वह आज हारा हुआ था। एक मन लड़ने को बार-बार उद्यत हो जाता था तो दूसरे ही क्षण वह असमर्थ हो जाता था और अपनी हार को स्वीकार कर रहा था—

जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य श्रान्त।
एक भी अयुत लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त॥
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार बार।
असमर्थ मानता मन उद्यत हो, हार हार॥

अन्तर्द्वन्द्व—राम के मन में एक साथ ही वीर भाव तथा अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उठ रहे हैं। युद्ध भूमि में वे दृढ़तापूर्वक युद्ध लड़ते हैं और इसमें वे अपने मनोरथ की सिद्ध न पाकर उदास हो जाते हैं। उनका यह युद्ध सीता के अपहरणकर्त्ता से हो रहा था, अतः उसकी याद आ जाना स्वाभाविक ही है। दूसरी बात यह भी कि मन सदा वर्तमान की परेशानियों से बचने के लिए

अतीत के स्वर्गिक सुखों में विचरण करना चाहता है। इसका परिणाम यह होता है कि मन उस अतीत की ओर उड़ान भरने लगता है और उसके नेत्रों के समक्ष जीवन के सबसे मधुरतम स्वप्न तथा घटनाएँ तैरने सी लगती हैं। राम का चरित्र मानवीय रूप में ही प्रस्तुत किया गया है किन्तु वे अपने व्यक्तिगत कर्त्तव्य से भी भली-भाँति परिचित हैं। अतः सीता की मधुर स्मृति से उनके मन में आशा का संचार हो जाता है—

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर
फिर विश्व-विजय भावना हृदय में आयी भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत,
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर;

इस प्रकार राम के हृदय में प्रेम और वीर भावनाएँ एक साथ ही उद्दीप्त होती हैं। प्रेम भावनाओं के उदय के साथ-साथ जहाँ उनमें परम विश्वास की भावनाएँ जाग्रत हो होती हैं, वहाँ इसके साथ ही उनके मन के अनेक स्वप्न भी खंडित होने लगते हैं। राम का शंकाग्रस्त मन फिर भयभीत हो उठा है क्योंकि राम का पराक्रम सारा फीका लगने लगता है। रावण का आमंत्रण पाकर उसकी रक्षा करने के लिए महाशक्ति उतर चुकी है और स्वयं भी अट्टहास करने लगता है। जिससे दिशायें भी गूंज जाती हैं। उस अट्टहास के कारण उनका मन भयभीत हो जाता है, निराशा की भावनायें उन पर आने लगती हैं और उनके नेत्रों से आँसू की बूंदें गिरने लगती हैं। युद्ध के प्रसंग में राम की ऐसी अवस्था किसी ने नहीं खींची थी, इसका एकमात्र कारण यही था कि सभी उनको परब्रह्म का अवतार मानते थे और इस कारण यदि कभी उनकी खिन्नावस्था को प्रदर्शित भी किया तो वह भगवान की लीला मान ली गई, फलतः उसे इतना महत्त्व नहीं दिया गया। निराला ने इसी भावना को एकदम मोड़ दिया और जिस अद्‌भुत रूप में इस भावना को प्रदर्शित किया उससे राम के कनमा नैराश्य उभर आया है।

विभीषण ने अपनी मित्रोचित सम्मति से राम के मन की खिन्नता को दूर करने का प्रयत्न किया लेकिन उस राम का मन तर्क-वितर्क में इतना उलझा हुआ था कि विभीषण के प्रत्येक शब्द का वह मूल्यांकन करता जा रहा था। यही कारण है कि विभीषण जिस स्वर में उन्हें सांत्वना दे रहा था, उसका उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। राम वस्तुस्थिति से अवगत से थे, अतः उन्हें उस वस्तुस्थिति को समझाना पड़ा। यह सब इन्होंने अपने मित्र के हृदय को प्रबोध देने के कारण ही किया—

यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण
अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति ! कहते छल-छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः उनके दृगजल

राम केवल लोकनायक नहीं प्रत्युत एक आदर्श पति भी हैं, इसी कारण सीता की मुक्ति का दायित्व भी उनके ऊपर है। इस दायित्व को वे भूले नहीं हैं। वह उस अपहरणकर्ता को युद्ध में जीत लेना भी चाहते हैं। इसी कारण जब सेना का वयोवृद्ध सेनापति जाम्बवान उनसे कहता है कि यदि रावण का आमंत्रण पाकर महाशक्ति उतरी है तो तुम भी आराधना करो और आराधना का उत्तर आराधना से दो—

बोले विश्वस्त कण्ठ से जाम्बवान, "रघुवर,
विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण
हे पुरुषसिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधना का दृढ़ आराधना से दो उत्तर।...'

भक्ति-भावना—भारतीय संस्कृति की एक अनन्यतम विशेषता भक्ति है। इसका पूर्णरूपेण प्रतिपादन राम की शक्ति-पूजा में किया गया है। राम जो इसके श्रेष्ठ तथा सर्व प्रमुख पात्र हैं वे भी शक्ति की ओर उन्मुख हो जाते हैं यद्यपि उनका यह प्रबोध जाम्बवान के द्वारा ही होता है। उसके विचार से सहमत होते हुए राम भी प्रसन्न हो जाते हैं और वे आराधना के लिए कृत संकल्प होते हैं। इसी बीच वे ध्यानमग्न होकर उस शक्ति की मौलिक कल्पना कर लेते हैं। वह हरे-भरे पर्वत को ही पार्वती मान लेते हैं और उस पर्वत के

नीचे जो सिंधु लहरा रहा है, वह वस्तुतः सिंधु नहीं है प्रत्युत् सिंह है जो पार्वती का वाहन है, जो महिषासुर आदि राक्षसों को देखकर चीत्कार करता है। दसों दिशाएँ मानो उस देवी के हाथ हैं तथा ऊपर जो विराट विशाल आकाश दिशा रूपी वस्त्र तथा चन्द्रमा को धारण किये दिखाई पड़ रहा है, वह वास्तव में शंकर हैं, जिनके ललाट पर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है। इस विशाल आकाश रूपी शंकर के दर्शन करके मानव मन में उठने वाली स्वार्थ और अहंकार की दुर्भावनाओं का अभिमान अपनी लघुता के कारण भगवान शिव के कल्याणकारी चरणों के नीचे दबा जा रहा है। शक्ति की इस मौलिक कल्पना और उनके साथ शंकर की कल्पना करके राम का भक्ति-भाव से परि-पूर्ण मन उस देवी की आराधना में रत होता है और वह उस देवी का पूजन नौ रात्रि के पूजन के समान करते हैं। प्रत्येक दिन उनका मन ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता जाता है। वे प्रत्येक जप के पूरा हो जाने पर एक इन्दीवर चढ़ाते जाते हैं। अपनी इस आराधना के पूर्व राम ने १०८ इन्दीवर मँगवाये थे। साधना के अन्तिम सोपान पर जब कि उनको सिद्धि मिलने वाली थी, एक इन्दीवर कम हो जाता है और यह स्थिति उनके लिए भयावह हो जाती है क्योंकि यह वह अवस्था थी जबकि राम को सिद्धि प्राप्त हो सकती थी और जिस रावण को महाशक्ति अपने अंक में लिए हुए थी उसको जीतने की आशा धूमिल पड़ जाते है। साथ ही सीता के अपहरणकर्त्ता को भी भली-भाँति या उचित दण्ड नहीं दिया जा सकता। इस भावना से राम का मन ग्लानि तथा विक्षोभ से भर उठा। इस अवस्था में जहाँ राम का एक मन उनको धिक्कारता है वहाँ उनका दूसरा मन उन्हें भक्ति के लिए फिर उत्साहित करता है और वे सहसा निर्णय ले लेते हैं कि उन्हें उनकी माँ बचपन में राजीवनयन कहा करती थी, अतः वह अपने उस नेत्र कमल को ही अपनी आराध्या देवी को समर्पित करने की सोच लेते हैं और उनका मन फिर से प्रसन्न हो जाता है।

'यह है उपाय' कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन—
'कहती थी माता मुझे सदा राजीव-नयन !
दो नील-कमल हैं शेष अभी, यह, पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।'

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में जो राम मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से जाने

जाते थे तथा साथ ही पूर्ण ब्रह्म थे उनका एक साधारण मनुष्य के रूप में वर्णन कर कवि ने उनके अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्ट किया है तथा ही उनके मन में उठने वाले अनेक घात-प्रतिघातों का भी अपने काव्य में उन्होंने वर्णन किया है। इस अवस्था में राम का चेतन मन यद्यपि संघर्षों से चूर-चूर होता जा रहा है तद्यपि उनके अचेतन मन में सदा अविजित भावना, संघर्षों पर विजय प्राप्त करने की कामना ही उभरती है। इस प्रकार राम का चरित्र अपने मानवीय रूप में पूर्ण-रूपेण उभर कर आया है।

शक्ति—निराला ने राम की शक्ति-पूजा में शक्ति की मौलिक कल्पना की है। भारतीय साहित्य में शिव के साथ शक्ति की भी कल्पना की है। उस देवी के अनेक नाम भगवती, दुर्गा, पार्वती, शक्ति, देवी आदि गिनाये गये हैं। शक्ति या चंडी के उपासक शाक्त कहलाते हैं। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जहाँ राम, कृष्ण, शिव की सर्वत्र पूजा और उपासना की जाती है वहां शक्ति की भी। प्राय: वैष्णव शैव शाक्त सभी शक्ति की उपासना करते हैं तथा नवरात्रि मानते हैं। बंगाल में चंडी या दुर्गा का विशेष महत्त्व है। निराला को भी काफी समय तक बंगाल में रहने का समय मिला है। अतः उनके भाव-विचारों पर बंगला साहित्य तथा संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, अपनी इस कृति में उन्होंने जिस देवी की मौलिक कल्पना की है, वह देवी भागवत, शिव महिम्न स्त्रोत, दुर्गा सप्तशती, चंडीशतक आदि अनेक पौराणिक ग्रंथों के आधार पर ही है। राम की शक्ति-पूजा में इस देवी के दर्शन पाँच छः स्थान पर हुए हैं।

प्रथम रावण ने अपनी उपासना से उस शक्ति को प्रसन्न कर लिया और युद्धक्षेत्र में वह शक्ति को आमंत्रण कर लेता है। राम जितने भी वाण क्षिप्रगति से रावण के ऊपर चलाते थे, वे सभी वाण विफल हो जाते थे क्योंकि राम के उन सभी वाणों को महाशक्ति प्रभावहीन कर देती थी। देवी ने रावण को अपनी गोद में ले रखा था और चन्द्रमा जैसे कलंक को अपने में छिपाये रहता है, उसी प्रकार महाशक्ति ने रावण को भी अपनी गोद में छिपाया हुआ था—

'आया न समझ में यह दैवी विधान;
रावण अधर्मरत भी अपना मैं हुआ अपर
यह रहा शक्ति का खेल समर शंकर शंकर !

करता मैं योजित बार-बार शर-निकर निशित
हो सकती जिनसे यह संसृति सम्पूर्ण विजित,
जो तेजः पुंज, सृष्टि की रक्षा का विचार
है जिसमें निहित पतनघातक संस्कृति अपार—

इसी कारण इस बात पर जोर देते हैं कि युद्ध के मैदान में उनकी विजय नहीं हो सकती, क्योंकि यह समर अब राम-रावण का न होकर सीधा महाशक्ति से ही हो गया है। वह वास्तव में महाशक्ति है क्योंकि जिसके देखने मात्र से ही पहले तो समस्त तीर अपना प्रभाव क्षीण कर बैठे और पुनः राम के हाथ ही बँध गये और राम को किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाना पड़ा—

'हत मंत्र-पूत शर सम्वत करतीं बार-बार,
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार।
विचलित लख कपिदल क्रूद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों,
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों,
पश्चात्, देखने लगीं मुझे, बँध गये हस्त,
फिर खिचा न धनु, मुक्त ज्यों बंधा मैं, हुआ अस्त !'

जाम्बवान की सलाह पर राम ने मौलिक शक्ति की उपासना की। वे शक्ति की उपासना में कुछ क्षण के लिए आत्मलीन हो जाते हैं। इस अवस्था में शक्ति के मौलिक रूप की कल्पना कर ली।

'मातः दशभुजा, विश्व-ज्योतिः, मैं हूँ आश्रित;
हो विद्ध शक्ति से है महिषासुर खल मर्दित,
जनरंजन'चरण-कमल-तल धन्य सिंह गर्जित !
यह, मेरा प्रतीक मातः समझा इंगित;
मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित।'

इस प्रकार राम ने उस शक्ति को नमस्कार कर उसकी मौलिक कल्पना कर ली और उपासना में लीन होने का प्रयत्न करने लगे। समस्त सेनागण उनकी ओर निरखने लगे और उनके मौलिक भाव को समझने का प्रयत्न करने लगे। वास्तव में राम ने जिस शक्ति की कल्पना की थी, वह अपने में विराट थी, महान थी। इसी महानता के कारण सभी का मस्तक उस दिव्य देवी के प्रति झुक गया—

'देखो बन्धुवर सामने स्थित जो वह भूधर
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना हैं इसकी मकरन्द-बिन्दु;
गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह नहीं सिन्धु;
दशदिक-समस्त हैं हस्त और देखो ऊपर,
अम्बर हुए दिगम्बर अचित शशि-शेखर;
लख महाभाव-मंगल पद-तल धँस रहा गर्व
मानव के मन का असुर मन्द हो रहा खर्व।'

राम की आज्ञानुसार हनुमान उनको १०८ इन्दीवर लाकर दे देते हैं। इन इन्दीवरों से राम शक्ति की पूजा आरम्भ करते हैं। उसके चरणों में पुष्प अर्पित करते हुए वे एक के बाद दूसरा इन्दीवर अर्पित करते जाते हैं। उनकी साधना निरलस भाव से एक चक्र के बाद दूसरा चक्र पार करती जाती है। शक्ति राम की इस निष्ठा को स्वयं अपनी आँख से देखती है। शक्ति की यह साकार कल्पना भी अपने में अद्भुत है। वह शक्ति राम को पुष्प अर्पित करते देखती है और उनकी निष्ठा, उपासना करने के हेतु राम की परीक्षा लेती है। जब एक इन्दीवर शेष रह जाता है तो अर्द्ध रात्रि के उपरान्त वह उसको चुरा लेती है। उधर राम की साधना तथा अनुष्ठान भी पूर्ण हो जाता है और वह जैसे ही कमल को लेने के लिए हाथ बढ़ाते हैं तो धक् से रह जाते हैं। उनके मन में अनेक कल्मष विचार आ जाते हैं और वह अपने नेत्र को अर्पित करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। वैसे ही वह महाफलक वाला तीर लेकर दक्षिण लोचन को निकालने के लिए तत्पर होते है वैसे ही सारा ब्रह्माण्ड काँप जाता है और भगवती साक्षात् उदय होकर राम का हाथ स्वयं ही पकड़ लेती है, इस समय का शक्ति का रूप अनेक दिव्य गुणों से विभूषित है—

देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर;
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध-अस्त्र सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,

दक्षिण गणेश कार्तिक बायें रण-रंग-राग,

मस्तक पर शंकर ? पद पद्मों पर श्रद्धा भर

श्री राघव हुए प्रणत मन्द-स्तर-वन्दन कर ।

इस प्रकार राम की शक्ति-पूजा में जिस देवी की मौलिक कल्पना की गई है, वह वस्तुतः अपने में बड़ी अद्भुत है तथा देवी के अनुरूप तथा महाशक्ति के रूप में उसकी प्रतिष्ठा की गई है, उससे देवी का व्यक्तित्व उभरा है। इस प्रकार इस कृति में शक्ति एक साकार, दिव्य गुणों से मंडित तथा अपने वैभव से सम्पन्न गुण वाली देवी है। उसके भीतर मातृत्व तथा पत्नीत्व के भावों का भी सामंजस्य हुआ है। इस मातृत्व का प्रत्यक्ष रूप उस समय दिखाई पड़ता है जब वह अपने पति शंकर की आज्ञा से अंजना का रूप धारण कर हनुमान को प्रबोध देती है।

हनुमान—राम की शक्ति पूजा का प्रमुख पात्र हनुमान है। इसका चरित्र-चित्रण राम और शक्ति के बाद है। वे राम के अनन्य भक्त हैं। इनके चरित्र के चित्रण में कवि ने कोई विशेषता नहीं भरी है क्योंकि इनका रूप परम्परा-गत ही है। निराला ने हनुमान के जिस रूप का चित्रण किया है, वह एकनिष्ठ भक्त, वीर योद्धा का है। राम की शक्ति-पूजा में हमें हनुमान के सर्वप्रथम दर्शन उस समय होते हैं, जबकि वे राम-रावण के युद्ध में व्यस्त हैं। रावण ने अपनी परम शक्ति के बल पर प्रायः सभी सेनानायकों को मूर्च्छित कर दिया है। उस समय भी हनुमान अपराजित रह जाते हैं और सारे युद्ध के मैदान में उनका ही स्वर सुनाई पड़ता है—

रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल ।

मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल ।।

वारित सौमित्र भल्लपति, अगणित मल्ल रोध

गर्जित प्रलयाब्धि क्षुब्ध हनुमत् केवल प्रबोध

उद्गीरित वन्हि-भीम-पर्वत-कपि-चतुः प्रहर

अनन्य भक्त—हनुमान राम के अनन्य भक्त हैं। जब सारी वानर सेना वापस आ जाती है, उस समय सब अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।

बैठे मारुति देखते चरणारविन्द

युग अस्ति-नास्ति के एक रूप गुण-गण-अनिन्द्य,

साधना-मध्य भी साम्य-वाम-कर दक्षिण-पद
दक्षिण-कर चल पर वाम चरण, कपिवर गदगद
पा सत्य, सच्चिदानंद रूप, विश्राम धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम ।

वे राम की सेवा में भी तत्पर होते हैं और उनके पदों के प्रक्षालनार्थं जल ले आते हैं ।

राम जब दिन-भर के युद्ध का आत्मविश्लेषण करते है और उसके बारे में सोचते-सोचते उनके नेत्रों से दो अश्रु दल नीचे टपक पड़ते हैं । उन आँसुओं को देखकर हनुमान भी क्रोधित हो उठते हैं और वह महाकाश को लीलने के लिए ऊँची उड़ान भरने लगते हैं । रावण की अन्धकार रूपिणी महिमा को विनप्ट करने के लिए वे तत्पर हो जाते हैं । उनके इस क्रोधित रूप को देखकर शंकर का भी आसन हिल जाता है—

वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।

इसको देखकर शंकर ने शक्ति से कहा कि हे महादेवी इसे रोको क्योंकि यह वानर नहीं बल्कि महावीर है और पूर्ण ब्रह्मचारी है अतः इस पर श्रृंगार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अनन्य सेवक है अतः इसे केवल प्रबोध ही दिया जाना चाहिए, उससे ही यह झुक जाएगा—

बोले—'सम्बरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, नहीं हुआ श्रृंगार-युग्म-गत, महावीर,
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर,
चिर-ब्रह्मचर्य-रत ये एकादश रुद्र, धन्य,
मर्यादा पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य,
लीला-सहचर, दिव्य भावधर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार;
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध !'

शंकर का अनुमान ठीक निकला । हनुमान उस शक्ति के रूप को जो

अंजना के रूप में प्रकट हुआ, उसे सत्य रूप में ही अंजना समझ बैठे और आज्ञाकारी पुत्र की भाँति माँ के सामने कुछ भी न बोल सके और उसके झिड़कने तथा समझाने पर उनको प्रबोध हुआ और उनका क्रोध शनैः-शनैः शान्त पड़ने लगा।

हनुमान राम के भक्त ही नहीं, वरन् आज्ञाकारी सेवक हैं। राम की आज्ञा की देरी थी; हनुमान तुरन्त ही चल देते हैं।

'चाहिए हमें एक सौ आठ कपि इन्दीवर
कम से कम, अधिक और हो, अधिक और सुन्दर
जाओ देवीदह, उषःकाल होते, सत्वर
तोड़ो लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर
अवगत हो जाम्बवान् से पथ, दूरत्वस्थान
प्रभु पद-रज सिर धर चले हर्ष भर हनुमान।'

इस प्रकार राम की शक्ति में ये तीन प्रमुख पात्र राम, शक्ति तथा हनुमान का चरित्र-चित्रण भली-भाँति उभरा है। विभीषण का चरित्र परम्परा से पृथक् एक मित्र तथा कूटनीतिज्ञ राजा के रूप में वर्णित किया गया है। जाम्बवान के रूप में भी राम के कुशल परामर्शदाता का रूप उभरा है तथा वह वृद्ध हैं इसीलिए भी राम उनकी बात को सहर्ष स्वीकार करते हैं। इस प्रकार राम की शक्ति-पूजा में जिन पात्रों की अवतारणा हुई है, वे अपने में स्वाभाविक हैं।

व्याख्या भाग

भारती-वंदना

कविता परिचय—महाकवि निराला ने राष्ट्रीय जन-जागरण के अनेक गीत लिखे हैं। प्रस्तुत गीत उन्हीं में से एक है। इसकी रचना सन् १९२८ में हुई थी। इस गीत में भारत की सीमा सहित उसकी गौरव-महिमा का वर्णन किया गया है। ऐसे भारत की भारती (सरस्वती) विजयिनी हो जिसके चरण-प्रान्त पर कमलरूप में लंका विराजमान है, सागर की तरंगें सदैव गरज-गरजकर जिसके पदों का प्रक्षालन करती रहती हैं और अनेक अर्थ भरे शब्दों से स्तुति-गान करती हैं। इस गीत में राष्ट्र की गुरुता के साथ-साथ भारती की शुचिता भी मुखर हो उठी है। यद्यपि यह गीत प्रार्थनापरक है, तथापि इसमें राष्ट्रीय जागरण के भाव भी सन्निहित हैं। भारतीय संस्कृति के चिन्ह कमल तथा ओंकार की ध्वनि की ओर संकेत करके कवि ने इस गीत को अत्यधिक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीयवादी बना दिया है। इस गीत की भाषा संस्कृतनिष्ठ और समासबहुला है।

भारती ···· अर्थ भरे।

शब्दार्थ—भारती=सरस्वती, भारत माता। कनक-शस्य-कमल-धरे=सोने के वर्ण के समान पीले शस्य को धारण किये हुए। शतदल=कमल। गर्जितोर्मि=गरजती हुई तरंगें। शुचि=पवित्र। चरण-युग=दोनों चरण। स्तव स्तुति।

अर्थ—कवि भारतमाता की सरस्वती के साथ समता दिखाता हुआ कहता है कि सरस्वती रूपी भारतमाता की जय हो। यह भारत माता सरस्वती के समान सोने के वर्ण के समान पीले शस्य रूपी कमल को धारण किये हुए है। लंका ही मानो इसके चरण-कमल हैं, जिन्हें गरजती हुई तरंगों से युक्त सागर अपने पवित्र जल से धोता रहता है और वह गर्जन ही मानो अनेक प्रकार के अर्थों से भरी हुई स्तुति है।

कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार सरस्वती हाथ में कमल धारण किये

हुए होती है उसके चरण कमल-पुष्पों पर टिके रहते हैं, उसके चरणों को लोग धोते हैं और उनकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार भारत माता कनक शस्य रूपी कमल धारण किये हुए हैं, लंका रूपी कमल पर उसके चरण सुशोभित हैं, जता हुआ सागर अपने पवित्र जल से उन चरणों का प्रक्षालन करके उनकी गरस्तुति करता रहता है।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा।

तरुण तृ······गले।

शब्दार्थ—वसन=वस्त्र। खचित=लगे हुए। धवल सार=श्वेत धारा।

अर्थ—इन पंक्तियों में कवि सरस्वती से भारतमाता की समता दिखाता हुआ कहता हे कि तरु, तिनके और वन की लताएँ ही मानो भारतमाता के वस्त्र हैं, फूल ही उसके अंचल में लगे हुए सितारे हैं। गंगा के चमकते हुए जल कणों की श्वेत धारा का हार वह गले में धारण किये हुए है।

भाव यह है कि जिस प्रकार सरस्वती सुन्दर वस्त्र पहने हुए होती है, उसके वस्त्रों पर सितारे लगे होते हैं और गले में श्वेत मोतियों का हार होता है, उसी प्रकार भारतमाता भी इन उपकरणों से सुसज्जित है।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा।

मुकुट शुभ्र······मुखरे।

शब्दार्थ—शुभ्र=सफेद। हिम-तुषार=बर्फ। उदार=विशाल। शत-मुख =सैकड़ों मुख। प्रणव=परमेश्वर।

अर्थ—इन पंक्तियों में कवि भारतमाता की समता सरस्वती से करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार सरस्वती श्वेत मुकुट धारण किये हुए होती है उसी प्रकार भारतमाता भी बर्फ का श्वेत मुकुट धारण किये हुए है। अर्थात् हिमालय इसका मुकुट है, जिसकी चोटियाँ सदैव बर्फ में ढकी रहती हैं। जिस प्रकार अनेक जन सरस्वती के प्रसंग में भगवान् की स्तुति करते हैं, उसी प्रकार विशाल दिशाएँ सैकड़ों मुखों से सैकड़ों प्रकार की ध्वनियाँ करती हुई मानो प्रणव-परमेश्वर ओंकार का जाप करती रहती हैं।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा।

बादल-राग

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२० में हुई थी। प्रकृति से छायावादी कवियों का विशेष मोह रहा है और उन्होंने प्रकृति के माध्यम से अपनी विविधि भावनाओं को व्यक्त किया है। इस कविता में कवि ने बादलके विप्लवकारी और भयंकर रूप को प्रधानता दी है। बादल की भयंकरता के समक्ष अच्छे-अच्छे वीरों के मस्तक नत हो जाते हैं, गगनस्पर्शी अचलों का शरीर डोल जाता है, किन्तु बादल का एक दूसरा भी रूप है। वह है उदारता का, पालकर्ता का। बादलों के द्वारा ही नवीन आशाओं एवं आकांक्षाओं की भाँति धरती के हृदय में छिपे हुए अंकुर विकसित होते हैं, हाड़ मात्र के आधार कृषकों के जीवन का पारावार भी यही है।

तिरती है······फिर फिर।

शब्दार्थ—समीर-सागर=हवा रूपी समुद्र। अस्थिर=नश्वर। दग्ध=जलता हुआ, दुखी। विप्लव=प्रलय। प्लावित=जल में डूबी हुई। रण-तरी=रण रूपी नौका। सुप्त=सोये हुए, अविकसित।

अर्थ—कवि बादल के प्रलयंकारी रूप का वर्णन करता हुआ कहता है कि हे विप्लव के बादल! समीर-सागर पर नश्वर सुख के ऊपर दुख की छाया की भाँति तेरी छाया सदैव मँडराती रहती है और जग के दुखी हृदय पर यह तेरी जल में डूबी हुई निष्ठुर विप्लव की माया, जो तेरी रण-नौका के समान है और अनेक प्रकार की आकांक्षाओं से भरी हुई है, अपनी भेरी की गर्जना करके नव जीवन में आशाओं के समान छिपे हुए पृथ्वी के हृदय के उन अविकसित अंकुरों को सजग बनाती हैं जो बार-बार सिर ऊँचे करके बाहर ताक रहे हैं।

अलंकार—मानवीकरण, रूपक।

विशेष—प्रकृति-चित्रण की नवीन-नवीन विधाएं छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के मधुर पक्ष के साथ-साथ कठोर पक्ष को भी ग्रहण किया है। इसी पक्ष के अन्तर्गत प्रकृति का प्रलयंकारी रूप आता है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने इसी रूप का चित्रण किया है।

बार-बार गर्जन······स्पर्धा धीर।

शब्दार्थ—वर्षण=बरसना। वज्र-हुंकार=भयानक गर्जन। अशनि-पात

=बिजली का गिरना। शायित=गिरा हुआ। क्षत-विक्षत=घायल। अचल =पर्वत। गगनस्पर्शी=आकाश को छूने वाले। स्पर्धा-धीर=जिनकी धीरता से स्पर्धा हो, अर्थात् अत्यन्त धीर।

अर्थ—हे विप्लव के बादल ! तुम बार-बार गरजते हो और मूसलाधार बरसते हो। तुम्हारी घोर और भयंकर हुंकार को सुनकर भय के मारे संसार अपना हृदय थाम लेता है। तुम सैकड़ों गर्वीले वीरों को बिजली गिराकर धरा-शायी कर देते हो। आकाश को छूने वाले उन पहाड़ों के अचल शरीर को भी घायल कर देते हो जो धीरता में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते।

अलंकार वीप्सा, अनुप्रास, मानवीकरण।

विशेष—बादलों की भयंकरता का यह वर्णन नवीन शैली और नवीन शब्दावली में हुआ है।

हँसते हैं ···· शोभा पाते।

शब्दार्थ—रव=शब्द।

अर्थ—हे विप्लव के बादल ! जब तुम गरज कर बरसते हो तो फूलों और बीजों का लघु भार लिए अपार शस्य के छोटे-छोटे पौधे खिल उठते हैं। वे हिलते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो साथ-साथ मिलकर, प्रसन्न होकर और हाथों का संकेत करके तुझे अपने पास बुला रहे हों। विप्लव के समान भयंकर शब्द से छोटे ही पदार्थ शोभा को प्राप्त करते हैं, आप जैसे के लिए तो अहं-कार त्याज्य है।

अलंकार—पुनरुक्ति, उत्प्रेक्षा।

अट्टालिका·····ढांप रहे हैं।

शब्दार्थ—आतंक-भवन=भय को उत्पन्न करने वाला भवन। पंक= कीचड़। क्षुद्र=छोटा। प्रफुल्ल=खिला हुआ। जलज=कमल। रुद्ध=बन्द। क्षुब्ध=दुखी। तोष=सन्तोष। अंगना-अंग=नारी का शरीर। अंक=गोद। धनी=पुरुष। त्रस्त=भयभीत।

अर्थ—हे आतंकभवन बादल ! ये अट्टालिका नहीं है। जल की प्रलय का प्लावन सदा कीचड़ पर ही होता है। छोटे और खिले हुए कमल से सदा नीर छलकता रहता है। शैशव का सुकुमार बन्द कोश रोग-शोक, दुःख में भी सदा हँसता रहता है। पुरुष नारियों के अंगों से लिपटे रहने पर भी व्याकुलता से

भरे हुए सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं और भय की गोद में पड़कर काँप रहे हैं तथा बादल की भयंकर गर्जना से भयभीत होकर अपने नेत्र और मुखों को ढक रहे हैं ।

अलंकार—अनुप्रास ।

जीर्ण बाहु.........पारावार ।

शब्दार्थ—जीर्णवाहु=शक्तिहीन भुजाएँ । जीर्ण-शरीर=दुर्बल शरीर । अधीर=दुखी । और=तत्त्व । पारावार=सागर ।

अर्थ—हे विप्लव के वीर वादल ! अपनी भुजा और शरीर की शक्ति से रहित तथा दुखी होकर किसान तुझे बुलाता है । निर्धनता ने उसे किसान के शरीर तत्त्व को चूस लिया है । हे जीवन के सागर ! अब तो वह किसान केवल हड्डियों का ढाँचा ही रह गया है ।

जुही की कली

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९१६ ई० में अर्थात् छाया-बाद के आविर्भाव के चार वर्ष पूर्व हुई थी । यह कविता कवि की रचानाओं में एक विशेष पद की अधिकारिणी है । इसका ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है । इसमें मुक्त प्रेम की पूजा के साथ-साथ प्रकृति सौन्दर्य की आराधना भी व्यक्त की गई है । यद्यपि इसका आधार प्रकृति है तथापि, इनमें रागात्मक सम्बन्ध की निवृत्ति भी हुई है । इस कविता की प्रेरणा के विषय में स्वयं निराला ने लखनऊ रेडियो से प्रसारित एक वार्ता में 'मेरी पहली रचना' शीर्षक के अन्त-र्गत बताया था कि इसकी रचना महिषादल में अर्द्धरात्रि को श्मशान के अवसर पर हुई थी । इस कविता की प्रमुख विशेषता है आवेगपूर्ण सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ।

श्रृंगार-पक्ष के अतिरिक्त इस कविता का आध्यात्मिक पक्ष भी है । कली की सुप्ति से लेकर जागरण और मिलन की वर्णित स्थितियों में आत्मा की रहस्यानुभूति की अवस्था का संकेत भी दिया है । इस कविता की अन्तिम परिणति में आत्म-तल्लीनता का भाव है ।

निराला काव्य में और हिन्दी-साहित्य में इस कविता का महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक स्थान है । नायिका की समस्त क्रियाओं का कली पर आरोप कल्पना शक्ति और मानवीकरण का सफल प्रयोग है । वातावरण की सृष्टि और उसके

प्रभावोत्पन्न भावों की भी व्यंजना सशक्त है। एक आलोचक के शब्द में—'जुही की कली' में कवि की कल्पना बड़े ही आवेग के साथ चलती है। इसमें कल्पना की प्रधानता है। आवेग का स्वरूप सिमट-सिमट कर कल्पना का अनुकरण करता गया है। कल्पना में ग्राह्य शक्ति वर्तमान है। इसके पाठक के मन में ऐसे लोक की कल्पना उत्पन्न होती है जिससे उसका अन्तर्गत सदैव स्वच्छता और मधुमय लोक में रमता है। इसके नायक और नायिका दोनों स्वप्न लोकवाणी (Fairy world of Romantic day dreaming) हैं।

विजन-बनबल्लरी······पत्रांक में।

शब्दार्थ—विजन-वनबल्लरी=निर्जन वन में उत्पन्न लता। स्नेह-स्वप्न-मग्न=प्रेम के स्वप्न में डूबी हुई। अमल=निर्दोष। तरुणी=पूर्ण विकसित। पत्रांक=पत्ते की गोद।

अर्थ—निर्जन वन में उत्पन्न लता पर सुहागभरी, प्रेम के स्वप्न में डूबी हुई निर्दोष एवं कोमल शरीर वाली तरुणी—पूर्ण विकसित—जुही की कली आंखें बन्द किये हुए शिथिल शरीर से पत्ते की गोद में सोती थी।

अलंकार—अनुप्रास, अन्योक्ति।

विशेष—इसमें सन्देह नहीं कि प्रस्तुत पंक्तियों में जुही की कली को एक नायिका का रूप दिया गया है, किन्तु यह नायिका कौन है इसके विषय में आलोचकों में मतैक्य नहीं है। 'क्रान्तिकारी कवि निराला' के लेखक ने इसे प्रोषित पतिका नायिका माना है, किन्तु समग्र कविता की पृष्ठभूमि में यह मान्यता उपयुक्त सिद्ध नहीं होती।

वासन्ती निशा·····मलयानिल।

शब्दार्थ—वासन्ती=वसन्त ऋतु की। विरह-विधुर=विरह से दुखी।

अर्थ—वासन्ती ऋतु की सुहावनी रात थी। पवन, जिसे मलयानिल कहते हैं, विरह से दुखी प्रिया का साथ छोड़कर किसी दूर देश में चला गया था।

आयी याद········कली खिली साथ।

शब्दार्थ—कान्ता=प्रिया। कमनीय=सुन्दर। सर-सरित=तालाब और नदी। गहन गिरि-कानन=ऊँचे पर्वत तथा बन। कुंज-लता-पुजों को=कुंज तथा लता के झुरमुटों को। केलि=क्रीड़ा।

अर्थ—बिछुड़ने से वियोगावस्था में पवन को मिलन की वह मधुर बात

याद आई चाँदनी की धुली हुई अर्थात् चाँदनी से निर्मल तथा सुशोभित आधी रात स्मरण हो आई। प्रिया की तथा उसके पुलकातिरेक से काँपते हुए सुन्दर शरीर की याद आई फिर क्या हुआ ? पवन उपवन, तालाब, नदी, ऊंचे पर्वत, वन, कुंज तथा लता के झुरमुटों को पार करके उस स्थान पर पहुंचा जहां उसने खिली हुई कली के साथ क्रीड़ा की थी।

अलंकार—अनुप्रास, सहोक्ति, मानवीकरण।

विशेष प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है।

सोती थी······कौन कहे ।

शब्दार्थ कपोल = बाल। हिंडोल = हिंडोला। चूक-क्षमा = भूलकर भी क्षमा। निद्रालस = नींद के कारण आलस्य से भरे हुए। बंकिम = टेढ़े। किंवा = अथवा।

अर्थ—जब विरहातुर होकर प्रियतम (पवन) अपनी प्रियतमा (जूही की कली) से मिलने के लिए पहुंचा तो वह सो रही थी। अतः बताओ वह किस प्रकार अपने प्रियतम के आगमन को जान सकती थी ? नायक ने उसके गालों को चूमा; पुलकातिरेक से वह लता की लड़ी हिंडोले की भाँति चंचल हो उठी। इस पर भी वह जगी नहीं और न अपनी धृष्टता की उसने भूलकर भी क्षमा ही माँगी। वह अपने निद्रा के कारण आलस्य से भरे हुए टेढ़े नेत्रों को बन्द किये रही, अथवा यौवन की मदिरा पीकर मतवाली हो रही थी, इस विषय में कौन ठीक कह सकता है।

अलंकार—उपमा, सन्देह।

विशेष—१. इन्हीं पंक्तियों के आधार पर अनेक आलोचकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रस्तुत कविता में वर्णित नायिका प्रोषितपतिका नहीं है आचार्य भानुदत्त ने प्रोषितपतिका यह लक्षण किया है—

'देशान्तर गते प्रेयसी सन्तापव्याकुला प्रोषितभर्तृका।

अर्थात् पति अथवा प्रिय के विदेश चले जाने पर विरह से व्याकुल नायिका को प्रोषितपतिका कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रोषितपतिका विरह दुख के कारण कभी भी इतनी प्रगाढ़ निद्रा में नहीं हो सकती कि उसका प्रियतम आकर उसके कपोलों का चुम्बन कर ले और वह जगे तक नहीं। यहाँ पर कली की अवस्था आगतपतिका से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, यद्यपि इसे पूर्णतः

आगतपतिका नायिका भी नहीं कहा जा सकता।

२. कतिपय आलोचक इन पंक्तियों पर आध्यात्मवाद का आरोपण करके इनका अर्थ यह निकालते हैं कि यहां आत्मा की सुप्ति के बाद जागरण की अवस्था की परिकल्पना की गई है। अतः आत्मा में विरह की स्थिति यहाँ नही है। वह सोई है, इसलिए उसे विरह का ज्ञान भी नहीं है। कुछ आलोचकों का मत है कि आत्मा आध्यात्मिक संस्पर्श के प्रथम स्फुरण में माया—निद्रा—में ही मग्न रहती हैं। यहाँ पर आत्मा की इसी स्थिति का वर्णन है।

निर्दय उस......प्यारे संग।

शब्दार्थ—निपट=अत्यन्त। निठुराई=निष्ठुरता। हेर=देखकर।

अर्थ - जब कपोलों के मधुर चुम्बन के पश्चात् भी नायिका (जूही की कली) नहीं जागी तो उस निर्दय नायक (पवन) ने अत्यन्त निष्ठुरता यह की कि निरन्तर झोंकों के प्रहार से उसकी सारी सुन्दरता तथा सुकुमार देह झकझोर डाली, उसके गोल-गोल तथा गोरे कपोल मसल दिये; तब वह युवती चौंक पड़ी और उसने चकित होकर अपनी चितवन चारों ओर फहराई। अपने प्रियतम को अपनी सेज के पास देखकर वह नीचे मुंह करके हँस पड़ी और प्रियतम के प्रेम के खेल से खिल उठी।

अलंकार अनुप्रास।

विशेष—आध्यात्मिक दृष्टि से इन पंक्तियों के पूर्ण मुक्ति का वर्णन किया गया है। इनमें माया में फँसी हुई सुषुप्त आत्मा का परम्परा के साथ मिलन करके परमानन्द का वर्णन किया गया है।

जागो फिर एक बार

कविता परिचय—प्रस्तुत कविता के दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड की रचना सन् १६१८ ई० में और द्वितीय खण्ड की रचना सन् १६२१ में हुई थी। यह कवि का उद्‌बोधन गीत है, जिनमें कवि ने भारतवासियों को जागरण का संदेश दिया है। प्रथम खण्ड में कवि ने अत्यन्त मधुमय वातावरण के चित्रण के द्वारा वर्तमान युग के भारतवासियों की मोह निद्रा की स्थिति का निरूपण किया है। उसने बताया कि जब सकल प्रकृति में नवीन जागरण की लहरें तरंगित हैं तो भारत वालों को कर्त्तव्यों से विमुख होकर सोते रहना उचित नहीं है। इस खंड का प्रसाद के गीत 'बीती विभावरी जाग री' से बहुत साम्य है, किन्तु

इसमें मूलभूत अन्तर यह है कि 'बीती विभावरी जाग री' में उषा नागरी पनघट में तारा-घट डुबोती है, खग-कुल कुल-कुल बोलता है और लतिका भी मधु मुकुल की गागरी भर लाती है। इससे जागरण के बाद भी एक मादक श्रृंगार का रूप उत्पन्न होता है, अर्थात् इसमें सखी या नायिका को जगाने का उपक्रम है और 'जागो फिर एक बार' में आत्मा के जागरण का दार्शनिक आख्यान है। निराला के भावों में उद्बोधन की जो गरिमा है, वह प्रसादकी उपर्युक्त कविता में नही है।

द्वितीय खण्ड में ज्ञान, कर्म और योग के मिश्रण से कवि ने कर्मयोगियों, ज्ञान-योगियों एवं योग-दार्शनिकों के इतिहास-प्रसिद्ध एवं शास्त्रसम्मत उदाहरण भारत वालों के समकक्ष प्रस्तुत किये हैं, जो कवि के भावों की गरिमा एवं प्रभावोत्पादकता को द्विगुणित कर देते हैं। इस कविता में देश-प्रेम के साथ-साथ कवि ने देश-दुर्दशा के प्रति अपार क्षोभ प्रकट किया है। इस खण्ड की तुलना प्रसाद के गीत 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से की जा सकती है, किन्तु उसमें इस गीत की सी दार्शनिकता नहीं।

अन्त में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कविता निराला-साहित्य की ही नहीं वरन् हिन्दी-साहित्य की भी अमर एवं गौरवमयी निधि है।

जागो फिर............रही द्वार।

शब्दार्थ - अरुण पंख=लाल पंख अर्थात् प्रभातकालीन सूर्य। तरुणा-किरण =नवीन किरण।

अर्थ—भारतवासियों को जागरण का सन्देश देता हुआ कवि कहता है कि हे देशवासियो ! एक बार फिर जागो। हे प्यारे ! तुम्हें जागते हुए सब तारे हार गये हैं, और सब प्रभातकालीन सूर्य की नवीन किरण तुम्हारे लिए द्वार खोल रही है अर्थात् सब नवीन प्रात: आ गया है, अत: जागरण की इस बेला में निद्रा छोड़कर जग जाओ।

आंखें अलियों .... रहा गुंजार।

शब्दार्थ—अलियों-सी=भौंरों के समान। कमल-कोरकों में=कमल की कलियों में। गुंजार=गूँज।

अर्थ—तुम्हारी भौंरों के समान आखें न जाने मधु की किन गलियों में फँस गई हैं। अर्थात् जिस प्रकार भौंरा मधु को देखकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर अपना सब कुछ भुला देता है, उसी प्रकार तुम लोग भी अपने कर्त्तव्यों

से विमुख होकर न जाने किन सांसारिक आकर्षणों में फँस गये हो। तुम्हारी निद्रा से बन्द आँखें न जाने अपनी पलक-पंखुड़ियों को बन्द करके चुपचाप किस कली का मधु पी रही है ; अथवा बन्द हुई कमल की कलियों में तुम्हारी गूँज बन्द हो गई है।

कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार भौंरा मधु-पान में मग्न होकर अथवा किसी कमल कली में बन्द होकर अपनी गुंजार को भूल जाता है, उसी प्रकार तुम सांसारिक आर्कषणों में या निजी स्वार्थों में बन्दी होकर अपने कर्त्तव्यों को भूल बैठे हो।

अलंकार—उपमा, सन्देह।

अस्ताचल..........यौवन-उभार।

शब्दार्थ—विभावरी=रात्रि। यामिनीगंधा=एक पुष्प का नाम। चकोर कोर=चकोर की आँखें। कुल=समूह।

अर्थ—सूर्य ढलकर अस्ताचल पर्वत पर अस्त हो गया और रात्रि में चन्द्रमा की शोभा को देखकर यामिनीगन्धा भी जग गई है। जिसके दर्शनों के लिए आशाओं से भरी हुई तथा बहुभावमयी मौन भाषा से युक्त चकोर की आंखें एकटक एवं बड़े चाव से चन्द्रमा को घेर रही हैं ; अर्थात् चकोर बड़ी ही तल्ली-नता से चन्द्रमा की ओर देख रहा है। शिशिर के भार से व्याकुल फूलों के समूह खिलकर झुक गये हैं और कलियों के मधुर तथा मद से भरे हुए हृदय में फिर से यौवन का उभार आ गया है।

भाव यह है कि सुप्त प्रकृति में भी इस प्रकार की चेतना आ गई है, तब तुम्हें भी सजग हो जाना चाहिए।

अलंकार—अनुप्रास, मानवीकरण।

विशेष—जागरण की स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का तदनुकूल वर्णन भावों में उत्षकता उत्पन्न करता है।

पिउ रव.......कथा भार।

शब्दार्थ रव=शब्द। विरह=विदग्धा=बिरह से दुखी। चारु= सुन्दर।

अर्थ=पपीहे अपनी वाणी में पीउ-पीउ बोल रहे हैं। विरह से दुखी वधू सेज पर एकाकी पड़ी हुई बीती बातों को तथा मधुर मिलन की रातों को

याद करके अपनी पलकों को मूँद रही है, जिससे उसकी आँखों से आँसू छलक आये हैं जो उसकी व्यथा के भार को हल्का बना गये ।

सहृदय समीर······रही पुकार ।

शब्दार्थ—सहृदय=शीतल और मन्द । शमन-शिथिल-बाँहें=सोने से ढीली हुई बाँहें । अलस=आलस्य । ऋजु-कुटिल=सीधा और टेढ़ा । प्रसार-कामी=प्रसार की इच्छा करने वाले । केश-गुच्छ=जटाएँ । सुरभि-सी=सुगंधि की भाँति । उभय=दोनों ।

अर्थ—हे प्रिय ! शीतल और मन्द पवन की भाँति आँसुओं को पोंछो, आलिंगन में बद्ध सोने के कारण पीली पड़ी हुई बाहुओं को स्वप्न जैसे मधुर आवेश में भरकर आतुर हृदय को वस्त्रों से मुक्त कर दो, जिससे मन की सुप्तावस्था भी सुखोन्माद में परिवर्तित हो जाये ।

इन पंक्तियों का आध्यात्मिक अर्थ यह है कि सुप्तावस्था में भी आत्मा परमात्मा का संस्पर्श पाकर अमित आनन्द को प्राप्त कर लेती है । दूसरे शब्दों में—शयन-शिथिल बाँहें स्वप्निल आवेश में भर जाती हैं, किन्तु समय नहीं छूटता । उर के आतुर वसन मुक्त होने में माया के आवरण हटने की व्यंजना हो सकती है ।

कल्पना के समान कोमल सीधे-टेढ़े तथा प्रसार की इच्छा करने वाले केश-गुच्छों को आलस्य से छूट-छूटकर पीठ पर फैल जाने दो, जिससे तन-मन थक जाएँ, बुद्धि में, मन मन में और जी जी में उसी प्रकार लीन हो जाये जिस प्रकार मृदु सुगन्धि समीर में लीन हो जाती है । तब दोनों आत्माओं में एक अनुभव का संचार हो जाए, अर्थात् दोनों एकाकार हो जायें । मैं इसी तथ्य को कब से पुकार-पुकार कह रही हूँ ।

अलंकार रूपक, अनुप्रास ।

विशेष—दार्शनिक भावनाओं के अन्तर्गत अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा इन पंक्तियों में स्पष्ट है ।

उगे अरुणाचल····हजार ।

शब्दार्थ—भारती-रति=सरस्वती का प्रेम; भारत माता का प्रेम ।

अर्थ—अरुणाचल में सूर्य का उदय हुआ अर्थात् जागरण की नव बेला आई और कवि के कंठ में सरस्वती अथवा भारत माता का प्रेम समा गया । प्रकृति के आवरण प्रत्येक क्षण में बदलते रहे । दिन बीता, रात आई; रात बीती, दिन

आया। इसी प्रकार संसार में दिन, पक्ष, मास बीतकर हजारों वर्ष बीत गये।

भाव यह है कि प्रकृति में नित नवीन परिवर्तन होता रहा, समय का चक्र भी अनवरत गति से चलता रहा, किन्तु भारत वालों में जागरण की बेला नहीं आई। वे सोते ही रहे। अतः अब उन्हें अपनी निद्रा का परित्याग करके जग जाना चाहिए।

(२)

जागो फिर...... आज स्यार।

शब्दार्थ—सिन्धु-नद-तीरवासी=सिन्धु नदी के किनारे पर बसने वाले। सैन्धव=सिन्धु के। तुरंगों पर=घोड़ों पर। चतुरंग-चमू-संग=चार प्रकार की सेनाओं के साथ। वीर-जन मोहन=वीरों को मोहने वाला।

अर्थ—भारतीय इतिहास के अतीत पृष्ठों की गौरवमयी कथाओं की ओर भारत वालों का ध्यान आकर्षित करते हुए कवि कहता है कि हे भारत वालों! एक बार फिर जागो। सिन्धु नदी के किनारे पर बसने वाले आर्यों ने महा-सिन्धु के समान गम्भीर गीत गाए थे और युद्ध-क्षेत्र पें वीरगति प्राप्त करके अपने प्राणों को अमर बना लिया था तथा सिन्धु के घोड़ों पर चढ़कर चार प्रकार की सेनाओं के साथ युद्ध किया था। गुरु गोविन्द सिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं सवा-सवा लाख पर एक-एक सिख की बलि चढ़ा दूँगा और तभी अपने नाम गोविन्द सिंह को धारण करने का अधिकारी बनूँगा। गुरु गोविन्द सिंह का वीरों के मन को मोहने वाला तथा दुर्जय संग्राम का राग किसी ने सुनाया और बताया कि गुरु गोविन्द सिंह बारह महीने—हर समय—रण में फाग खेलते रहे ऐसे वीरों की जन्मभूमि में आज गीदड़ों ने अधिकार कर लिया है।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास।

विशेष—उद्बोधन के भावों में अतीत गौरव के गठबंधन से अत्यन्त उत्कर्षता आ गई है।

सत् श्री......सहस्त्रार।

शब्दार्थ—भाल-अनल=माथे की आग। तीनों गुण=सत्, रज और तमोगुण। ताप त्रय=तीनों प्रकार के दुःख—आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक। मृत्युंजय=मृत्यु को जीतने वाले। व्योमकेश=शिव। सप्तावरण=सात आवरण। सहस्त्रार=सहस्त्र दलों का एक कल्पित कमल जिसमें

मन के पहुंचने पर मुक्ति मिल जाती है।

अर्थ—जब गुरु गोविन्द सिंह सत् श्री अकाल कहकर युद्धक्षेत्र में उतरते थे तो उनके मस्तक से आग निकलने लगती थी। उस आग में धक्-धक् करके काल, तीनों गुण और तीनों दुःख भस्म हो गये थे। तब तुम अभय हो गये थे। तुम मृत्यु को जीतने वाले शिव के समान अमृत पुत्र थे, तुम योग द्वारा प्रतिपादित सातों आवरणों को भेदकर, मरणलोक को छोड़कर तथा शोर को दूर करके उस स्थान पर पहुंचते थे जहाँ पर सहस्रदलों द्वारा कमल स्थित है; अर्थात् जीवन्मुक्त हो गये थे।

अलंकार—वीप्सा, उपमा।

विशेष—इन पंक्तियों में योगशास्त्र और काव्यशास्त्र का सामंजस्य सफल एवं सशाक्त है।

सिंह की ·····बार बार

शब्दार्थ—सिंही = सिंहनी। मेषमाता = मेंढ़े की मां। अभिशप्त = अपिशाप से भरे हुए। तप्त = दुःखपूर्ण।

अर्थ—यह सिंहनी की गोद से उसके बच्चे को छीनने वाला कौन है? उसका यह कार्य बहुत ही भयंकर है, क्योंकि जब तक उसके शरीर में प्राण हैं, तब तक वह मौन नहीं रहेगी, अपने बच्चे को छिनने नहीं देगी। रे मूर्ख? केवल मेंढ़े की माँ ही ऐसी है, जो अपनी दुर्बलता के कारण अपने छिनते हुए शिशु को अपलक आँखों से देखती रहती है और अपने पुत्र-वियोग के कारण जन्म भर अभिशाप से भरे हुए दुःखपूर्ण आंसुओं को बहाती रहती है। वास्तविकता तो यह है कि संसार में वही जीवित रहता है, जिसमें शक्ति है—Survival of the fittest, किन्तु यह कहावत पश्चिम की नहीं है जैसा कि अज्ञानतावश हम भारतवासी समझते हैं। गीता ने ही सर्वप्रथम इस कर्मयोग का प्रचार अनेक बार किया था। इसे हमको याद रखना चाहिए।

अलंकार—दृष्टांत, रूपक।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि का भारतीय संस्कृति के प्रति अथाह प्रेम अभिव्यंजित है।

पशु नहीं ·····विश्वभार।

शब्दार्थ—क्रूर = निष्ठुर। समर सरताज = युद्ध-विद्या में कुशल। कामपरता = सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति।

अर्थ—हे भारतवासी ? तुम पशु नहीं हो, वीर हो, तुम निष्ठुर नहीं, वरन् समर शूर हो। हे राजकुँवर और युद्ध-विद्या में कुशल ! आज तुम कालचक्र में दब गये हो, अन्यथा तुम तो सदैव इस प्रकार मुक्त रहे हो, जिस प्रकार मात्रा आदि के बन्धनों से मुक्त मुक्तक छन्द होता है। तुम सदा सच्चिदानन्द ब्रह्म के रूप में डूबे रहे हो। हमारे ऋषियों ने ये शब्द सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त हैं कि तुम महान् हो; सदा से महान् रहे। कायरता और सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति का भाव दीनभाव है। तुम ब्रह्म का रूप हो और यह पूरा विश्वभार तुम्हारे चरण की धूल के बराबर भी नहीं है।

विशेष—इन पंक्तियों में अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा करके मानव के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

शरण में जन जननि

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२९ में हुई थी। इसमें जननी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि जो व्यक्ति माँ की शरण में आ जाता है, वह कीचड़ से कमल बन जाता है, उसके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और वह गुणों का आगार बन जाता है।

अनगिनत ····आनन्द ध्वनि।

शब्दार्थ—सुरभि=सुगन्धि। सुमनावली=फूलों की पंक्ति। मधु ऋतु=वसन्त ऋतु। अवनि=पृथ्वी। पंक-उर=कीचड़-हृदय। पंकज=कमल। ऊर्ध्व दृग=ऊँची दृष्टि। निशि=रात। दिशि=दिशा।

अर्थ—जननी की महत्ता का प्रतिपादन करता हुआ कवि कहता है कि हे जननी ! असंख्य मनुष्य तेरी शरण में आ गये हैं जिससे सुगन्धित से भरी हुई फूलों की पंक्ति खुल गई है और पृथ्वी पर वसन्त ऋतु आ गई है। कीचड़-हृदय जननी प्रेम के कारण मधुर कमल बन गये हैं और वे ऊँची दृष्टि करके आकाश में मुक्ति रूपी मणि को देख रहे हैं। रात बीत गई है जिसे देखकर दिशा हँसने लगी है और अखिल मनुष्यों के कंठों से आनन्द की ध्वनि गूँज रही है।

कहने का भाव यह है कि जननी के प्रेम में इतनी शक्ति है कि वह मनुष्य के हृदय की तमाम कालिमा को धो देती है और मनुष्य उन्नत विचार को ग्रहण करके जीवन्मुक्त हो जाता है तथा सर्वत्र आनन्द व्याप्त हो जाता है।

पावन करो नयन

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९६० में हुई थी। इसमें दो चित्र हैं। एक चित्र रश्मि से सम्बन्धित है और दूसरा शरदेन्दु से। कवि ने रश्मि से अनुरोध किया है कि वह उच्च पदार्थों को छोड़ कर लघुतर पदार्थों में अपनी ज्योति का प्रकाश करे; और चन्द्रमा से प्रार्थना की है कि वह अपना वैभव छोड़कर दु:ख-निशि को नष्ट करे। इस कविता में कवि का अभिप्राय: यह है कि प्रकृति के सुन्दर उपमानों की सार्थकता जगत् की छोटी वस्तुओं को प्रकाशित करने में तथा जगत् के दुखः दूर करने में है।

पावन करो······नयन।

शब्दार्थ – पावन=पवित्र। रश्मि=किरण। सतत=सदैव।

अर्थ—अपने नेत्र पवित्र करो। हे किरण! नीले आकाश पर सदैव शत रूप धर कर और विश्व की शोभा में उतरकर लघुकर का चयन करो।

प्रतनु ···· शयन।

शब्दार्थ—प्रतनु=अत्यन्त क्षीण। शरदिन्दु वर=शरद कालीन श्रेष्ठ चन्द्रमा। पद्म-जल-बिन्दु=कमल-जल की बूँद।

अर्थ—कवि चन्द्रमा को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे अत्यन्त क्षीण शरद कालीन श्रेष्ठ चन्द्रमा! तुम कमल-जल की बूँद पर, सुन्दर स्वप्न और जागृति पर दु:ख-निशि का शयन न करो, अर्थात् दु:ख रूपी रात को नष्ट करो।

सन्ध्या सुन्दरी

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ में हुई थी। तब छायावाद लगभग एक वर्ष का शिशु हो चुका था। इस कविता में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है, जो छायावाद की प्रमुखतम विशेषता है। इसमें सन्ध्या को एक सुन्दरी के रूप में चित्रित दिया गया है। सन्ध्या को सुन्दरी मानना निराला की काव्य-परम्परा के विरुद्ध एक प्रबल विद्रोह है। दूसरी वात जो इसे कविता में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि इसमें संध्या की व्यापकता का अत्यन्त व्यापक भावना से वर्णन किया गया है। हिन्दी-साहित्य के प्रकृति-चित्रण में इस कविता का महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक स्थान है

दिवसावसान······धीरे ।

शब्दार्थ—दिवसावसान=दिवस का अन्त । मेघमय=बादलों से भरे हुए।

अर्थ—सन्ध्याकालीन वातावरण का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि दिवस के अन्त का अर्थात् सन्ध्याका समय था और बादलों से भरे हुए आकाश से वह सन्ध्या रूपी सुन्दरी परी के समान धीरे-धीरे उतर रही थी ।

अलंकार - उपमा, मानवीकरण ।

विशेष—शब्द-योजना के द्वारा गेयात्मक चित्रण ।

तिमिरांचल······ अभिषेक ।

शब्दार्थ—तिमिरांचल=अन्धकार का अंचल । हास-विलास=प्रसन्नता ।

अर्थ - उस संध्या सुन्दरी के अन्धकार रूपी अंचल में चंचलता का कहीं भी नाम नहीं है, अर्थात् उसका अंचल अपनी स्थिरता के कारण भयानक बना हुआ है । यद्यपि उनके दोनों होंठ मधुर हैं, किन्तु थोड़े-से गम्भीर भी हैं, क्योंकि उनमें हास-विलास अर्थात् प्रसन्नता नहीं है । उसके घुँघराले काले बाल से गुँथा हुआ केवल एक तारा हँस रहा है जो हृदय-राज्य की रानी संध्या-सुन्दरी का अभिषेक करता हुआ-सा जान पड़ता है ।

भाव यह है कि संध्या का समय है । चारों ओर अंधकार और गम्भीरता छाई हुई है । उसका गम्भीर वातावरण में केवल एक तारा ही चमक रहा है ।

अलसता······चली ।

शब्दार्थ—अलसता=आलस्य । नीरवता=खामोशी । अम्बर-पथ= आकाश-मार्ग ।

अर्थ -- वह सन्ध्या-सुन्दरी आलस्य की लता के समान है, किन्तु कोमलता की कली-सी भी लगती है । वह अपनी खामोशी रूपी सखी के कन्धे पर मुँह डालकर छाया की तरह आकाश-मार्ग से चली ।

अलंकार—उपमा, रूपक, मानवीकरण ।

नहीं बजती ······ कुछ नहीं ।

शब्दार्थ—अनुराग-राग आलाप=प्रेम-गीत का गाया जाना । अव्यक्त= मौन । व्योम-मंडल=आकाश । अमल=पवित्र । सौंदर्य गर्विता=अपने सौंदर्य का अभिमान करने वाली । वक्ष स्थल=हृदय । उत्ताल=ऊँचा । तरंगाघात= लहरों की चोट । जलधि=सागर । क्षिति=पृथ्वी । अनिल-अनल=हवा और पानी ।

अर्थ—संध्या की निस्तब्धता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसके हाथों में कोई वीणा नहीं बजती और न काई प्रेम गीत का आलाप होता है। उसके नूपुरों में भी रुमझुम का शब्द नहीं है, सिर्फ मौन रूप से एक शब्द 'चुप-चुप' सब कहीं पर बज रहा है। आकाश में, जगती तल में, शान्त सरोवर में सोती हुई पवित्र कमिलनी-समूह में, अपने सौन्दर्य का अभिमान करने वाली नदी के अति विशाल हृदय में, अटल और अंचल, धीर, वीर तथा गम्भीर पर्वत की चोटी पर, ऊँची लहरों के आघात से युक्त, प्रलयकालीन घन की-सी गर्जना करने वाले प्रबल सागर में, पृथ्वी में, हवा और आग अर्थात् पाँचों तत्वों में सिर्फ यह शब्द 'चुप, चुप' सब कहीं गूँज रहा है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अलंकार—अनुप्रास, विरोधाभास।

विशेष—संध्या की निस्तब्धता की व्यापकता का वर्णन विशाल प्रतीकों द्वारा व्यक्त होने से भावोत्कर्ष में प्रसार आ गया।

मदिरा की······एक विहाग।

शब्दार्थ—सस्नेह=प्रेम से। अंक=गोद। कमनीय=सुन्दर।

अर्थ—सन्ध्या सुन्दरी मदिरा की नदी बहाती हुई अर्थात् सबको चेतना-शून्य बनाती हुई और थके हुए जीवों को प्रेम से प्याला पिलाती हुई, उन्हें कब अपनी गोद में सुलाती हुई और विस्मृति के अगणित मीठे सपने दिखाती हुई, अर्धरात्रि की निश्चलता में डूब जाती है; अर्थात् आधी रात हो जाती है तो कवि का प्रेम बढ़ जाता है और उसके सुन्दर विरहाकुल कंठ से अपने आप विहाग राग निकल पड़ता है।

कहने का भाव यह है कि रात्रि में पृथ्वी की समस्त चेतना निस्तब्धता में बदल जाती है। सारे थके हुए प्राणी सो जाते हैं तब कवि का सुप्त प्रेम जाग उठता है और विरह के कारण उसके कंठ से कोई न कोई गीत अपने-आप फूट पड़ता है।

यामिनी जागी

कविता का परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२७ ई० में हुई थी। इसमें यामिनी का चित्र एक सद्यः जागृत नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। इस कविता का परिचय देते हुए एक आलोचक ने लिखा है—गीतों के शाश्वत विषय प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति 'गीतिका' के गीतों में सर्वाधिक

है, जिसमें लोक-गीतों की प्रकृत संवेदना और तीव्रता है। (प्रिय) यामिनी जागी शृंगार का एक निर्वैयक्तिक रूप प्रस्तुत करता है। इसमें सौन्दर्य भी चेतना मन की बाह्य और आभ्यन्तर सत्ता को ग्रहण करती है फिर भी वासनात्मक नहीं है। सौन्दर्य का वही चित्र स्पन्दित उज्ज्वल और निर्मल है। नारी का यह मानवीकृत चित्र प्रकृति के आरोपण से उभरता है और सौर ही एक अतीन्द्रियता का आभास देता है। निराला का यह भावाक्षिप्त चित्रण बेजोड़ है। सद्यः जागृत नायिका का यह चित्र है—

(प्रिय) यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग अरुण मुख
तरुण-अनुरागी ।

नायिका की छोटी से छोटी मुद्रा भी इस चित्र में छूट नहीं पायी है और गति चित्र को काव्य में उतार दिया गया है। 'खुले केश अशेष शोभा भर रहे पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर उतर रहे, से प्रतीत होता है कि नायिका ने सिर को झटकाकर बालों को बिखेर दिया है और वे पीठ, गर्दन, भुजा पर बिखर गये हैं। आँखों की ललाई, बालों से आवृत्त मुख की दीप्ति और 'लखचतुर्दिक' में नायिका की क्रियाओं की स्वाभाविकता चित्रित है और 'बादलों में घिर अपर दिनकर रहे' से काले बादलों के बीच से उद्‌भासित होते हुए सूर्य का प्रकाश ही इस गीति का केन्द्र है। प्रकृति के पक्ष में यह नैश-जागरण का प्रभातकालीन चित्र है। सौन्दर्य चित्र में वासना की मुक्ति का संदेश है। आचार्य बाजपेयी का कथन है कि इस जैसे पद मे इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्री राधा की ही अवतारण हुई है। यह भी निराला का नारी-दृष्टिकोण स्वस्थ और निर्लिप्त है। सूक्ष्म और दिव्य ऐसे निराला के चित्र एकाधिक हैं। शब्दों का ऐसा चित्र इस युग में विरल है।'

(प्रिय) यामिनी ······क्षमा मांगी।

शब्दार्थ—यामिनी=रात्रि। अलस=अलसाये हुए। पंकज-दृग=कमल नेत्र। अरुणमुख=लाल मुख। तरुण अनुरागी=युवा पुरुष से प्रेम करने वाली। अशेष=सारे। पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर-पर=पीठ, गर्दन, बाँह और हृदय पर। अपर=दूसरा। दिनकर=सूर्य। तन्वी=कृशांगी। तड़ित-द्युति=बिजली की चमक।

अर्थ—प्रिय यामिनी जाग गई है। उसके कमल-नैन अलसाए हुए हैं, मुख लाल है। वह युवा पुरुष से प्रेम करने वाली है। उसके खुले हुए केश समस्त

शोभा को धारण कर रहे हैं और पीठ गर्दन, तथा हृदय पर पड़े हुए हैं जो बादलों में घिर कर दूसरा सूर्य बन रहे हैं; अर्थात् उसका गोरा शरीर काले वालों में इस प्रकार चमक रहा है, जिस प्रकार काले-काले बादलों से प्रातःकालीन सूर्य चमका है। वह कृशांगी ज्योति का रूप है और उसके सामने विजली की ज्योति भी क्षमा माँगती हैं; अर्थात् बिजली की ज्योति भी उसकी ज्योति के सामने नगण्य है।

अलंकार—रूपक, व्यतिरेक।

हेर उर-पट............तागी।

शब्दार्थ—हेर=देखकर। उर-पट=अंचल। चतुर्दिक=चारों दिशाओं में मराल=राजहंस। गेह=घर। मुक्ता=मोती।

अर्थ— हृदय पर पड़े आँचल को देखकर, मुख पर पड़े हुए बालों को पीछे समेट कर, चारों दिशाओं में देखकर, वह राजहंस की-सी मन्द गति से चली। उसके घर में प्रियतम के प्रेम की जयमाला है। वह वासना की मुक्ति है और मोतियों के त्याग में लगी हुई है।

अलंकार—रूपक अनुप्रास।

बसन्त आया

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२८ ई० में हुई थी। यह कविता निराला की की प्रकृति-कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें वसन्त ऋतु के आगमन का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया गया है। बसंत ऋतु में सर्वत्र हरियाली ही हरियाली होती है, नये पत्ते फूटने लगते हैं, सुगन्धित मधुर बयार बहने लगती है, कमल फूल जाते हैं और अनाज की फसलें पक जाती हैं। इन सभी बातों का वर्णन कवि ने अत्यन्त काव्यमय रीति से इस कविता में किया है।

सखि बसंत........छाया।

शब्दार्थ—नवोत्कर्ष=नवीन उत्थान।

अर्थ—हे सखि! बसन्त आया, जिससे वन के मन में हर्ष भर गया है और उसके जीवन में नवीन उत्थान अर्थात् आशाएँ छा गई हैं।

किसलय-वासना.........सरसाया।

शब्दार्थ—किसलय-वसना=नवीन पत्तों के वस्त्रों वाली। नव-वय-लतिका=नई उम्र वाली बेल। मधुप-वृन्द=भौंरों का समूह।

अर्थ—कवि वसन्त ऋतु का वर्णन करता हुआ कहता है कि नवीन पत्तों के वस्त्रों वाली नई उम्र वाली बेल अपने मधुर प्रिय तरु के हृदय से मिल गई है। भौंरों का समूह कमल-पंखुड़ियों में बन्द हो गया है। कोयल का स्वर आकाश में सरसता की वर्षा कर रहा है।

लता-मुकुल.........माया।

शब्दार्थ—लता-मुकुल=लता और कलियां। गन्ध-भार=सुगन्धि का बोझा। माया=आकर्षण।

अर्थ—लता कलियां और हारसिंगार की सुगन्धित के बोझ से परिपूर्ण होकर पवन मन्दी गति से बह रहा है और आंखों में वन के यौवन का आकर्षण छा गया है, अर्थात् वन की अपार सुषुमा अनायास ही आंखों को अपनी ओर खींच लेती है।

आवृत सरसी....... लहराया।

शब्दार्थ—आवृत=घिरे हुए। सरसी=तड़ाग। सरसिज=कमल। स्वर्ग-शस्य-अंचल=सोने के समान पीली फसलों से युक्त अंचल।

अर्थ—घिरे हुए तालाब के हृदय के कमल खिल गये हैं, केशर से युक्त कली के केश बिखर गये हैं, अर्थात् कलियाँ खिल गई हैं। पृथ्वी का सोने के समान पीली फसलों से युक्त अंचल लहराने लगा है अर्थात् फसलें पक गई हैं।

शेष

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ में हुई थी। इसमें प्रकृति नश्वरता और क्षणभंगुरता के माध्यम से जीवन और जगत् की अस्थिरता का वर्णन किया गया है। इस कविता में कवि निराला का स्वर प्रमुख है।

सुमन भर...निर्दय क्या ?

शब्दार्थ—नयनोन्मादवश=आंखों के पागलपन के कारण। अलस=अलसाए। मग=रास्ता। मुकुल-व्याकुल=पुष्पों के लिए दुःखी। श्री-सुरभि=शोभा से युक्त सुगन्धि।

अर्थ—हे सखि तुमने फूलों को इकट्ठा नहीं किया और वसन्तु ऋतु बीत भी गई। वह हृदय की प्रसन्नता का हरण करने वाला बड़ा ही कठोर है। मैं

विवश होकर आँखों के पागलपन के कारण प्राकृतिक शोभा को देखकर हँसी थी और उसे देखती-देखती मैं थक गई थी। मेरे पगों में आलस्य भर गया था और मैं अपने मार्ग में ठगी सी रह गयी थी अर्थात् उस प्राकृतिक शोभा में इतनी उलझ गई थी कि आगे चल ही न सकी थी। पुष्पों के लिए दुःखी और शोभा से युक्त सुगन्धि जाते-जाते मुझ से यह कह गई थी कि हे सखि ! वसन्त ऋतु तो बीत गई, पर तुमने फूल इकट्ठे नहीं किये। वह हृदय की प्रसन्नता का हरण करने वाला बड़ा ही कठोर है।

याद थी……निर्दय क्या

शब्दार्थ—क्लान्त=थका हुआ। पद्म-मन=कमल-मन। अप्रसन्न=दुःखी

अर्थ - हे सखि ! मुझे एक दिन की घटना अचानक ही याद आ गई, जब वायु शान्त थी और आकाश थका हुआ सा प्रकृती हो रहा था। सूर्य का मुख मलीन होकर झुका हुआ था और कमल-मन-पर दुःख की किरणें बढ़ रही थीं, समूचा वन दुःखी था। मैं उस शोभा को खड़ी हुई देखती रही। वे मेरे साथ थे और मेरा हाथ, अपने हाथ में लेकर कह रहे थे कि एक दिन वह भी होगा कि जब मैं इस भूतल पर नही रहूँगा। उसकी इस बात ने मेरी सारी प्रसन्नता को तिरोहित कर दिया। हर्ष को हरण करने वाला वह हृदय बहुत ही कठोर था।

नवल खुलीं

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२६ में हुई थी। इस कविता में सौन्दर्य का एक परिष्कृत और उदात्त चित्र का चित्रण है। रूप से सुधा ग्रहण करके नयन उसी प्रकार खिल गये हैं जिस प्रकार चन्द्रमा की चांदनी से कलियाँ खिल उठती हैं। इस कविता में कवि का स्वर जागरण और आशा का है।

दृगों की कलियां……. और तुलीं।

शब्दार्थ—नवल=नई। रूप-इन्दु=सौन्दर्य चन्द्रमा। सुधा-बिन्दु=अमृत की बूँद। लह=ग्रहण कर लेकर। तुलीं=विकसित हो गई हैं।

अर्थ—आँखों की नई कलियाँ खिल गई हैं। सौन्दर्य के चन्द्रमा से अमृत की बूँद लेकर ये और भी अधिक रह-रह कर विकसित हो गई हैं।

प्रणय श्वास ·······जलीं।

शब्दार्थ—प्रणय-श्वास=प्रेम का सांस। मलय-स्पर्श=शीतल वायु का स्पर्श। चपल=चंचल। ज्योति-तप्त-मुख=प्रकाश से जलता हुआ मुख। तरुण=नवीन।

अर्थ - प्रेम के सांस रूपी शीतल वायु के स्पर्श से आनंदित होकर ये रह-रहकर चंचलता के साथ हँसती हैं। प्रकाश से जलते हुए मुख वाले नवीन वर्ष के हाथों से ये मिलती और चलती हैं।

नन्हा स्नेह ·····अमल धुली।

शब्दार्थ—स्नेह=प्रेम सरस=आनन्द से परिपूर्ण। श्वेत-वसन=सफेद वस्त्र। सलाज=लज्जा सहित। अलख—अलक्ष्य। अमल निमल।

अर्थ—ये दृग-कलियाँ प्रेम के आनन्द से परिपूर्ण सरोवर में स्नान करके और सफेद वस्त्र धारण करके लज्जा-सहित अपने घर लौटी हैं। ये अलक्ष्य सखा के ध्यान के लक्ष्य पर डूब गई हैं, अर्थात् उसके ध्यान में निमग्न हो गई हैं। ध्यान में डूबने के कारण ये धूलकर निर्मल बन गई हैं।

प्रभाती

कविता परिचय—इस गीत की रचना सन् १९२४ ई० में हुई थी। हिन्दी साहित्य के उद्बोधन-गीतों में इस गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। एक आलोचक के शब्दों में—प्रभाती में प्रातः से जागृति की प्रेरणा दी गई है। कविता में वासना के तीव्र आवेग के पश्चात् नव किरणों से तिमिर जाल हटाने का उद्-बोधन लिया गया है। वासना-प्रेयसी भी यहां जीवन के उपवन में बहार की सूचना देती है। ज्योति-सुरभि की धाराएँ बहती हैं और चतुर्दिक कर्मलीनता की स्थिति है, अतः नवोदित सूर्य के साथ तरुण तरंगों की की जागृति की प्रभाती के रूप में कल्पित किया जाता है।

प्रिय मुद्रित·········हो लो।

शब्दार्थ—मुद्रित=बन्द। स्वप्न-निशा=स्वप्नों की रात। तिमिर-जाल= अन्धकार का समूह। जीवन-प्रसून=जीवन पुष्प। वृन्तहीन=डंठल-रहित। ज्योति-सुरभि=प्रकाश की सुगन्धि। चतुर्दिक=चारों ओर। तरंग=लहर। नव-अरुण=नवीन सूर्य, प्रातःकालीन सूर्य।

अर्थ—हे प्रिय! तुम अपनी बन्द आंखों को खोल लो। स्वप्नों की रात

के द्वारा फैलाया गया अन्धकार का समूह नष्ट हो गया है। अतः तुम अपना मुख नवीन किरणों से धो लो, अर्थात् नवीन किरणों में प्रेरणा लेकर नवीन ज्ञान का प्रकाश ग्रहण करो।

वह जीवन पुष्प, जो डंठल-रहित (आधार शून्य) था, नव जीवन लेकर उषा के साथ आकाश में खिल गया है। कर्म लीन धाराएँ प्रकाश की सुगन्धि अपने हृदय में भरकर चारों ओर बहने लगी हैं। तुम तो अपनी नवीन लहरों को खोलकर प्रातःकालीन सूर्य के साथ लग जाओ, अर्थात् जिस प्रकार प्रातः-कालीन सूर्य से अनेक आशाएँ तथा उमंगें निहित रहती हैं, उसी प्रकार तुम भी अपने जीवन में नवीन आशा तथा उमंग लेकर अपने कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ो।

वासना-प्रेयसि····· तो लो ।

शब्दार्थ —वासना-प्रेयसि=वासना रूपी प्रेमिका। श्रुति-मधुर=जो कानों को प्रिय लगे।

अर्थ —वासना रूपी प्रेमिका बार-बार कर्णप्रिय तथा मन्दे स्वरों में पुकार-पुकार कर कह रही है कि हे प्रिये ! प्रतिदिन के उपवन के जीवन में बहार आई हुई है, जिसमें विमल वायु बह रही है, अतः उस वायु के साथ बहने के लिए पहले अपने में बल उत्पन्न कर लो।

तोड़ती पत्थर

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३५ में हुई थी। निराला की यह कविता केवल निराला-साहित्य में ही नहीं, वरन् हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी धारा में विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस कविता में प्रस्तुत 'इलाहाबाद के पथ पर' पत्थर तोड़ने वाली का चित्र उतना ही उदात्त है जितना 'परिमल' की विधवा, लेकिन वहाँ यह व्यंग्य और तीव्र सर-सन्धान नहीं है जो 'तोड़ती पत्थर' में है। साधारण और दलित वर्गों के प्रति जो सहानुभूति इन कविताओं में व्यक्त हुई है, वही प्रगतिवादी धारा का केन्द्र बनी है। पूँजीवादी सभ्यता का चित्र जो है, वह तत्कालीन साहित्य में अकेला है। साहित्य में मार्क्सवादी भौतिकवाद का अभी नाम ही सुना जा रहा था। श्रमिक और सर्वहारा अभी आकर्षण के विषय ही थे, निराला ने काव्य में श्रमिकों का यह आख्यान दिया। पूँजीपतियों पर यह 'हथौड़े का प्रहार हुआ।' वस्तुतः यह कविता में कवि की शोषितों के प्रति निखिल सहानुभूति उबल पड़ी है।

वह तोड़ती ⋯ पत्थर ।

शब्दार्थ—प्रिय-कर्म-रत=प्रिय को प्रसन्न करने वाले कामों में लगा । गुरु=भारी । तरु-मालिका=वृक्षों का समूह । प्राकार=ऊँचे-ऊँचे भवन ।

अर्थ—एक मजदूरिनी की अवस्था का वर्णन करते हुए निराला जी कहते हैं कि वह पत्थर तोड़ रही थी और मैंने उसे पत्थर तोड़ते हुए इलाहाबाद के पथ पर देखा । वहां पर कोई भी छायादार पेड़ नहीं था जिसके नीचे बैठ कर वह अपनी गर्मी को दूर कर लेती । उसका शरीर कृष्ण-वर्ण का था. उसका यौवन पूर्ण और संगठित था, आँखें झुकी हुई थीं और उसका मन प्रिय को प्रसन्न करने वाले कार्यों में लगा हुआ था । उसके हाथ में भारी हथौड़ा था जिससे वह बार-बार चोट लगाती थी । उसके सामने वृक्षों के समूह, अट्टालिकाएँ और ऊँचे-ऊँचे महल थे ।

विशेष—'सामने तरु-मालिका, अट्टालिका प्राकार' इस पंक्ति में पूँजीवादी की वैभवशालीनता का संकेत मिलता है, जिससे उस मजदूरिनी की दीन अवस्था और भी अधिक निखर आती है ।

चढ़ रही ⋯⋯ तोड़ती पत्थर ।

शब्दार्थ—दिवा=सूर्य । भू=पृथ्वी । चिनगी=चिनगारी ।

अर्थ—धूप पड़ रही थी, गर्मियों के दिन थे, सूर्य अपने जलते हुए रूप में प्रकट हो रहा था । झुलसाती हुई लू चल रही थी जिससे रूई के समान पृथ्वी जल रही थी और उसकी दर्द रूपी चिनगारी चारों ओर छा रही थी । उसे पत्थर तोड़ते-तोड़ते लगभग दोपहर गई थी ।

अलंकार—उपमा, रूपक ।

देखते देखा ⋯ तोड़ती पत्थर ।

शब्दार्थ—छिन्न=बिखरा हुआ । सुघर=कुशल । सीकर=पसीने ।

अर्थ—मैं उसकी ओर देख रहा था । देखने को उसने देख लिया । एक बार उसने मुझे देखा, एक बार उस भवन की ओर एक बार छिन्न तार हुए अपने वस्त्रों की ओर देखा । यह देखकर कि कोई और वहाँ नहीं है, मुझे उसने इस प्रकार की कातर दृष्टि से देखा जैसे कोई मार खाने पर भी न रोये । उस समय उसकी दृष्टि में जो कातरता होती है, वैसी ही कातरता उसकी दृष्टि में भी थी । मैंने सजे हुए सितार पर भी वैसी मर्मान्तक झंकार कभी

नहीं सुनी, जैसी झंकार उसकी कातर दृष्टि मुझे सुना गई थी। एक क्षण के बाद अपने कार्य में कुशल वह मजदूरिनी कांप उठी। उसके माथे से पसीने की बूँदें ढुलक कर नीचे गिर गईं, मानो उन पसीनों के माध्यम से उसने अपने काम में लीन होते हुए ये शब्द कह दिये थे कि मैं पत्थर तोड़ रही हूँ।

अलंकार—उदाहरण, उत्प्रेक्षा, उपमा।

विशेष—'जो मार खा रोई नहीं' इस शब्द-समूह में मजदूरिनी का दीन चित्र सजीव हो उठा है।

दे मैं करूं वरण

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३२ ई० में हुई थी। इस कविता में कवि ने माँ से यह प्रार्थना की है कि वह उसे ऐसा वरदान दे कि वह कायरता को अपने जीवन से निकाल सके, दोषारोपण का स्वभाव छोड़ दे और मृत्यु का धीरता तथा वीरता से सामना करे।

दे मैं····· अनुसरण।

शब्दार्थ—पद-राग-रंजित=पद जो लाली से रचा दिए हैं। भीरुता=कायरता। छिन्न हों=टूट जायें। दिवस-निशि-रात दिन। अनुसरण=पालन।

अर्थ—हे जननि! मुझे यह वरदान दो कि मैं सहर्ष दुखों को सहने वाले तथा लाली से रचाये हुए तुम्हारे चरणों की कृपा से मृत्यु का वरण कर लूँ हे जननि! कायरता के जितने भी पाप मेरे जीवन में हैं, वे सब नष्ट हो जायें और मैं दिन-रात आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँ।

लांछना·····समुपकरण।

शब्दार्थ—अनल=आग। अविरल=लगातार। पारकर=त्याग कर।

अर्थ—हे जननि! दोषारोपण का ईंधन हृदय में आग की भाँति जल जाये, अर्थात् मुझ में किसी पर भी किसी प्रकार का दोष लगाने की आदत न हो। मैं शक्ति के साथ तेरी भक्ति से नत हुये नयनों से अपने पथ पर जीवन के लोभ के सारे पदार्थों को त्याग कर चलता रहूँ।

अलंकार—रूपक।

प्राण-संघात·····करूँगा तरण।

शब्दार्थ—प्राण-संघात=मृत्यु। सिंधु=सागर। तीर=किनारा। तरंग=लहर। समीरण=वायु।

अर्थ—हे जनिन मैं मृत्यु के सागर के किनारे पर बैठा हुआ यह नहीं गिनता रहूँगा कि उसमें कितनी लहरें हैं, अर्थात् मैं मृत्यु से डरकर उसके दिन नहीं गिनूँगा, बल्कि मैं तो धैर्य के साथ वायु की भाँति उसे पार कर जाऊँगा।

अलंकार—उपमा।

मातृ वन्दना

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२० ई० में हुई थी। उस समय समूचे देश में स्वतन्त्रता के लिये भीषण संघर्ष चल रहा था। उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में यदि इस कविता को परखा जाये तो कवि का मातृ-प्रेम तथा निर्भीकता विचारणीय है।

नर-जीवन ... सब फल।

शब्दार्थ—सकल=समस्त। श्रम-संचित=परिश्रम से इकट्ठे किये हुए।

अर्थ—हे मां! तेरे चरणों पर नव-जीवन के समस्त स्वार्थ बलि हो जायें और मेरे भी परिश्रम से इकट्ठे किए हुये सब फल तेरे ही चरणों पर न्यौछावर हो जायें।

जीवन के रथ .....फल।

शब्दार्थ—महाकाल=यमराज। खर=तीक्ष्ण। शर=बाण। अश्रु-जल धौत=आंसुओं से धोकर स्वच्छ की हुई।

अर्थ—हे जनिन! मैं जीवन के रथ पर चढ़कर और अनवरत गति से मृत्यु के पथ पर बढ़कर यमराज के भी तीक्ष्ण वाण को सह सकूँ, इसलिए तू मुझे दृढ़ से दृढ़तर बना। मेरे हृदय में तेरी आँसुओं से धोकर स्वच्छ की हुई विमल मूर्ति बसी रहे। मुझे वह शक्ति दे कि मैं कल से बल पाकर अपने जन्म में मेहनत से संचित किये हुए सारे फलों को तेरे चरणों में न्यौछार कर दूँ।

बाधाएँ आएँ फल।

शब्दार्थ—नयन-निर्भर=आँखें भर-भर कर। शतदल=कमल। क्लेद-युक्त पसीने से भीगा हुआ। श्रेय=महत्ता।

अर्थ—हे जनिन! यदि मेरे शरीर पर बाधाएँ आयें तो मैं आँखें भर कर तेरी ओर देखूँ, अर्थात् दुःख में मुझे केवल तुम्हारा ही सहारा हो।

तू मुझे अपनी सजल आँखों से अपलक देखकर अपने हृदय के कमल पर आश्रय दे। मैं तेरे हित के लिए अपना पसीने में भीगा हुआ शरीर अर्पित कर दूंगा और निश्चय ही तुझे परतन्त्रता के वन्धनों से मुक्त करके अपनी समस्त महत्ता के परिश्रम से संचित फल को तेरे चरणों पर न्यौछावर कर दूंगा।

जागा दिशा ज्ञान

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १६२६ ई० में हुई थी। इस कविता में कवि ने भारतीय जागरण तथा उसकी सफलता का वर्णन वड़े ही काव्यमय ढंग से किया है। प्रकृति के माध्यम से व्यक्त यह वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है।

जागा दिशा·····मुस्कान।

शब्दार्थ—दिशा-ज्ञान=पदार्थों का सत्य बोध। पूर्व का=पूर्व दिशा का, पूर्व भारत का। नव-यान=नवीन रथ, नवीन संदेश-वाहक। तम=अन्धकार। फुल्ल=प्रफुल्ल, प्रसन्न।

अर्थ—राष्ट्रीय जागरण की ओर संकेत करता हुआ कवि कहता है कि अव हमें पदार्थों का सत्य-बोध हो गया है। नवीन रथ के रूप में पूर्व दिशा में ज्ञान का सूर्य उग आया है, अथवा पूर्व दिशा में स्थित भारत देश नवीन संदेश वाहक के रूप में जाग चुका है। जो पलक अंधकार में बंद हो गये थे, वे खुल गये हैं जो भारतवासी दासता के बन्धन में बँधकर अकर्मण्य वन गये थे, वे सोत्साह अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होने लगे हैं। आहत चेतना अव चंचल (कर्मशील) दिखाई देने लगी है और सबके अधरों पर प्रेम से प्रफुल्ल होकर मुस्कान उमड़ आई है।

किरण-दृक्-पात·····प्राण।

शब्दार्थ - किरण-दृक्-पात=किरण रूपी दृष्टि से देखना। आरक्त=लाल। द्रुम=वृक्ष। कमल-कलि-पवन=कमल कलि पवन के द्वारा। जल-स्पर्श चल=जल के स्पर्श से चंचल।

अर्थ—किरण रूपी दृष्टियों के देखने से सारे किसलय लाल हो गए हैं, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से किसलयों को नवीन जीवन मिलता है, उसी प्रकार जागरण के आन्दोलन से भारत के बच्चों के हृदय में भी उत्साह भर गया है। पेड़—युवा भी शक्ति सम्पन्न बन गये हैं। कमल कलि पवन के द्वारा

जल के स्पर्श से चंचल हो गए हैं, अर्थात् जो व्यक्ति देश प्रेम से शून्य थे, उन्हें भी स्वतन्त्रता-संघर्ष ने गतिमान बना दिया है। भावों के पथ में सैंकड़ों प्राण लगातार बहने लगे, अर्थात् स्वतन्त्रता वेदी पर असंख्य युवक अपनी वलि देने लगे।

हारे हुए……विजय गान।

शब्दार्थ—दैन्य=दीनता। मल=दूषित भाव।

अर्थ—हारे हुए, दासता की बेड़ियों में जकड़े हुए व्यक्तियों के मन जो दीनता के दूषित भाव थे वे सब नष्ट हो गए। विजयी व्यक्ति परस्पर मिलने लगे। विजय का वह गीत, जो अभी तक मौन था, विश्व में गूँज उठा अर्थात् भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की विजय का उद्घोष समूचे संसार में होने लगा।

अस्ताचल रवि

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३२ में हुई थी। इस कविता में प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन है। इस प्रकार की कविताएँ निराला ने बहुत कम लिखी हैं, अधिकांश में उन्होंने प्रकृति का माध्यम अपने इतर भावों को व्यक्त करने के लिए ही ग्रहण किया है।

अस्ताचल ….पुरातन।

शब्दार्थ—अस्ताचल रवि=छिपता हुआ सूर्य। स्तब्ध=मौन। उन्मन=अनमना। परिमल=सुगंधि। पुरातन=पुरानी।

अर्थ—सूर्य छिपने वाला है। उसकी छलकती हुई शोभा जल में दिखाई दे रही है। विश्व कवि मौन है, सृष्टि का जीवन अनमना हो गया। मन्द-मन्द वहती हुई पवन स्मरण कर-करके सुगन्धि की पुरानी कथा को कह रही है।

अलंकार—छेकानुप्रास।

दूर नदी ……नूतन।

शब्दार्थ—प्रतनु=क्षीण। गेह=घर। नूतन=नवीन।

अर्थ—दूर नदी पर एक सुन्दर नौका स्वर के समान मृदुतर गति से तिरती हुई दिखाई दे रही है। वहाँ प्रेम की, क्षीण काया वाली एवं नूतन सूर्य-छवि बिना घर के बैठी हुई है।

अलंकार—उपमा अलंकार।

विशेष—स्वर-गति के साथ नौका की मृदुतर गति को उपमित करना केवल नवीन ही नहीं, बल्कि अत्यन्त भावपूर्ण प्रयोग है।

ऊपर शोभित..... कर अर्पण।

शब्दार्थ—छत्र=छाया। सित=सफेद। अमित=अपार। डोलित=डोलायमान।

अर्थ—पृथ्वी के ऊपर मेघों का सफेद छाता शोभायमान है और नीचे अपार नीला जल डोलायमान है। प्राण, नयन, मन और चिन्तनीय प्राणधन ये सब सूर्य ने अपनी किरणों को समेट कर दिये हैं।

अलंकार—अनुप्रास।

प्रातः तव द्वार पर

कविता परिचय—इस कविता की की रचना सन् १९३२ ई० में हुई थी। इस कविता में कवि का अपना मातृ-प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

प्रातः तव ......द्वार पर।

शब्दार्थ—तव=तेरे। नैश=रात्रि का। उपल=पत्थर। उत्पल=कमल कण्टक=काँटे। अवदात=सुन्दर। अवसन्न=दुखी।

अर्थ—हे जननि! मैं प्रातःकाल तेरे द्वार पर रात्रि के अन्धकार से पूर्ण पथ को पार करके आया। मार्ग में जो पत्थर मेरे पैरों में लगे थे, वे मुझे कमलों के समान प्रतीत हुए जो कांटे लगे, वे सुन्दर जागरण की भाँति जान पड़े। मैं रात भर उस पथ को पार करता रहा, किन्तु मुझे यह बराबर याद बना रहा कि मैं तुम्हारा वरदान प्राप्त करके दुःखी भी हूं और प्रपन्न भी हूँ। हे जननि! मैं प्रातःकाल तेरे द्वार पर आया।

समझ क्या ......द्वार पर।

शब्दार्थ—भीरु=डरपोक। मलिन-मन=दुष्ट मन वाले। निशाचर=राक्षस। तेज-हत=निस्तेज। वन्य=वन के।

अर्थ—हे जननि! वे राक्षस तुम्हारी महत्ता को क्या समझ सकते हैं जो कायर हैं, दुष्ट मन वाले हैं और वन के निवासी हैं। हे माता! हमारे जीवन का वह भाग्य कहां जो प्रातःकालीन सुषमा-धन को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़े और अमर चरणों को ग्रहण करे।

हिन्दी के सुमनों की प्रति

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३७ में हुई थी। इस

कविता में कवि ने अपने उपेक्षित जीवन की आर्थिक चर्चा करते हुई हिन्दी के भावी कवियों को हिन्दी-संसार की कटुता से परिचित किया है।

में जीर्ण-साज·········महाराज ।

शब्दार्थ—जीर्ण-साज=छिन्न शोभा। बहु-छिद्र=अनेक दोप। सुदल=अच्छे पंखुड़ियों वाले। सुरंग=अच्छे रंग वाले। सुवास=सुगन्धि। पद-तल-आसन=आसन के नीचे गिरा हुआ।

अर्थ—कवि हिन्दी के नवीन कवियों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि मैं तो अव छिन्न शोभा वाला तथा अनेक दोषों से पूर्ण बन गया हूं, किन्तु तुम अभी तो वह सुमन हो जिसकी सुन्दर पंखुड़ियाँ हैं, सुन्दर रंग हैं, और जिनमें सुगंधि है। मैं तो केवल वह व्यक्ति हूं जो आसन के नीचे गिरा हुआ है, अर्थात् मुझे तो उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं हो सका है किन्तु हे महाराज ! तुम उस सिंहासन पर आसानी से सुशोभित हो गए हो।

अलंकार—अनुप्रास।

विशेन—'महाराज' शब्द का प्रयोग व्यंग्य प्रधान है।

ईर्ष्या कुछ·····पार्श्वच्छवि ।

शब्दार्थ—पार्श्वच्छवि=पीछे की शोभा, उपेक्षित व्यक्ति।

अर्थ—यद्यपि मैं ही हिन्दी-संसार में वसन्त लाने वाला अग्रदूत हूँ और इस संसार में उसी प्रकार उपेक्षित रहा हूँ, जिस प्रकार ब्राह्मण-समाज में अछूत तथापि मुझे आप लोगों से ईर्ष्या नहीं है। यदि आज मैं पीछे की शोभा—उपेक्षित-व्यक्ति बना हुआ हूं तो—

तुम मध्य·········रंग राग ।

शब्दार्थ—महाभाग=सौभाग्यशाली। प्रशस्त=विस्तृत। न्यस्तः=फेंका हुआ। अलि=भौंरा।

अर्थ—हे सौभाग्यशाली ! तुम मध्य भाग की शोभा हो, तुम वृक्ष के हृदय के विस्तृत गौरव हो। मैं उस पत्र की भाँति हूं जिसे पढ़कर फेंक दिया गया है और तुम भौंरे के लिए नवीन रस, रंग और राग प्रदान करने वाले हो।

अलंकार—उपमा।

देखो, पर ······ सम्बल ।

शब्दार्थ—अन्तर=हृदय। सम्बल=सहारा।

अर्थ—किन्तु यह तो भविष्य ही बतलायेगा कि तुम्हें इसका क्या फल मिलेगा जो भिन्न तथा स्वाद से भरा हुआ रस देगा, अर्थात् तुम किस प्रकार की कृतियों की रचना करोगे, यह तो भविष्य के ही गर्भ में निहित है जब तुम्हारा हृदय पार करके वह रस निकलेगा और जब वह तरु का—पूर्ववर्ती कवियों का—सहारा बनेगा ।

फल सर्वश्रेष्ठ······· एक बीज ।

शब्दार्थ—नायाब=अप्राप्य । उर=हृदय । कटु=कडुवापन । एक बीज=जो अभी पल्लवित नहीं हुआ है ।

अर्थ—सर्वश्रेष्ठ फल आसानी से प्राप्त नहीं हुआ करता, वह तो अप्राप्य चीज होती हैं । तुम अपने परिश्रम से अप्राप्य फल को प्राप्त करोगे अथवा रँगा हुआ धागा ही बांधकर रह जाओगे, अर्थात् कुछ शृंगारिक कविताओं का प्रणयन करके ही इति-श्री कर दोगे ? फल के हृदय में भी कडुवापन होता है, या उसको त्याग दोगे । मेरा आलोचक तो अभी एक बीज के रूप में है, जिसका पल्लवन अभी भविष्य से गर्भ में निहित है ।

वन्दूँ पद सुन्दर तव

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२३ में हुई थी । इस कविता में कवि जन्मभूमि-वन्दना का उदात्त रूप प्रस्तुत करता है । शत-शत वर्षों के अन्तराल से भी परतन्त्रता का यथावत् रहना कवि की पीड़ा-अनुभूति का कारण बनती है । जब तक मातृभूमि को स्वतन्त्रता नहीं मिलती, तब तक जीवन का कोई लाभ नहीं ।

वन्दूँ पद······· पिक रव ।

शब्दार्थ—वन्दूँ=वन्दना करता हूं । नवल=नवीन । नव-अम्बर=नवीन आकाश । स्वरोर्मियाँ=स्वर की लहरें । मुखर-दिक्कुमारिका-पिक-रव= दिशाओं की कुमारी कोयल बोलने लगीं ।

अर्थ—कवि मातृवन्दना करता हुआ करता है कि हे जननि ! में तेरे सुन्दर चरणों की वन्दना करता हूँ और इस वन्दना से अनेक छन्द तथा नवीन स्वरों का गौरव बढ़ाता हूं ।

जननी को जनक, जननी और जन्मभूमि कहा गया है । तुम नवीन आकाश में ज्योति भर कर जागो । स्वर की लहरियाँ उठें और दिशाओं की कुमारी

कोयल बोलने लगे।

दृग-दृग को........सचराचर भव !

शब्दार्थ—रंजित,कर=प्रसन्न करके। पंचवाण=कामदेव। भव=संसार सचराचर=चल और अचल पदार्थ।

अर्थ—हे जननि ! हर आंख को प्रसन्न करके उसमें अंजन भर दो, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को नवीन ज्योति प्रदान करो। प्राणों में बसा हुआ कामदेव भी समाप्त हो जाये। आँख-आँख की बँधी हुई सुन्दर शोभा संसार के चल और अचल सभी पदार्थों को बाँध ले।

भर देते हो

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ में हुई थी। इसमें रहस्य सत्ता की कृपा का गुण-गान किया है। विक्षुब्ध हृदय में करुणा की किरण प्रसारित कर कवि उसे पुलकित करता है। कविता में आध्यात्मिक छाया भी स्पष्ट है।

भर देते.......कर देते हो।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=दुःखी। पुलकित=प्रसन्न।

अर्थ—हे प्रिय ! तुम बार-बार मेरे दुःखी हृदय को अपनी करुणा की किरणों से भर कर प्रसन्न बना देते हो।

रे अन्तर .... भर देते हो।

शब्दार्थ—अन्तर=हृदय। कर-कंज=कर कमल। सिक्त=गीला। धरा =पृथ्वी। लोल=चंचल।

अर्थ—हे देव ! तुम निरन्तर मेरे हृदय में आकर और बार-बार अपने कर-कमलों का सहारा देकर मेरे दुःख के बोझ को हलका कर जाते हो। अंधेरे मे मेरा रोदन पृथ्वी के अंचल को प्रत्येक क्षण गीला करता रहता है और फूलों के कपोलों पर शिशर ऋतु की ओस के चंचल कण चमकते रहते हैं। तुम अपनी किरणों से उनके आँसुओं को पोंछ लेते हो। सूर्य निकलने पर ओस समाप्त हो जाती है—और जीवन में नया प्रभात भर देते हो।

जागो जीवन धनिके

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३१ में हुई थी। इस कविता में कवि ने अपना यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि आर्थिक उन्नति देश

की प्रगति का प्रमुख आधार है। इस कविता में कवि का राष्ट्रीयतापूर्ण हृदय विश्व में बन्धुत्व के भावों की स्थापना पर बल देता है, आधुनिक भारतीयों की दशा का चित्रण करता है। कवि भारतीय वाणिज्य को विश में सर्वत्र प्रसारित हो जाने में ही देश की पूर्ण उन्नतिशील मानता है।

जागो .... दिम मणि के।

शब्दार्थ — जीवन-धनिक=जीवन-धनपति । विश्व-पण्य-प्रिय=विश्व-बाजार के प्रिय। दल=पंखुड़ियाँ। उषा-पटल=उषा का द्वार, जागरण का मार्ग। छविमयि=सुन्दर।

अर्थ—हे जीवन के धनपति और विश्व के बाजार के प्रिय, जागो। भारत में इस समय केवल अन्धकार है और वह दुःख के भार से दबा हुआ है। वीरता रूपी सूर्य की सारी पंखुड़ियाँ ढँक गई हैं, अर्थात् भारतवासी कायर बन गये हैं हे सुन्दर दिनमणिक! तुम अपने ही हाथों से नवीन जागरण का मार्ग खोलो।

गहकर .... खनि के।

शब्दार्थ —अकल=असुन्दर। कलि=कूँची । जीवनोपाय=जीवन के साधन। भारति=सरस्वती। ज्ञान-विपनि-खानि=अपार ज्ञान।

अर्थ—हे वणिक! भारत में जितनी भी असुन्दरता है, उसे कूँची से रँग-रँग कर सुन्दरता में बदल दो और प्रत्येक घर में जीवन के अनेक साधनों को भर दो; अर्थात् समाज को इतना धनाढ्य बना दो कि प्रत्येक व्यक्ति सरलता से अपना जीवन व्यतीत कर सके। हे सरस्वती ! भारत को फिर से अपार ज्ञान का वर दो।

कहने का भाव यह है कि किसी भी देश की सम्पूर्ण प्रगति धन और ज्ञान के समन्वय में निहित है।

दिवस-मास .... कणि के!

शब्दार्थ—अपने=सूर्य की गति का समय। अयुत=असम्वद्ध। लव=समय का एक अंश।

अर्थ—दिवस, मास, ऋतु, अयन और वर्ष तथा असम्वद्ध वर्ण, युग-योग, लव-निमेष, कणिका ये सब तुम अन्य को छोड़कर बहते हैं, अर्थात् प्रकृति का सौर्न्य और समय की गति तुम पर निर्भर है।

गर्जन से भर दो वन

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३५ ई० में हुई थी।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के केवल कोमल रूप को ही नहीं अपनाया, वरन् उसके प्रलयंकारी रूप में उन्होंने नवीन सृष्टि के निर्माण का दर्शन किया है। प्रस्तुत कविता में कवि इसलिए बादल से भयंकर गर्जना की प्रार्थना करता है, ताकि प्रत्येक पत्ता नवीन जीवन लेकर फूल उठे।

धन, गर्जन .... कानन !

शब्दार्थ—पादप=वृक्ष। छवि-निर्भर=शोभा पर निर्भर रहने वाली। मधु-ऋतु कानन=वसन्त ऋतु की शोभा से भरा हुआ वन।

अर्थ—हे घन ! तुम वन को, तरु और प्रत्येक वृक्ष के शरीर को अपनी गर्जन से भर दो। अब तक भौंरे के प्रत्येक गुंजन पर शोभा पर, निर्भर रहने वाली कलियां नाची हैं और भौंरों ने मधु को पीकर बसन्त ऋतु की शोभा से भरे हुए वन को स्थिर माना है।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश।

गरजो .... जीवन।

शब्दार्थ—मन्द्र=गम्भीर। वज्र-स्वर=कठोर स्वर। भूधर=पर्वत। पल्लव=पत्ता।

अर्थ—हे गम्भीर और कठोर स्वर वाले बादल ! तुम इतनी प्रबलता से गरजो कि तुम्हारी गरज को सुनकर प्रत्येक पर्वत थर्रा उठे, झर-झर करके पानी की धारा वह चले और प्रत्येक पत्ते में नवीन जीवन दिखाई देने लगे।

अलंकार—पुनरुक्ति प्रकाश।

स्वागत

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ ई० हुई थी। इसमें कवि ने उस नवीन जागरण का किया है। अनेक भयावह पथों को पार करके नवीन जीवन की प्रेरणा लाया है।

कितने ही .... हे नूतन।

शब्दार्थ—जटिल=कठिन। अगम=अगम्य, जिस पर गमन न किया जा सके। विकराल=भयंकर। कर्दम=कीचड़। शूल=काँटे। कन्दर=गुफा। पशु-संकुल=पशुओं से भरा हुआ। अकूल—किनाराहीन, असीम।

अर्थ—नवीन जागरण का स्वागत करता हुआ कवि कहता है कि हे नूतन ! तुम कितने ही कठिन अगम्य, विस्तृत और भयंकर उन पथों को भय तथा श्रम से पार करके आये हो जिनमें काँटे, कीचड़, तीखे काँटे, राक्षस, पहाड़ गुफा थीं और जो हिंसक पशुओं से भरे हुए थे, तथा जो बादलों के द्वारा अन्धकार से पूर्ण, अगम्य और असीम थे।

सार्थक जीवन ....ग्रीष्म-प्रबल।

शब्दार्थ—वज्र-बादल=बिजली गिराने वाले बादल। उपल-वृष्टि= ओलों की वर्षा।

अर्थ—तुम अपने साथ सार्थक जीवन लेकर आये हो, भाई के समान हित-कारी मेहनत के कण लाये हो और सफल होने वाला श्रम लाये हों। तुम्हारे सिर पर कितने ही बिजली गिराने वाले बादल गरजे, कितनी ही ओलों की वर्षा हुई, कितने ही घोर शीत को तुमने सहन किया और कितनी ही प्रबल ग्रीष्म ऋतु का तुमने ताप सहा। इतनी अधिक कठिनाइयों का सामना करके तुम आये हो।

साधक ....भर लाये।

शब्दार्थ—साधक=साधना करने वाले। निश्चल=अचल। सचल= चलने वाले।

अर्थ—हे साधक ! तुम अपने मन में अचल रहने वाले हो, किन्तु अपने पथ पर सदैव चलते रहते हो। तुम प्रतीक्षा की भांति अचल और अटल हो। हे प्रिय दर्शन ! तुम्हारा स्वागत है, क्योंकि तुम अपना अत्यन्त भयंकर पथ पार करके आये हो और हमारे लिए नवीन जीवन की प्रेरणा लाये हो।

जागृति में सुप्ति थी

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ में हुई थी। 'जुही की कली' कविता के विपरीत इसमें नागरी नायिका का चित्रण हुआ है। वातावरण भी प्रभात का है, जन-जागरण अरुणो किरणों का है, किन्तु इस जागरण में आनन्द की अपेक्षा दुःख का तत्व प्रमुख है।

जड़ नयनों में ....सरोवर में।

शब्दार्थ—विहग-से=पक्षी की तरह। सुरा=मादक।

अर्थ—नयनों में स्वप्न बसाये हुए और पक्षी की तरह अपने बहुरंगी पंखों को खोलकर मादक स्वर प्रिया के अधरों में इस प्रकार सो गया था जिस प्रकार शान्त सरोवर में कोई मौन लहर निश्चल हो गई हो।

अलंकार—उपमा।

लाज से ······ क्लान्ति थी।

शब्दार्थ—प्रगल्भ=अधिक बोलने वाला। अरुण=लाल। क्लान्ति=थकान।

अर्थ—लज्जा के कारण सुहाग का मान के द्वारा अधिक बोलने वाले प्रिय के प्रेम-निवेदन का वह मंद और मृदुल हास जागरण के जग को सजाकर लुप्त हो गया। वह लाजमयी चेतना भी थककर किरणों में समा गई। उस जाग्रत प्रभात में भी कोई शान्ति न थी, वरन् वह जागरण की निंद्रा थी और उस जागरण में एक प्रकार की थकान का अनुभव हो रहा था।

बादल

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२३ में हुई थी। निराला प्रकृति के कवि हैं और प्रकृति के उपकरणों में भी बादल इनका प्रिय विषय रहा है। यही कारण है कि इन्होंने बादल पर अनेक रचनाएँ की हैं। प्रस्तुत कविता में कवि ने बादल का मानवीकरण करके अनेक प्रकार से बादल का बहुत ही सजीव और वास्तविक वर्णन किया है।

उमड़ सृष्टि के ·········· आगार।

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश। क्रीड़ा-रत=खेल में लगे हुए। अनन्त=अपार। सुकुमार=सुन्दर। स्तब्ध=शान्त। आगार=स्थान।

अर्थ—हे बादल! तुम सृष्टि के अनन्त आकाश से उसी प्रकार उमड़ पड़ते हो जिस प्रकार खेल में लगा हुआ बालक अपने घर से निकल पड़ता है। तुम अपार सृष्टि के चंचल तथा सुन्दर बच्चे हो। अंधकार—बादलों के द्वारा किया गया अंधकार ही तुम्हारे खेलने का स्थान है।

अलंकार=उपमा, मानवीकरण।

√**चौंक चमक ······ बारम्बार।**

शब्दार्थ=विद्युत=बिजली। अभिराम=सुन्दर। कुंचित=घुँघराले।

रश्मियों से = किरणों से। अन्तस्तल = हृदय। सप्तक = सात। व्योम = आकाश। गुड़ाकेश = नींद को जीत लेने वाले।

अर्थ—तुममें सुन्दर बिजली चमक कर छिप जाती है। तुम्हारे घुँघराले बालों में अधीर और विक्षुब्ध ताल पर एक इमन का अति मनोहर विरान लग जाता है। किरणों के कितने ही रंग तुम्हारे मुख पर छा जाते हैं। वे इस प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे जगत के हृदय से उमड़कर अनेक मुख उसकी आंखों और पलकों पर छा गए हों। तुम्हारे ऊपर किरण की कूँचियां अपार रंगों को अंकित कर देती हैं। इन्द्र धनुष के सातों रंग तुम पर चमक कर ऐसे ज्ञात होते हैं, मानो आकाश और पृथ्वी का उदार राग साकार हो उठा हो। हे गुड़ाकेश—तुम उसके मध्य में स्थित होकर बारम्बार गाते हो।

अलंकार—उपमा, उदाहरण।

मुक्त .... अनुराग।

शब्दार्थ—आरोह = स्वर का ऊपर खींचना। अवरोह = स्वर का धीमा करना। विधान = सम, स्वर का झुक जाना। सुरभित = सुगंधित। प्रपात = झरना। बधिर = बहरा। अनुराग = प्रेम।

अर्थ—हे मुक्त! तुम्हारे मुक्त कण्ठ में स्वर की स्थितियाँ आरोह, अवरोह और सम होती हैं। पहले तुम्हारा स्वर मन्द तथा मधुर होता है। और वही स्वर फिर ध्वनि का रूप लेकर आकाश, हरे-भरे कानन और सुगंधित उद्यान को गुंजा देता है। तब झर-झर का शब्द करके पहाड़ का झरना बहने लगता है। तुम बहरे विश्व के कानों में अपना राग भरते हो और मुक्त बालक की तरह बार-बार एक ही राग को गाते हो।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास।

नूपर के सुर मंद रहे

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४० में हुई थी। निराला काव्य में स्वच्छन्तावाद के पक्षपाती थे। इसलिए सबसे पहले इन्होंने ही छन्दों के बन्धनों से काव्य को मुक्त किया। प्रस्तुत कविता में यही बताया गया है कि जब तक काव्य में स्वच्छन्दता नहीं होती, तब तक वह अपनी भाव-गरिमा को नहीं पहुंच सकता।

नूपर के·······वन्द रहे ।

शब्दार्थ—स्वच्छन्द=स्वतन्त्र । राका=पूर्णमासी की रात । बहुविधि= अनेक प्रकार से ।

अर्थ—जब चरणों को स्वतन्त्रता नहीं होती तो नूपर के स्वर मन्दे बने रहते हैं । तुम जब पहली बार मेरी तरफ देखकर हँसे थे तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था जैसे आकाश से स्वच्छ पूर्णमासी की रात उतर आई हो । जो छन्द बन्द थे, अनेक प्रकार से प्राणों को झंकृत करके बजे ।

नयनों के·········आनन्द रहे ।

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ - जितने भी रस आनन्द थे, वे मेरे नयनों के साथ नहीं फिरे और मेरे फेरने से फिरे ही, वरन् तुम से चलकर वे तुम में ही पहुंच गये ।

रवि गए अपर पार

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३४ ई० में हुई थी । इसमें संध्या का वर्णन किया गया है । प्रकृति का यह वर्णन आलम्बन-रूप में होने के कारण सुबोध और प्रभावशाली है । प्रकृति का यह रूप निराला ने कम ही ग्रहण किया है ।

देकर अन्तिम·······आरती उतार ।

शब्दार्थ—कर=किरण । अपर=दूसरी । गृहिजन=घर के मनुष्य । मन्थर=धीमी । अंजलि-तल=सुन्दर हथेली । सुवसना=सुन्दर वस्त्रों वाली ।

अर्थ—संध्या का वर्ण करता हुआ कवि कहता है कि अपनी अन्तिम किरण को समेट कर सूर्य दूसरी पार चला गया, अस्त हो गया । घर के मनुष्य थके हुए चरणों से अपने-अपने घर लौटे । मन्द गति से चलने वाली काली सन्ध्या आकाश पथ से अपने कोमल पदों के भार को पृथ्वी पर टिकाती हुई उतरने लगी । पवन के मन्द-मन्द वहने से सुन्दर हथेली जैसी पंखुड़ियों को झुकाये हुए नवीन पद तल के उपहार के रूप में जुही की कली खिल गई । इसी समय सुन्दर वस्त्र पहने हुए तथा आँखों को झुकाए हुए प्रिया उठी और आरती उतार कर भवन का दीप जलाने लगी ।

बादल

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३० ई० में हुई थी। इसमें कवि ने बालक के माध्यम से अपनी ही प्रणय कथा का संकेत किया है। इस कविता की भाषा अत्यन्त सरल, संगीतात्मक तथा प्रवाहपूर्ण है।

बादल ·····पहनाए।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ— आकाश में बादल छाए हुए हैं। ये बादल नहीं, बल्कि मेरे अपने स्वप्न हैं जो आँखों से निकलकर मँडरा रहे हैं।

इसकी जितनी बूंदें हैं, उतनी ही मैंने अधखिली कलियाँ चुनी हैं। जितनी बूँदों की संख्या है, उतने ही हार मैंने तुमको पहनाए हैं।

अलंकार अपन्हुति।

गरजे·····गाने गाये।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ सावन के बादल घिर-घिर कर गरज रहे हैं, जिन्हें देखकर वनों के मोर बार-बार नाच रहे हैं। जितनी बार मोर बोले हैं, उतनी ही बार छन्द से तरह-तरह तिरकर मेरे ही तार चढ़े हैं, अर्थात् उतनी ही बार मेरे हृदय में भावनाओं का प्रवाह बहा है। तुम्हें सुनाने के लिए मैंने भी कुछ कम गीत नहीं गाये हैं; अर्थात् मैं भी तुम्हें सुनाने के लिए बहुत गीत गा चुका हूँ।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश।

राम की शक्ति पूजा

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३६ ई० में हुई थी। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह कविता आधुनिक हिन्दी-साहित्य की प्रगति की सीमा मानी जा सकती है। इसमें राम और रावण के युद्ध का वर्णन है। रावण को महाशक्ति संरक्षण प्रदान करती है, जिसके कारण राम के सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। वे जितने भी तीक्ष्ण वाण रावण पर छोड़ते हैं, महा-शक्ति उन सबको अपने विशाल शरीर पर लेकर निष्फल कर देती है। राम को यह निश्चय हो जाता है कि इस प्रकार रावण का वध न हो सकेगा। अपनी

विजय की उन्हें कोई आशा नहीं रहती। जब जाम्बवान उन्हें समझाते हैं कि यदि तप के द्वारा दुष्ट रावण महाशक्ति को अपने अधिकार में कर लेता है तो आपको भी तप के द्वारा उन्हें वशीभूत करना चाहिए। राम को यह सलाह अच्छी लगती है। वे तप प्रारम्भ कर देते हैं और जब वे अपने तप की सिद्धि के अन्तिम सोपान पर पहुंचते हैं तो दुर्गा आकर उनका अन्तिम कमल चुरा ले जाती हैं। इससे राम को बहुत दुःख होता है। यदि वे आसन छोड़कर और कमल लेने के लिए उठते हैं तो तप भंग हो जाता है और यदि नहीं उठते तो तप पूर्ण नहीं होता। तभी उन्हें याद आता है कि माँ उन्हें राजीव लोचन कहा करती थी। इसलिए कमल के स्थान पर वे अपनी एक आँख चढ़ाने के लिए जैसे ही तैयार होते हैं, तभी दुर्गा आकर उनका हाथ पकड़ लेती है और उन्हें विजय का वरदान देती हुई उनके मुख-तेज में समा जाती है।

रवि हुआ……रावण सम्बर।

शब्दार्थ—ज्योति के पत्र पर=दिवस के हृदय पर। अपराजेय=अनिर्णीत; जो जीता नहीं जा सके। तीक्ष्ण-शर विधृत-क्षिप्र-कर=तेज हाथों से धनुष पर चढ़ाये गये तीक्ष्ण वाण। शत-शेल-सम्वरशील=सैकड़ों भालों को रोकने में समर्थ। नील-नफ-गर्जित स्वर=नीले आकाश में गरजता हुआ स्वर। व्यूह= सेना की रचना। भेद-कौशल, समूह=शत्रु के प्रत्येक प्रकार के कौशल का नाश करके। राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह=राक्षसों की व्यूह रचना का भंग। विच्छु-रित वन्हि=अग्नि की लपटें निकालता हुआ। राजीव-नयन-हत-लक्ष्य-वाण= कमलनयन राम अपने बाणों को लक्ष्य-भ्रष्ट देखकर। लोहित-लोचन=लाल आँखें रावण-मद-मोचन=रावण के अहंकार का नाश। महीयान=आगे बढ़कर=राघव राम। गत-युग्म-प्रहर=दो पहर बीत गये। उद्धत लंकापति=दुस्साहसी रावण मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तार=वानर सेना के बल के विस्तार को कुचल डाला। विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव=विश्व को जीतने वाले दिव्य वाणों का भंग-भाव। विद्धांग=विंधे हुए अंग। वद्ध-कोदण्ड मुष्टि=धनुष पर कसी हुई मुट्ठी। खर-रुधिर-स्राव=तेजी में बहता हुआ खून। भल्लपति=जाम्बवान। अगणित मल्ल-रोध=अगणित योद्धाओं द्वारा निवारण। प्रलयाब्धि=प्रलय-सागर। क्षुब्द=क्रुद्ध। उदगीरित=निकलती हुई। भीम=भयंकर। रावण-

सम्बर=रावण का दमन ।

अर्थ--(दिन भर के घमासान राम-रावण के युद्ध के पश्चात्) सूर्य अस्त हो गया । दिन के हृदय पर आज का राम-रावण का अनिर्णीत एवं अमर युद्ध लिखा रह गया; अर्थात् आज इतना भयंकर युद्ध हुआ था कि वह सदैव स्मरण रहेगा । दोनों ओर के योद्धा तेज हाथों से धनुष पर वाण चढ़ाकर चलाते थे जिनकी गति बहुत तेज होती थी । वे बाण सैंकड़ों भालों को रोकने में समर्थ थे, उनकी आवाज से नीला आकाश गूंज रहा था । प्रत्येक पल नये-नये व्यूह बदले जा रहे थे; शत्रु के अनेक प्रकार के कौशल का भेदन किया जा रहा था । भाव यह है कि दोनों पक्ष इतने कौशल के साथ युद्ध कर रहे थे कि शत्रु को वार-वार अपनी व्यूह-रचना को बदल देना पड़ता था और दोनों ओर के योद्धा एक दूसरे की रण-कुशलता को असफल कर देते थे । राम की सेना राक्षस सेना की कुशलता को नष्ट कर रही थी । क्रुद्ध वानर भयानक शब्द करते हुए राक्षस सेना पर टूट रहे थे । अपने बाणों को लक्ष्य-भ्रष्ट देखकर कमल नयन राम की आँखों से क्रोध की आग निकलने लगती थी और वे लाल आँखों से रावण के अहंकार का नाश करने के लिए आगे बढ़ते थे । राम अत्यन्त कुशलता के साथ आक्रमण करते थे और रावण उस आक्रमण को विफल कर देता था, इस प्रकार दो पहर बीत गये । दुस्साहसी रावण वानर-सेना के वल के विस्तार को मसल रहा था; अर्थात् बलवान वनकर सेना का विनाश कर रहा था । विश्व को जीतने की सामर्थ्य रखने वाले राम अपने दिव्य वाणों की लक्ष्य-भ्रष्टता को आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे । कहने का भाव यह है कि राम को अपने अचूक निशाने पर पूर्ण विश्वास था, किन्तु जव उनका निशाना वार-बार चूक रहा था, तो उन्हें भारी आश्चर्य हो रहा था । राम का शरीर रावण के वाणों से बिंधा हुआ था, क्रोध के कारण वे मुट्ठी में धनुष को कसे हुए थे । उनके शरीर से रक्त की प्रवल धारा वेग से बह रही थी । रावण इतनी भयंकरता तथा कुशलता से युद्ध कर रहा था कि उसके प्रहारों को रोकना असम्भव था, इसीलिये बलवान वानरों की सेना विकल हो उठी थी । सुग्रीव, अंगद, विभीषण गवाक्ष, गय, नल आदि समस्त वानर-नेता मूर्च्छित हो गये थे । लक्ष्मण और जाम्बवान असंख्य राक्षस-योद्धाओं को रोकने का प्रयत्न कर रहे थे । रणक्षेत्र में

ऐसा कोलाहल मच रहा था मानों प्रलय समुद्र उद्वेलित होकर गर्जना कर रहा हो। इस कोलाहल के बीच केवल हनुमान ही ऐसे थे जो अपने होश में थे जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी विशाल ज्वालामुखी पर्वत से अग्नि की लपटें निकल रही हों। इस प्रकार हनुमान चार प्रहर तक रावण के साथ निरन्तर युद्ध करते रहे और सीता के भयभीत हृदय में आशा उत्पन्न करते रहे; अर्थात् हनुमान के युद्ध-कौशल को देखकर यह निश्चित था कि राम की विजय होगी और सीता रावण के कारागृह से मुक्त होगी। इस प्रकार हनुमान रावण का दमन करते रहे।

अलंकार—अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा।

विशेष—१. इन पंक्तियों में समास-शैली के द्वारा युद्ध का बहुत ही सजीव एवं वास्तविक वर्णन किया गया है। इन पंक्तियों में खड़ी बोली की प्रौढ़ता का पूर्णतया विकास असंदिग्ध है। इसमें कवि की विलश वाक्य-शक्ति, शब्द-चयन, भाषा की संक्षिप्तता एवं प्रवाह तथा शब्द-मैत्री का संगठन द्रष्टव्य है।

२. 'हनुमत् केवल-प्रबोध' से कवि की हनुमान के प्रति भक्ति-भावना अभिव्यक्त होती है।

३. युद्ध के वातावरण को सजीव करने के लिए कवि ने नाद-व्यंजना का प्रयोग किया है, इसके लिए संयुक्ताक्षरों तथा 'ट' वर्ग के अक्षरों का अधिक प्रयोग किया है।

४. व्यूह-समूह, प्रत्यूह, हूह जैसे शब्दों का प्रयोग कर कवि ने ध्वनि प्रधान बिम्बों का निर्माण किया है।

५. उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने भाषा में ओज गुण को प्रमुखता देकर वीर तथा भयानक रसों का एक साथ चित्र खींचा है। इस कारण काव्य में लाक्षणिकता तथा व्यंजनात्मक ध्वनियों के कारण भाषा का सौन्दर्य बढ़ गया है।

६. इस कविता में वर्णिक छन्दों के स्थान पर कवि ने भाषा में ओज को प्रकट करने के लिए मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। काव्य में इस छन्द के प्रयोग के कारण छायावादी काव्य-शैली भी उभरी है और उसकी अन्य विशेषताओं का भी निर्वाह हो गया है।

७. इस पद्यांश में स्वभावोक्ति, श्लेष, अनुप्रास, यमक, प्रत्यनीक, व्यक्तिरेक तथा उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है इनके द्वारा काव्य-सौंदर्य का विकास हुआ क्योंकि इनके प्रयोग के लिए कवि को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा !

लौटे पुग दल .... कहीं पार।

शब्दार्थ—युग = दोनों। टलमल = कम्पित। महोल्लास = महान् हर्ष। वानर-वाहिनी = वानर-सेना। निजपति = राम। स्थविर-दल = बौद्ध साधुओं का दल। प्रशमित = शान्त। नवनीत-चरण = मक्खन के समान कोमल चरण। श्लथ = ढीला। धनु-गुण = धनुष की डोरी। कटि-बन्ध = कमरबन्द। स्रस्त = ढीला। विपर्यस्त = अस्त-व्यस्त। नैशान्धकार = रात्रि का अन्धेरा।

अर्थ—दोनों दल—राम और रावण की सेना—अपने-अपने शिविरों को लौटे। विजय के दम्भ से राक्षस अपने भारी पैरों से पृथ्वी को कम्पित कर रहे थे और उनके महान् हर्ष के भारी कोलाहल से आकाश वार-बार विकल हो रहा था; अर्थात् उनके हर्ष-निनाद आकाश को गुंजा रहे थे। वानर-सेना उदास थी। वह अपने पति राम के चरण-चिन्हों को देखकर इस प्रकार शांति के साथ अपने शिविर की ओर लौट रही थी, जैसे कोई बौद्ध-साधुओं का दल विपिन्न दशा में अपने शिविर की ओर लौट रहा हो। वातावरण शांत था। संध्या के समय झुके हुए मुख वाले कमल के समान चिन्तातुर होकर आगे-आगे लक्ष्मण चल रहे थे और उनके पीछे सारे वानर-वीर चल रहे थे। आगे-आगे राम अपने मक्खन के समान कोमल चरणों को पृथ्वी पर टेकते हुए चले जा रहे थे। राम के धनुष की डोरी ढीली पड़ी हुई थी, कमरबन्द भी ढीला था जिसमें तूणीर को रखते थे। दृढ़ता से बँधी हुई जटाएँ और मुकुट अस्त-व्यस्त थे और उनकी प्रत्येक लट खुलकर उनकी पीठ पर, बाहुओं पर और विशाल हृदय पर पड़ गयी थी जो इस प्रकार दिखाई देती थी मानो किसी दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अन्धकार उतर आया हो और राम की खिन्न आँखें उसमें कहीं दूर से चमकने वाली ताराएँ हों।

अलंकार—उपमा, रूपक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा।

विशेष—१. आकाश शिव का निवास-स्थान माना जाता है। शिव की

अर्द्धांगिनी इस युद्ध में रावण की सहायता कर रही थी, इसीलिए रावण की विजय पर आकाश बार-बार हर्षोन्माद से गूँज उठता था।

२. इन पंक्तियों में ध्वन्यात्मकता और शब्द-योजना के द्वारा वस्तु के सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं जैसे—'महोल्लास' से अमर्यादित और अहार हर्ष का चित्र परिलक्षित होता है। राम और उनकी सेना की मन्द गति का स्पष्ट आभास शब्द-चयन में निहित है।

३. इन पंक्तियों में भावानुकूल शब्द-प्रयोग विशेष रूप से ध्यातव्य हैं।

४. इस पद में ऐसा प्रतीत होता है मानो निराला यवनिका के गिराने के उपरान्त एक नये दृश्य का संयोजन कर रहे हों। दल का अपने सेनानायक के साथ लौटने का दृश्य अपने आप में अद्भुत है तथा इसकी भाषा में समास-हीनता है और भाषा में पूर्व स्थल की अपेक्षा प्रसाद गुण का अधिक समावेश हुआ है।

५. विम्ब योजना की दृष्टि से ये स्थल बड़े मार्मिक हैं। दुर्गम पर्वत पर नैराश्यांधकार का उतरना एक विराट् और श्रेष्ट विभव है। यहाँ कवि ने अपनी अपनी उदात्त भावना के अनुरूप ही एक विराट् विम्ब का संयोजन किया है।

६. छायावादी कवि स्थूल वर्णन की अपेक्षा सूक्ष्म भावों के वर्णन को अधिक महत्त्व देते हैं, इसी के अनुरूप इस काव्य में भावों की सूक्ष्मता का भी आश्रय दिय गया है। कविता में जिस सांध्यकालीन वातावरण की सृष्टि पर राम के अन्तर्द्वन्द्व में लीन मन का एक चित्र-सा खींचा गया है, उसका पाठक पर बड़ा मार्मिक प्रभाव पड़ता है।

७. इसमें अनुप्रास, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, सम, स्वभावोक्ति दृष्टान्त तथा विषम अलंकार का प्रयोग हुआ है।

आये ...... आश्रय बस-स्थल।

शब्दार्थ—सानु = चोटी। मन्थर = मन्द गति। समाधान = विचार-विमर्श। फेर = पहुंचा कर। आश्रय-स्थल = शिविर।

अर्थ—मन्द गति से पर्वत की चोटी पर पहुंच कर सुग्रीव, विभीषण, जाम्ववान आदि वानर और दल-विशेष के सेनापति अंगद, हनुमान, नल, नील, गवाक्ष अपनी-अपनी सेनाओं को उनके शिविर में पहुंचा कर प्रातः के रण पर

विचार-विमर्श करने के लिए राम के शिविर में आये।

बैठे रघुकुल-मणि.........श्याम देश।

शब्दार्थ— श्वेत शिला=सफेद पत्थर की शिला। कर-पद-क्षालनार्थ= हाथ-पैर धोने के लिए। पटु=कुशल। तीर=किनारा। सत्वर=शीघ्र। भल्ल=जाम्ववान। प्रान्त पर=स्थान पर, समीप। पाद-पद्म=चरण-कमल। महावीर=हनुमान। यूथपति=सेनापति। निर्मिमेष=एकटक। जित-सरोज-मुख=कमल को जीत लेने वाला मुख। श्याम=स्याह।

अर्थ—रघुकुल-मणि राम पत्थर की शिला पर वैठ गये और कुशल हनुमान उनके हाथ पैर धोने के लिए निर्मल जल ले आये। अन्य वीर संध्याकालीन विधान तथा ईश्वरोपासना करने के लिए तालाव के किनारे पर चले गये और वहाँ से जल्दी ही लौट आये। सब राम की आज्ञा की प्रतीक्षा में उनको घेर कर वैठ गये। राम के पीछे लक्ष्मण बैठे हुए थे, सामने विभीषण, धैर्यवान जाम्ववान तथा सुग्रीव ; चरण-कमलों के पास हनुमान एवं अन्य सेनापति अपने-अपने स्थानों पर वैठकर एकटक राम के कमल को जीत लेने वाले उस मुख की ओर देख रहे थे, जो अपनी पराजय की खिन्नता से स्याह पड़ गया था।

विशेष—१. इन पंक्तियों में भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति मुखरित है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में वड़े सदा ही पूज्यनीय रहे हैं।

२. हनुमान में दास्य भाव की भक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा कर हनुमान को रम के एक अनन्य भक्त, सेवक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। पुराणों तथा रामायण आदि ग्रंथों के द्वारा हनुमान का यही रूप उभरा है। कवि ने हनुमान के रूप में उक्त सभी गुणों को उभारा है, जिसके कारण इनका रूप परम्परा से भिन्न नहीं है।

३. इसके द्वारा राम की सभा और उसमें उनके परामर्शदाताओं की स्थिति का भली-भाँति वर्णन किया गया है, जिससे राम का अपने दल के सेनानायक का रूप भी उभरा है तथा साथ उनके प्रति उनके अधीनस्थ लोगों की निष्ठा तथा आदर भाव का भी पता चलता है।

४. इसमें रूपक, प्रतीप, स्वभावोक्ति तथा प्रतीप आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

है अमा-निशा ······· जलती मशाल।

शब्दार्थ—अमा-निशा=अमावस्या की रात्रि। घन=गहरा। स्तब्ध=शान्त। पवन-चार=हवा का संवरण। अप्रतिहत=न रोका जा सकने वाला। अम्बुदि=सागर। भूधर=पर्वत।

अर्थ—अमावस्या की रात्रि है। आकाश गहरा अन्धकार उगल रहा है। अन्धेरे के कारण दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा है। हवा का संचरण शान्त है। पीछे न रोका जा सकने वाला विशाल सागर उद्वेलित होकर गरज रहा है। पर्वत किसी ध्यान-मग्न तपस्वी की भांति शान्त है और वहाँ पर केवल एक मशाल जल रही है।

अलंकार—उपमा, स्वभावोक्ति, मानवीकरण।

विशेष–प्रकृति और शब्द-यौजना के माध्यम से वातावरण की भयानकता सजीव हो उठी हैं।

स्थिर राघवेन्द्र······· कम्पन तुरीय।

शब्दार्थ—स्थिर राघवेन्द्र=शान्त राम। रिपु-दम्य=शत्रु का दमन करने वाले। श्रांत—थका हुआ। अयुत=दस हजार। लक्ष=लाख। दुराक्रान्त=अविचलित। अच्युत=राम। पृथ्वी-तनया=सीता। निष्पलक=एकटक। विदेह=राजा जनक। लतान्तराल=लताओं के बीच में। समुदय=हर्ष के साथ। मलय-वलय=चन्दन के वृक्ष का समूह। ज्योति=सूर्य का प्रकाश। प्रपात=झरना। स्वीय=स्वकीय, अपनी। तुरीय=समाधि की एक अवस्था का नाम।

अर्थ—स्वभावतः ही शांत राम को बार-बार संशय झिकझोर रहा था और वे इस जग के जीवन में ही रावण की विजय के भय से बार-बार काँप उठते थे। शत्रुओं का दमन करने वाला राम का वह हृदय जो कभी आज तक थका नहीं था, निराश नहीं हुआ था और जो अकेला भी दस हजार लाखों शत्रुओं में अविचलित रहा था, यद्यपि कल को युद्ध करने के लिए बार-बार विकल हो रहा था, तथापि उनका मन तैयार होकर भी बार-बार अपने को

असमर्थ मानकर अपनी पराजय स्वीकार कर रहा था।

निराशा एवं अवसाद के इन क्षणों में राम के मन में कुमारी सीता की छवि इस प्रकार चमक उठी जैसे अन्धकार से घिरे हुए वादल में बिजली चमक जाती है। उन्हें राजा जनक का उपवन याद आया, जिसमें राम ने एकटक सीता की छवि को देखा था। वहीं पर लताओं के वीच में उन दोनों का प्रथम प्रेमपूर्ण मिलन हुआ था। तब उन दोनों में कोई सम्मभाषण नहीं हुआ, वरन् दोनों के नेत्रों ने ही परस्पर एक दूसरे से मूक सम्भाषण किया था। पहली ही बार पलक नव पलकों पर उठीं और झुकीं थीं। वहाँ छोटे-छोटे से पत्ते हिल रहे थे। पराग हर्ष के साथ झर रहा था। पक्षी इसी प्रकार प्रसन्न होकर गा रहे ये मानो उन्हें नवीन जीवन का परिचय प्राप्त ही गया हो। चन्दन के वृक्षों का समूह झूम रहा था। प्रातःकालीन सूर्य की ज्योति ऐसी सुन्दर लग रही थी, मानो स्वर्ग से कोई झरना झर रहा सो। उसी दिन राम सीता को अपनी-अपनी छवि का प्रथम बार ज्ञान हुआ था। सीता के सुन्दर नयनों में इस प्रथम मिलन के कारण एक प्रकार की पुलक दौड़ गई थी, जिसका आनन्द तुरीयावस्था में प्राप्त आनन्द के समान था।

अलंकार— वीप्सा, अनुप्रास, उप्रेत्क्षा, उपमा ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में संकेतात्मक विधि का ग्रहण कवि की समर्थता और काव्य की भाव-प्रवणता का द्योतक है।

२. राम का चरित्र तो यहां प्रासंगिक पात्र ही है, वस्तुतः कवि इनके माध्यम से अपनी विरह-वेदना तथा अवसाद-निराशा को व्यक्त कर रहा है। यह उसने लाक्षणिक शैली के आधार पर किया है।

३. इसमें राम के ब्रह्मत्व के स्थान पर सहज मानवीय धरातल पर अंकित चित्र को ही उभारा गया है। क्योंकि मनोविज्ञान के अनुसार हर मनुप्य अच्छाइयों और बुराइयों का पुंज होता है। अतः इस धारणा के अनुसार पात्रों का यदि चित्रण किया जाये तो वह सजीव भी बन जाता है और स्वाभाविक भी

सिहरा तन .... मुक्तदान ।

शब्दार्थ—हर=शिव। धनुर्भंग को=धनुष को तोड़ने के लिए। पुनर्वार= दोबारा। स्मिति=हँसी। मन्त्रपूत=मन्त्रों से पवित्र किए हुए। शलभ=पतंगे रचनीचर=राक्षस। भीमा-मूर्ति=विशाल मूर्ति। आच्छादित=ढकना।

समग्र=सारे। ज्योतिर्मय=अग्नि से युक्त। महानिलय=अत्यन्त विशाल। शेष-शयन=शेष नाग पर सोने वाले विष्णु के अवतार राम। राममय नयन=राम की छवि को धारण किए हुये नेत्र। भावित=स्मृति में निमग्न। मुक्ता-दल=मोती के समान उज्ज्वल आँसू।

अर्थ—राम को जव सीता के प्रथम मिलन की याद आई तो हर्ष के कारण उनका तन रोमांचित हो गया, उनका मन प्रसन्न हो गया और उनका हाथ अपने आप ही इस प्रकार ऊपर उठ गया, जैसे वह फिर शिव के धनुष को तोड़ना चाहते हों। सीता के ध्यान में डूवे हुए राम के अधर पर मुस्कराहट फूट गई और उनसे हृदय में विश्व को पराजित करने की भावना भर आई। उन्हें अपने वे दिव्य और मन्त्रों से पवित्र किए हुए असंख्य वाण याद आ ये जो सारे के सारे अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए देवदूत की भाँति आकाश में उड़ गये थे। अपनी कल्पना में तव राम ने देखा कि सारे राक्षस ताड़का, सुबाहु विराध, त्रिशिरा, दूषण और शर उनके वाणों की आग में पतंगों की भांति जल रहे हैं। इसके वाद राम की स्मृति में वह विशाल मूर्ति आई, जो आज उन्होंने रण में देखी थी। वह मूर्ति सारे आकाश को अपनी विशालता से ढके हुए थी और राम के सारे अग्नि बाण उसमें लग-लगकर क्षीण होकर बुझ गये थे। बाण उस भीमाकार मूर्ति को पाकर उसके तन में क्षण भर में ही समा गये थे। इस इस दृश्य को देखकर अपार वलशाली तथा विष्णु के अवतार राम अपनी पराजय की शंका से व्याकुल हो उठे और उनकी आंखों में सीता के वे नेत्र झांकने लगे जिनमें राम की छवि समाई हुई थी। इसके बाद राम ने खल-खल करते हुए रावण का अट्टास सुना, जिसके कारण स्मृति में लीन उनकी आँखों से मोतियों के समान दो उज्ज्ल आँसू गिर पड़े।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, दृष्टान्त, विरोधाभास, उदात्त।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा राम की विभिन्न मानसिक स्थितियों के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, वे अत्यन्त स्वाभाविक, प्रभावशाली और सशक्त हैं। नैराश्य और खिन्नता के क्षणों में प्रेयसी की याद करना बड़ी स्वाभाविक बात है।

२. इस पद की एक अन्य विशेषता यह है कि कवि ने वीर-रौद्र-भयानक

रसों की अवतारण करने के उपरान्त सहज भाव से शृंगार रस को भी उभारा है। जब जीवन की घटनाएँ याद आती हैं तो प्रथम मिलन तथा प्रथम प्रणय की भावनाएँ स्मृति के रूप में प्रायः उभर आती हैं। अतः कवि ने इन्हें बड़े स्वाभाविक रूप में उभारा है। जिससे वर्ण्य-विषय में सहज ही औदात्य का भी समावेश हो गया और शृंगार के मार्मिक पक्ष का उद्‌घाटन हो गया।

३. अवसाद और नैराश्य के क्षणों में प्रियतमा की मूर्ति का बादलों में बिजली के समान चमक जाने की बड़ी सार्थक उपमा है।

४. छायावादी कवियों ने नारी को शक्ति का उद्रेक माना है। सीता की स्मृति से राम के आँखों में पुनः विश्व-विजय के स्वप्न जाग उठे और उनके नैराश्य और खिन्नता के भाव कुछ समय के लिए तिरोहित हो गये। इन भावों को उभारने के लिए कवि ने प्रकृति का प्रयोग पृष्ठभूमि के रूप में किया है।

५. कवि ने औदात्य तत्व की रक्षा करने के निमित्त ही प्रकृति के बिम्बात्मक चित्र खींचे हैं जो भावों को बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट कर देते हैं तथा हृदय में उत्तेजना का भी संचार कर देते हैं।

६. कवि ने राम के हृदय में नैराश्य के कारण अकर्मण्यता को स्वीकार नहीं किया, वरन् जैसा कि आचार्य शुक्ल का मत है 'दुख में तो स्थिति भय की है आनन्द में वही स्थिति उत्साह की है।' इसमें भाव यह है कि दुख के क्षणों में भय ही मनुष्य को क्रियाशील बनाता है। आनन्द में उत्साह, अतः भय और उत्साह दोनों ही मनुष्य को क्रियाशील बनाने में सहायक हैं। इसी प्रकार परिस्थितियों द्वारा तोड़े जाने पर पुरुष-सिंह दूने उत्साह से उन परिस्थितियों पर काबू पाने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार राम भी कहते हैं और कवि निराला ने स्वयं भी ऐसा ही किया था।

७. मर्यादा पुरुषोत्तम का जो परम्परावादी चरित्र है, उस चरित्र में कहीं दुर्बलता नहीं है। जब वे 'हे खग हे मृग हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृग नयनी' कहते हैं तो फौरन ही तुलसी भगवान की लीला कहकर उस दुर्बलता पर पर्दा डाल देते हैं। निराला ने उस दुर्बलता को छिपाया नहीं, जिसके कारण चरित्र में स्वाभाविकता आ गई है।

बैठे मारुति······निश्चेतन ।

शब्दार्थ — मारुति = हनुमान । चरणारविन्द = चरण-कमल । अस्ति-नास्ति = है और नहीं है । उपनिषदों में इस पद्धति का प्रयोग ब्रह्म की सत्ता सिद्ध करने के लिए किया गया है । गुण-गण = गुणों का समूह । अनिन्द्य = निर्दोष । वाम कर = बायाँ हाथ । दक्षिण पद = दाहिना पर । विश्राम धाम = मुक्तिलोक । सभक्ति = भक्ति के साथ । अजपा = सहज भक्ति । विभक्त हो = द्वैतभाव से । श्यामा = महाशक्ति । हीरक-युग = दो हीरे । कौस्तुभ = एक मणि का नाम । चिर-प्रफुल्ल = सदैव प्रसन्न रहने वाला । निश्चेतन = चेतना-रहित, उदास ।

अर्थ — हनुमान बैठे हुए राम के चरण-कमलों को देख रहे थे और सोच रहे थे कि राम के ये चरण युग की समस्त दार्शनिक मान्यताओं के ब्रह्म हैं और नहीं हैं—ही एकरूप है जो निर्दोष गुणों के समूह हैं, साधना करते समय उपासक सहज भाव से इन्हीं चरणों का ध्यान करते हैं । ये चरण साधना के मध्य भी साम्य हैं । यह सोचकर हनुमान ने राम की ओर देखा । राम का बायाँ हाथ दाहिने पैर पर तथा दाहिने की हथेली पर बाँया पैर रक्खा हुआ था । हनुमान राम के इस स्वरूप में सत्य के, ब्रह्म के, सच्चिदानन्द रूप के दर्शन कर भक्ति के आवेश के कारण गद्गद् हो गये । राम का वह रूप मुक्तिलोक के समान था, जहाँ जीवन अनन्त विश्राम प्राप्त करता है । राम की इस भावमयी तथा गम्भीर मुद्रा को देखकर हनुमान सहज भक्ति-भावना के साथ द्वैतभावना से युक्त होकर—राम ब्रह्म है और ब्रह्म से भिन्न भी है—राम-नाम का जाप कर रहे थे । इसी समय राम के नेत्रों से गिरे हुए दो आंसू उनके चरणों पर आ गिरे । हनुमान ने जब उन आँसुओं को देखा तो उन्हें प्रतीत हुआ जैसे आकाश में तारों का समूह चमक उठा हो । इस दृश्य को देखकर उन्होंने सोचा कि राम के नहीं, बल्कि श्यामा के शुभ चरण हैं और ये दोनों आँसू उन चरणों के मध्य सुशोभित होने वाले या तो दो हीरे हैं अथवा दो कौस्तुभ मणियां हैं । हनुमान के ध्यान का तार टूटा, उनका स्थिर मन विकल हो उठा और उन्होंने संदिग्ध भाव से अपनी दृष्टि ऊपर उठाकर राम की ओर देखा । यद्यपि वहीं कमलनयन राम बैठे थे, किन्तु उनकी आँखों में आँसू उमड़े

हुए थे और उनका सदैव प्रसन्न रहने वाला मन कुछ-कुछ व्याकुल और उदास था ।

विशेष — १ इन पंक्तियों में कवि ने राम के रूप की वेदान्त-परक और भक्ति-परक व्याख्याएँ की हैं। वेदान्त की दृष्टि से वे द्वैताद्वैत हैं और भक्ति की दृष्टि से भक्तों को सहजगम्य । साथ ही राम का मानव-रूप भी चित्रित है अपनी स्थिति से व्याकुल और उन्मन हैं। रामरूप की स्वरूप की यह प्रतिष्ठा प्राचीन और अर्वाचीन दार्शनिक मान्यताओं का सुन्दर समन्वय है।

२. उपमा, अपन्हुति, सन्देह, रूपक, श्लेष, विषम, विरोधाभास, पुनरुक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है ।

३. पंक्तियों में राम के परम्परागत भक्त रूप के ही दर्शन होते हैं। राम भगवान है और हनुमान उस भगवान से अनन्य प्रेम करने वाले है। वस्तुत: राम परमात्मा हैं और हनुमान उसी के एक अंश मात्र, अत: इन दोनों में ही द्वैत भाव के संवधों की कल्पना की गई है ।

४. इन पंक्तियों में सच्चिदानन्द ब्रह्म के स्वरूप, अजपा भक्ति और विभक्ति, पद्मासन की मुद्रा आदि अब्दों के द्वारा राम और हनुमान के चरित्रों में पवित्र भावों को इंगित कर कवि ने अपने इस काव्य में धार्मिक और सांस्कृति भावों का परिवेश करवाया है ।

ये अश्रु......अट्टहास ।

शब्दार्थ — उद्वेग = उत्तेजित । शक्ति-खेल-सागर = शक्ति के साथ खेलने वाला तथा सागर के समान अथाह हनुमान । पवन उनचास = पवन के उनचास रूप माने जाते हैं। कहते हैं जब ये उनचास रूप एक साथ मिलकर चलते हैं तो प्रलय हो जाती है । तुमुल = भयंकर शोर । वक्ष = हृदय । वाष्प = भापरूप चिन्ता । चिन्ता । शत घूर्णावर्त = सैंकड़ों भयंकर चक्कर लगाते हुए भँवर । तरंग-भंग = लहरों की गति । जल-राशि = पानी का ढेर । प्रतिसन्ध = मर्यादा, सीमा । स्फीत-वक्ष = विशाल हृदय । देश-भाव = स्थान का ज्ञान । अनिल = पवन । महाराव = भयंकर ध्वनि । वज्रांग = कठोर अंगों वाले । क्षुब्ध = क्रोधित होकर ।

अर्थ—राम के चरणों पर गिरते हुए अश्रुओं को देखकर और यह सोचकर किये राम के ही आंसू हैं—राम अत्यन्त दुखी एवं विकल हैं—अपार शक्ति

के साथ खेलने वाला तथा सागर के समान अथाह हनुमान उत्तेजित हो उठा। उसकी उत्तेजना से प्रेरित होकर उनके पिता की ओर से भयंकर शोर करते हुए उनचासों पवन एक साथ मिलकर चलने लगे, जिससे हनुमान के हृदय पर इकट्ठी हुई चिन्ता-रूपी अतुल भाप उड़ गई; अर्थात् उनकी चिन्ता दूर हो गई, क्योंकि उन्हें निश्चय हो गया था कि रावण की संरक्षिका महाशक्ति इस प्रलय से न बच सकेगी। सैकड़ों भयंकर चक्कर लगाते हुए भँवर चलने लगे। तरंगों की भयंकर गति से पहाड़ उठने लगे। बहने लगे। पानी का ढेर पछाड़ खाता हुआ दूसरे पानी के ढेर चढ़ने लगा। पानी का वह अथाह प्रवाह पृथ्वी की सीमा को दौड़कर सागर का हृदय विशाल करने लगा; अर्थात् चारों ओर सागर ही सागर दिखाई देने लगा और वह दिग्विजय करने के लिए प्रतिपाल समर्थ होकर आगे ही बढ़ने लगा। वह सैकड़ों वायु के वेग-बल से बहने लगा जिसके अतुल हृदय में स्थान ज्ञान डूब गया; अर्थात् कहीं पर भी पृथ्वी दिखाई नहीं देती थी। विपुल जल राशि को मथता हुआ वायु भयंकर शब्द कर रहा था। इस प्रकार का भयानक दृश्य उपस्थित करते हुए वज्र के समान दृढ़ अंग वाले तथा एकादश रुद्र के अवतार हनुमान होकर तथा भयंकर अट्टहास करते हुए महाकाश में पहुंच गये।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा, उदात्त, मानवीकरण, व्यतिरेक, पर्यायोक्ति आदि।

विशेष – १—प्रलयकालीन वर्णन भी भयंकरता के लिये उपयुक्त शब्दावली का चयन कवि की कवि-प्रतिभा का द्योतक है। इन पंक्तियों में कवि ने बाह्य और आभ्यंतर प्रकृति का एक साथ ही उद्घाटन किया है। इसी प्रकार का वर्णन प्रसाद कामयानी में भी किया है। यथा—

लहरें व्योम चूमती उठतीं
चपलाएँ असंख्य नचतीं
गरल जलद की खड़ी झड़ी में
बूँदें निज संसृति रचतीं।
× × ×
'हाहाकार हुआ क्रन्दनमय,
कठिन कुलिश होते थे चूर,

हुए दिगन्त बधिर भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर।'

२. इन पंक्तियों में भक्त हनुमान के मन में राम के प्रति जितनी निष्ठा और भक्ति है उन सब भावों की अभिव्यक्ति करने में कवि को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। हनुमान राम के भक्त माने जाते हैं तथा परम्परा से वह भी प्रसिद्ध है कि उनके मन में भगवान की मूर्ति बसी हुई है। इसी कारण वे राम में अपनी अगाध निष्ठा को लिए हुए हैं। कवि इसी निष्ठा को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है।

३. हनुमान अपने बल और पराक्रम के लिए भारतीय पौराणिक इतिहास में प्रसिद्ध रहे हैं। उनका पराक्रम पौरुष का चिरन्तन प्रतीक रहा है। उनकी भक्ति में नम्रता तथा उदारता की भावनाएं हैं, इस कारण उनका सम्पूर्ण व्यक्ति-त्व ही एक बारगी उभर आता है।

४. इसकी भाषा को भावानुरूप बनाने के लिए द्वित्व वर्णों तथा महाप्राण योजना के द्वारा बिम्व-विधान किया गया है। जिसके कारण निराला अपने मनोगत भावों का पूर्णतः प्रकाशन करते हैं। हनुमान के पराक्रम को व्यक्त करने के लिए उन्होंने सुदीर्घ समासान्त पदावली का भी प्रयोग किया है।

५. इन पंक्तियों में नाद-सौंदर्य प्रभावशाली बन पड़ा है।

रावण-महिमा ·········दूर रोध।

शब्दार्थ — त्रिभावरी = रात्रि। दशस्कन्ध-पूजित = रावण के द्वारा पूजित। रुद्र-वन्दन = शिव की वन्दना। रघुनन्दन-पूजित = राम के द्वारा उच्चारण की हुई। हर शिव। मन्द्रस्वर = मन्दा स्वर। सम्वरो = रोको। शृंगार-युग्म-गत = शृंगारिक भावना से नारी के साथ आबद्ध। अक्षय = अनश्वर। प्रबोध = सान्त्वना। रोध-संकट।

अर्थ—हनुमान जब महाकाश में पहुंचे तो वहां एक ओर तो रावण की महिमा को बनाये रखने वाली तथा रात के अन्धकार के समान श्यामवर्ण वाली महाशक्ति थी और दूसरी और शिव-भक्त राम की पूजा के प्रताप के द्वारा तेज का प्रसार करने वाले हनुमान थे; उस ओर रावण के द्वारा पूजित शिव की शक्ति थी और उस ओर राम के द्वारा उच्चारण की हुई शिव की वन्दना थी, जिसके बल पर अटल होकर हनुमान समस्त आकाश को निगलने का साहस

कर रहा था। भावी महानाश को देखकर अचल शिव क्षण भर के लिए चंचल हो गये और श्यामा के पदतल का भार धारण करने वाले शिव मन्द स्वर में वोले—हे देवि ! अपना तेज़ रोको। यह वानर नहीं है। यह कभी कामवासना से पीड़ित होकर नारी के साथ आवद्ध नहीं हुआ है। यह महावीर है। यह यह राम की पूजा का साक्षात् प्रतीक और अक्षय शरीर वाला है। यह आदि से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने वाला एकादश रुद्र हनुमान धन्य है, क्योंकि ये मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सबसे उत्तम और अनन्य भक्त हैं, उनकी लीलाओं के साथी हैं, दिव्य भावों को धारण करने वाले हैं। हे देवि ! इन पर प्रहार करने से तुम्हारी ही भयानक हार होगी। इसीलिए विद्या का सहारा लेकर इनके मन को शान्त करो। इस प्रकार यह बानर निश्चय ही झुक जायेगा और आने वाला संकट दूर हो जायेगा।

विशेष – १. इन पंक्तियों में राम-रावण के पराक्रम का वर्णन किया गया है, इसको स्पष्ट करने के लिए कवि ने अनेक प्राकृतिक उपादानों का सहारा लिया है, जिससे उसकी अलंकार योजना में भी प्रभावशाली वन पड़ी है। यहाँ पर तमोगुण पर सतोगुण की विजय का होना उल्लेखनीय है।

२. रावण के पक्ष में शक्ति तथा राम के पक्ष में हनुमान रूपी साक्षात् रुद्र या शंकर का होना उन दोनों को समान ही बतलाया गया है।

३. हनुमान के चरित्र के उभारने के लिए ठीक अपनी पत्नी शक्ति को प्रबोध देते हैं कि ये ब्रह्मचारी है अतः इन पर श्रृंगार का जरा भी प्रभाव न पड़ेगा और इस कारण इन्हें प्रबोध देने के लिए कोई युक्ति काम में लेनी है। हनुमान के ब्रह्मचर्य पर तथा उनकी शक्ति और पराक्रम पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

४. इसमें रूपक, श्लेष, सम, उल्लेख, विशेषोक्ति आदि अलंकार हैं।

कह हुए·········दीन।

शब्दार्थ—पवन-तनय=हनुमान। अनर्थ=अनुचित कार्य। असम्भाव्य= अनुचित कार्य। धार्य=स्वीकार्य। गह=ग्रहण करके।

अर्थ—इतना कह कर शिव चुप हो गए और हनुमान के हृदय में विस्मय के भाव भरती हुई अचानक आकाश में उनकी माता अंजना दिखाई दी और कहने लगी—'जव बचपन में तुमने सूर्य को निगल लिया था, तब तो तुम्हें ज्ञान

नहीं था, क्योंकि तब तुम केवल बालक थे। यही भाव तुम्हें रह-रहकर व्याकुल कर रहा और इसी घटना के दुःख को तुम्हारी माता सहन करती रहे, यह बहुत शर्म की बात है। यह महाकाश है। जहाँ पर उस निर्मल शिव का निवास स्थान है, जिनकी पूजा तुम्हारे राम भी करते हैं। तुम उसी महाकाश को निगलने के लिए तत्पर हो। तुम्हारा यह कार्य अनुचित है। तुम अपने मन में सोचो कि क्या राम ने तुम्हें ऐसा करने की आज्ञा दी है ? अर्थात् राम तुम्हें कभी भी इस कार्य की अनुमति नहीं दे सकते। तुम सेवक होकर और सेवक का धर्म छोड़कर यह कार्य कर रहे हो। क्या राम तुम्हारे इस अनुचित कार्य को स्वीकार कर लेंगे ? अर्थात् राम को तुम्हारा यह कार्य बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगेगा।' यह सुनकर हनुमान का क्रोध शान्त हो गया। वे नम्र बन गये। उसी क्षण माता का रूप धारण करने वाली श्यामा अन्तर्ध्यान हो गई। तब हनुमान धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतर आये और राम के चरणों को उन्होंने फिर से दीन भाव को ग्रहण कर लिया।

विशेष -१. इन पंक्तियों में तांत्रिक तथा सम्मोहन की पंक्तियों को प्रकाश में लाया गया है। इस समय हनुमान की वस्तुतः अवस्था ऐसी ही थी। इसीलिए शक्ति को अंजना का रूप धारण करना पड़ा जो निश्चय ही महाशक्ति के ऊपर भी हनुमान के पराक्रम की गाथा को व्यक्त करता है।

२. हनुमान के चरित्र की सरलता भी इन पंक्तियो के द्वारा व्यक्त होती है अर्थात् इनमें इस बात पर बल दिया गया है कि हनुमान कितने सरल तथा भोले हैं कि अंजना का रूप देखकर उसे सत्य मान बैठे और जरा भी तर्क-वितर्क न कर सके। इस प्रकार हनुमान का मनोवैज्ञानिक निरूपण कर कवि ने निर्मल चित्त वाले भक्त के हृदय का भी वर्णन किया है।

३. इन पंक्तियों में भाषा का रूप भावों के अनुकूल प्रसाद गुण वाली भाषा में प्रयोग किया गया है।

४. इनमें समासोक्ति, सम्भरण, पुनरुक्ति पूर्वरूप आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

राम का विषण्णानल········धिक्-धिक् ?

शब्दार्थ—विषण्णानन=दुःख में डूबा हुआ मुख। वदन=मुख। निर्जर=वृद्धभावहीन अर्थात् शक्ति-सम्पन्न। तूण=तरकस। प्रमन=प्रसन्न। तारा-

कुमार=अंगद। अप्रतिभट=अद्वितीय योद्धा। अर्बुद=दस करोड़। भाव-प्रहर=निराशा के भाव का उदय। कल्मष=पाप। गताचार=आचारहीन। परिषद् दल=सभासदों का समूह। कल कूजित-पिक=मधुर वाणी में बोलती हुई कोयल।

अर्थ—कुछ क्षण तक राम के दुख में डूबे हुए विभीषण उनसे कहने लगे—'हे सखा! आज तुम्हारा वह मुख प्रसन्न नहीं है, जिसे देखकर सारे वीर वानर और भल्लूक आदि युद्ध के श्रम को भूलकर फिर से अपने जीवन को शान्ति सम्पन्न बना लेते थे। हे रघुवीर! तुम्हारे तरकस में आज भी वे ही वाण सुरक्षित हैं, जिनसे तुमने रावण-कुल का संहार किया है; साहस से भरी हुई छाती भी वही है, रण-कौशल से युक्त हाथ भी वे ही हैं और वही तुम्हारा अपार वल है। मेघनाद को रण में जीतने वाले लक्ष्मण भी वही हैं, वही जाम्वान है; प्रसन्न तथा वानरों का राजा सुग्रीव भी वही है; श्वेत रंग वाला, धैर्यबल तथा महावल को धारण करने वाला अंगद भी वही है। वही कुशल सेनानायक हैं, वही रण क्षेत्र है। अर्थात् तुम्हारे पास वही साधन अब भी हैं, जिनके द्वारा तुमने रावण के कुल का संहार किया था; किन्तु न जाने क्यों इस अनुचित समय में तुम्हारे मन में निराशा भरे भावों का उदय हो गया है? हे रघुकुल गौरव! तुम इन समय छोटे बनते जा रहे हो। जव रण में विजय प्राप्त होने वाली है, तब तुम लड़ाई से मुख मोड़ रहे हो। तुम्हारी इस भावना से कितना ही परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि जब सीता से मिलने का, उसे रावण के कारागार से छुड़ाने का समय निकट आ गया है तो तुम निष्ठुर होकर सीता की मुक्ति से अपना हाथ खींच रहे हो। और रावण! रावण तो लम्पट, खल पापी और आचारहीन है। जिसने उसकी हित की वात कही थी, उसी को उसने लात मारी थी; अर्थात् जव मैंने उसके भले की वात कही तो उसने उसका वदला मुझे लात मार कर दिया। वह उपवन में वैठकर सीता को अनेक प्रकार का दुख देगा और अपने सभासदों से घिर कर अपने रण की विजय कथा को सुनाता रहेगा और वह वसन्त ऋतु में कोयल की मीठी वाणी से गुंजित उपवन में आनन्द से दिन वितायेगा; और आप मुझे लंका का राजा भी नहीं वना सके! हे राम! वह मेरे लिए वड़ी धिक्कार

की बात है ।

अलंकार—वीप्सा, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि ।

सब सभा ……नहीं शक्ति ।

शब्दार्थ—निस्तब्ध=शान्त । रितमित=अधखुले । विमन=उदास भाव, चाव=आकर्षण । दुराव=छिपाव । समनुरक्ति=समान आकर्षण । गहन=गंभीर ।

अर्थ—विभीषण की बातों को सुनकर सारी सभा शान्त बैठी रही । राम के अधखुले नयन शीतल प्रकाश छोड़ते हुए और उदास भाव को लिए हुए देखते रहे; जैसे विभीषण के शब्दों में जो ओजस्वी प्रभाव था, उसके प्रति राम को न तो किसी प्रकार का आकर्षण था और न किसी प्रकार का दुराव था । मानो वे केवल शब्द मात्र हो जिनमें मित्रता के समान ही आकर्षण हो और जहाँ पर उनके गम्भीर भाव की ग्रहण करने की शक्ति न हो ।

कहने का भाव यह है कि विभीषण के ओजस्वी शब्दों को सुनकर भी शान्त बैठे रहे, जैसे उन पर उन शब्दों को कोई प्रभाव न पड़ा हो ।

अलंकार–उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, विशेषोक्ति, उपमा आदि ।

कुछ क्षण………वातावरण विषम ।

शब्दार्थ–रघुमणि=राम । दृगजल=आँसू । गह-युग-पद=दोनों पैर ग्रहण करके । मसक दण्ड=पुष्ट भुजायें । स्पन्दित=आन्दोलित । विषम=भयंकर ।

अर्थ—विभीषण की बातें सुनकर और कुछ क्षण तक चुप रह कर राम अपने स्वाभाविक कोमल स्वर में कहने लगे—हे मित्रवर विभीषण ! अब हमारी युद्ध में विजय नहीं होगी, क्योंकि अब यह नर-वानर का राक्षस से युद्ध नहीं रहा है; बल्कि रावण का निमन्त्रण पाकर महाशक्ति उसकी सहायता कर रही हैं । यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि जिधर अन्याय है, उधर ही महाशक्ति लड़ रही हैं । यह कहते-कहते राम के नेत्र छलछला आये और फिर आँखों से कुछ बूँदें आँसुओं की गिरीं । उनका कण्ठ रुद्ध हो गया, वे आगे कुछ भी न कह सके । राम की इस स्थिति को देखकर लक्ष्मण का प्रचंड तेज चमक उठा, हनुमान राम के दोनों चरणों को ग्रहण करके लज्जा के सारे पृथ्वी में धँस सा गया, पुष्ट भुजाओं वाले जाम्बवान स्थिर रह गये । इन सब भावों को

समझते हुए सुग्रीव व्याकुल हो गए। विभीषण के हृदय में तो इस प्रकार का गहरा भाव हुआ। वे अपने भविष्य का कार्यक्रम निश्चित सा करने लगे। इस प्रकार यह भयानक वातावरण मौन होते हुए भी अन्दर ही अन्दर प्रवल रूप से आन्दोलित हो रहा था।

अलंकार—विरोधाभास, रूपक, प्रत्यनीक, यमक, विषम, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि।

विशेष—इन पंक्तियों में विभिन्न पात्रों के मानसिक द्वंद्वों का बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण किया गया हैं। राम के टूटते मन के प्रति पाठक की संवेदना अधिकाधिक बढ़ती जाती है।

निज सहज·······हुआ अस्त।

शब्दार्थ—जानकी-प्राण=राम। अपर=दूसरा, गैर। शर-निकर=बाणों का समूह। निशित=सान पर चढ़ाया हुआ, तीक्ष्ण। संसति=संसार। पतन-घातक=उद्धार करने वाली। शत-शुद्धि-बोध=पूर्णतया शुद्ध ज्ञान। धृत=धारण किये हुए। शशांक=चन्द्रमा। अशंक=निःशंक। समवृत=रोकना। वामा=नारी, शक्ति। त्रस्त=भयभीत।

अर्थ—अपने स्वाभाविक रूप से संयत होकर राम कहने लगे—'मेरी समझ में यह दैवी विधान नहीं आया कि रावण अधर्म में लगा हुआ है। फिर भी महाशक्ति ने क्यों उसे अपना समझ लिया है और में धर्म में लगा हुआ भी क्यों गैर हो गया हैं। हे शंकर! आज का समर तो महाशक्ति का ही खेल रहा। मैं बार-बार उन तीक्ष्ण बाणों के समूह की योजना करता जिनसे सारा संसार जीता जा सकता है, जो तेज के समूह हैं, जिनमें सृष्टि की रक्षा का विचार छिपा हुआ है, जिनमें उद्धार करने वाली अपार संस्कृति निहित है, जिसमें पूर्णतया शुद्ध ज्ञान हैं, जिनमें सूक्ष्म से सूक्ष्म मन का विवेक है, जिनमें क्षात्र धर्म का पूर्ण अअभिषेक धारण किया हुआ है, जो प्रजापतियों के संयम से रक्षित हैं, वे ही बाण आज रण में शोभा से विहीन होकर टूट गये, अर्थात् शत्रु का वध किये बिना ही निष्फल हो गये। मैंने रण में देखा था कि महाशक्ति रावण को अपनी गोद में इस प्रकार लिए हुए थीं जैसे निःशंक होकर आकाश में चन्द्रमा लांछन को लिए हैं, वे बार-बार मेरे मन्त्रों से पवित्र किए हुए बाणों को रोक-रोककर तोड़ रही थीं। में बार-बार शीघ्रता से अपने लक्ष्य पर प्रहार

करता था, किन्तु सारे लक्ष्य बार-बार निष्फल हो जाते थे। मैं युद्ध में वानर-समूह को विचलित देखकर क्रुद्ध होकर ज्यों-ज्यों युद्ध करता था, त्यों-त्यों उस महाशक्ति की आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलती थीं। इसके बाद वे मुझे देखने लगीं। उनकी दृष्टि से मेरे हाथ बँध गये। तब फिर मुझसे धनुप भी नहीं खिचा। मैं मुक्त होते हुए भी बँध गया था। अपनी इस अद्भुत अवस्था को देखकर मैं भयभीत हो गया।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि के ऊपर बंगीय संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता।

अलंकर – दृष्टान्त, विरोधाभास विषम, यमक, श्लेप, पुनरुक्ति, वीप्सा आदि।

कह हुए .... बार-बार।

शब्दार्थ—भानु-कुल-भूषण = राम। विश्वस्त = विश्वास भरे। आराधना = पूजा। वरो = प्राप्त करो। ध्वस्त = नष्ट। महावाहिनी = विशाल सेना। वाम-पार्श्व = बायाँ भाग। यूथपति = सेनापति। भल्लनाक = जाम्ववान। पुलकित = रोमांचित।

अर्थ—अपनी विवशता बताकर राम क्षण भर के लिए मौन हो गये। तब जाम्बवान विश्वास भरे स्वर में बोले—हे रघुवर ! मैं आपको अपने पथ से विचलित होने का कोई कारण नहीं देखता। हे पुरुषसिंह ! आप भी यह शक्ति धारण करके पूजा का उत्तर दृढ़ पूजा से दो, अर्थात् जिस प्रकार आराधना के द्वारा रावण ने महाशक्ति को अपने वश में कर लिया है, उसी प्रकार आप भी दृढ़ साधना करके उसे वशीभूत कर लें। आप अपने प्राणों को संयत करके प्राणों पर विजय प्राप्त करें। यदि रावण अशुद्ध होकर भी आपको भयभीत कर सका है, तो आप निश्चय ही महाशक्ति की सिद्धि करके उसे नष्ट कर देंगे। महाशक्ति की मौलिक कल्पना कीजिये उसकी पूजा कीजिए। हे रघुनन्दन ! जब तक आपको अपनी पूजा में सिद्धि न मिले, तब तक आप युद्धक्षेत्र में जाना छोड़ दीजिए। तब तक लक्ष्मण इस विशाल सेना के सेनापति होंगे जो सेना के मध्य भाग में रहेंगे। श्वेत शरीर वाले अंगद दक्षिण में सहायक के रूप में रहेंगे। मैं भालुओं की सेना का संचालन करूंगा। बाएँ भाग में हनुमान होंगे। जहाँ भी भय होगा, वहीं नल, नील, छोटे-छोटे वानरों के समूह, उनके प्रधान

सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य सेनापति यथासमय रक्षा के लिए पहुच जायेंगे ।' इस प्रस्ताव को सुनकर सारी सभा प्रसन्नता से फूल गई। राम ने वृद्ध जाम्बवान को मस्तक झुकाकर कह दिया—'हे भल्लनाथ ! आपका यह निश्चय उत्तम है।' और फिर वे अपनी विचारधारा में डूब गये। सब उक्त प्रस्ताव के अनुमोदन से बार-बार रोमांचित हो रहे थे।

विशेष—१. निराला के ऊपर बंगाल की शक्ति उपासना का बड़ा प्रभाव था। वहाँ दुर्गा को शक्ति का प्रतिरूप माना जाता है। यहाँ पर भी निराला ने उसे शक्ति के रूप में ही प्रतिष्ठित किया है।

२. जाम्वबान को एक कुशल परामर्शदाता के रूप में चित्रित किया गया है। उन्हें ज्ञात था कि रावण दुराचारी है तथा उसने केवल अपनी आराधना के बल पर ही महाशक्ति को अपनी रक्षा के निमित्त बुला रखा है यदि राम भी उसी अनन्य भाव से उसकी उपासना करें तो वह महाशक्ति निश्चय ही राम का पक्ष ले सकती है। अपने इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त के राम को प्रबोध देते है तथा उन्हें आराधना करने के लिए उत्साहित करते हैं।

३. निराला ने युद्धभूमि में सेना की व्यूह रचना की बात कह कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है। क्योंकि बिना व्यूह के जो युद्ध किये जाते है उनके कारण प्रायः सेना को सफलता नहीं मिलती है।

४. भावानुकूल भाषा का भी प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही व्यास शैली में भावों की अभिव्यक्ति कर कवि ने अपनी काव्य रचना की कला का परिचय दिया है।

५. इसमें रूपक, सम, अनुप्रास आदि अलंकार है।

कुछ समय ········ अभिनन्दित ।

शब्दार्थ—इन्दीवर-निन्दित=कमल को निन्दित कर देने वाले। मज्जित= डूबा हुआ। विश्वास-स्थित=विश्वास के पूर्ण। विद्ध=बिधा हुआ। महिषासुर=एक राक्षस का नाम। खल=राक्षस। मर्दित=चूर किया हुआ। जनरंजन=मनुष्यों को आनन्द देने वाले। अभिनंदित=पूजा करना।

अर्थ—कुछ समय पश्चात् कमल को निन्दित कर देने वाले राम के नेत्र खुल गये, किंतु राम का मन अपलक रूप से भावों में डूबा रहा। कुछ क्षण पश्चात् वे आवेग-रहित तथा विश्वास से पूर्ण स्वर में बोले—'हे दस भुजाओं

वाली विश्व की ज्योति माता ! मैं तुम्हारी शरण में हूं । तुम्हारी शक्ति से विंध कर महिषासुर जैसा राक्षस भी चूर हो गया था। मनुष्यों को आनन्द देने वाले तुम्हारे चरण-कमलों के नीचे गरजने वाला सिंह धन्य है । हे माता ! मैं तुम्हारा संकेत समझ गया। यही सिंह मेरा प्रतीक है, अर्थात् जिस भाव से तुम्हारा वाहन सिंह तुम्हारी आराधना करता है, मैं भी उसी भाव से तुम्हारी पूजा करूंगा ।

अलंकार व्यतिरेक ।

विशेष—राम शक्ति की पूजा रावण के समान श्यामा के रूप में न करके महिषासुर-मर्दिनी, सिंह-वाहिनी के रूप में करने का निश्चय करते हैं । यही उनकी मौलिक कल्पना है, जिसका संकेत जाम्बवान ने दिया था—'शक्ति की करो मौलिक कल्पना ।' बंगाल में शक्ति की पूजा इसी रूप में की जाती है।

कुछ समय ····हो रहा खर्व ।

शब्दार्थ—छवि में =दुर्गा की काल्पनिक शोभा में । ज्योतिर्दल=प्रकाश पुंज । ध्यान-लग्न=ध्यान में लीन । स्मित आनन=मुस्कराता हुआ मुख । भावस्थ=भाव में लीन । चन्द्रमुख-निन्दित=अपने मुख की शोभा से चन्द्रमा को लज्जित करने वाले । पावन कंपन=सात्विक भावों की कंपन । स्वर-मेघ-मन्द्र=मेघ के समान मन्द स्वर । भूधर=पर्वत । शतहरित गुल्म-तृण=सैकड़ों हरे कुंज और वृक्ष । चरण-प्रान्त=चरणों के नीचे ।

अर्थ—राम कुछ समय तक दुर्गा की कल्पित मूर्ति के ध्यान में निमग्न बैठे रहे । फिर उन्होंने प्रकाश से आपूरित कमल की पंखुड़ियों के समान, ध्यान में लीन अपनी पलकें खोलीं । सारे मन्त्री और सेनापति गण वीरासन से बैठे व्याकुल हृदय से राम के मुस्कराहट से परिपूर्ण मुख मंडल की ओर देख रहे हैं। चन्द्रमुख को अपनी शोभा से लज्जित करने वाले मुख वाले रामचन्द्र भाव में डूबे स्वर में अपने प्राणों में सात्विक भाव का रोमांच अनुभव करते हुए मेघ के मन्द स्वर में बोले—'हे वन्धुवर ! देखो ? सामने जो पर्वत स्थित है, जो सैकड़ों हरे-भरे कुंजों से शोभित, श्यामल और सुन्दर है, वह पार्वती का ही काल्पनिक रूप है और मकरन्द-विन्दु के समान मधुरता, शीतलता प्रदायक तथा प्राणवान है । उसके नीचे जो सागरगरज रहा है वह सागर न होकर,सिंह है

जो दुर्गा के चरणों के नीचे खड़ा महिषासुर को देख गर्जन कर रहा है । भाव यह है कि यह पर्वत दुर्गा तथा उनके वाहन सिंह का प्रतीक है ।

सम्पूर्ण दसों दिशाएँ दुर्गा के दस हाथ हैं। और उनके ऊपर देखो-आकाश में दिगम्बर देश-धारी मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, शिव शोभित हैं। उनके मंगलकारी भाव को देखकर गर्व उनके चरणों के नीचे दबा जा रहा है। मानव के मन की आसुरी वृत्तियों का मद नष्ट हो रहा है।

विशष—१. इन पंक्तियों में शक्ति की मौलिक कल्पना की गई है। महा-शक्ति और शंकर की कल्पना विराट है तथा उनका स्वरूप उदात्त है । शंकर और पार्वती की यह कल्पना साहित्य मे अभूतपूर्व है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि अपने मानस पर पड़े शैव और शाक्त के प्रभाव को स्पष्ट करना चाहता है ।

२. विद्यापति का निम्न पद्य तुलनीय है—

जय जय भैरवि असुर-भयाउनि पसुपति भामिति माया ।
सहज सुमति वरदिअ हे गुसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।
वासर रैनि सवासन मण्डित चरन, चन्द्रमणि चूड़ा ।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल कतन उगिलि कैल कूड़ा ।।
सामर वरत नैन अनुरंजित जलद जोग फुल कोका ।
कट-कट बिकट ओठ पुर पाँडरि लिधुर फेन उठ फोका ।।

विद्यापति का यह पद परम्परागत ही है यद्यपि वे भी स्वयं उसी शक्ति के भक्त थे जिसका प्रभाव निराला के हृदय पर बंगीय संस्कृति के सम्पर्क मैं आने पर पड़ा था। किन्तु दोनों का वर्णन फिर भी सर्वथा पृथक् है।

३. 'छवि मैं निमग्न' कहकर कवि ने अपनी छायावादी सौन्दर्य चेतना का परिचय दिया है तथा सूक्ष्म भावों की सफल अभिव्यक्ति भी की है।

४. **अलंकार**—रूपक, प्रतीप, उपमा, मानवीकरण, यमक, व्यतिरेक ।

'फिर मधुर दृष्टि·······सोचते हुए विजय'

शब्दार्थ—प्रियतर=स्नेह भरे। अन्तर= दृश्य। इन्दीवर=कमल-पुष्प । देवीदह=एक स्थान का नाम जहां कमल-पुष्प अधिक होते हैं। सत्वर=शीघ्र, तुरन्त । अवगत=परिचित। दूरत्व=दूर स्थित । पद रज=पगधूलि ।

अर्थ—इसके उपरान्त राम अपनी मधुर दृष्टि से हनुमान को अपनी ओर

आकर्षित करते हुए अत्यन्त स्नेह भरे स्वर से हनुमान के हृदय को आप्लावित कर उनसे बोले—हे हनुमान ! हमें एक सौ आठ कमल पुष्प चाहिए। कम से कम इतने तो होने चाहिए, यदि अधिक ला सको तो और भी अधिक अच्छी बात होगी। तुम उषाकाल होते ही तुरन्त देवीदह चले जाओ और वहाँ से तोड़कर कमल-पुष्प ले आओ, फिर वहाँ से लौटकर युद्ध करो। हनुमान ने जाम्बवान से देवीदह जाने का मार्ग पूछा। वह स्थान बहुत दूर था। वहां के मार्ग से हनुमान अपने स्वामी राम के चरणों की धूल अपने शीश पर चढ़ा, हर्ष से भर कर चल दिये। विश्राम करने का समय जानकर राम ने सबको विदा किया और सब लोग मन-ही-मन राम की विजय की कामना करते हुए राम के प्रति सदय होकर चले गये।

अलंकार स्वाभावोक्ति।

निशि हुई विगत········होने लगा समाराधन।

शब्दार्थ—विगत=समाप्त। ललाट=मस्तक। शरासन धनुप। तूणीर =तरकश। निविड़ जटा दृढ़=घनी जटाओं को मजबूती के साथ वांधा गया। सुधी=ज्ञानी। गुण-ग्राम=गुणों का समूह। गहन=गम्भीर। समाराधन= आराधना, उपासना, पूजा। हिरण=हिरण्य, स्वर्ण। सिंहनाद=सिंह जैसी गर्जना। पूजोपरान्त=पूजा के उपरान्त।

अर्थ—अमावस्या की काली रात्रि समाप्त हुई, अर्थात् राम के मन की सारी निराशा और क्लान्ति समाप्त हो गयी। आकाश के ललाट पर सूर्य की प्रथम किरण दमकने लगी जो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो राम के नेत्रों में से उनकी महिमा रूपी किरण फूट कर चारों ओर विकीर्ण हो उठी ही। अर्थात् यह सूर्य की प्रथम किरणन होकर राम की महिमा की स्वर्णमयी किरण थी। आज राम के हाथ में धनुष और कन्धे पर तरकश नहीं हैं, और न आज उनके सिर पर जटाओं का कसकर बंधा हुआ मुकुट ही शोभा दे रहा है। अर्थात् आज राम ने योद्धा का वेश धारण नहीं किया है। अपने चारों ओर युद्ध के कोलाहल को सुनकर भी राम का मन युद्ध करने को विचलित नहीं होता। ज्ञानी राम महाशक्ति का ध्यान करते हुए निश्चल विराजमान है। वे पूजा के उपरान्त दस भुजाओं वाली दुर्गा के नाम का जाप करते हैं और मन ही मन उनके असंख्य गुणों का मनन कर रहे हैं। इस प्रकार वह दिन बीत

गया। राम का मन अपनी इष्ट देवी के चरणों में एकाग्र हो रहा था। इस प्रकार उनकी यह साधना समय से साथ गहन होने लगी।

विशेष—१. इन पंक्तियों में प्रकृति का चित्रण सुन्दर हुआ है।

इस चित्रण की एक बड़ी तथा महती विशेषता यह है कि इसमें बिम्ब तथा चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। जिससे छायावादी प्रतीक शैली का आभास होता है क्योंकि उषा काल वहां आशा का प्रतीक है उसी प्रकार यहाँ पर नभ ललाट पर किरण का आना एक नई आशा का संकेत करता है।

२. कामायनी में भी प्रसाद जी ने प्रलय काल के बाद उषा की सुनहरी किरणों को जगत में आने पर उनको आशा का प्रतीक माना है—

उषा सुनहले तीर बरसाती जयलक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल रात्रि भी नभ में अन्तर्निहत हुई॥

३. इसमें राम के द्वारा उन भगवती का नाम जप करना दिखाया गया है यह भी भक्ति का ही एक रूप है। यहाँ पर साधक राम का रूप उभरा है जो जगत के कोलाहल से सर्वथा दूर है अर्थात् उस पर युद्ध का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और वह निश्चेष्ट होकर एकाग्रमन से भगवान की भक्ति करते जाते हैं

अलंकार—रूपक, मानवीकरण, स्वभावोक्ति, सार, यमक आदि।

क्रम-क्रम........प्रिय इन्दीवर।

शब्दार्थ—क्रम-क्रम से=एक-एक कर। ऊर्ध्व=ऊपर की ओर। निरलस=आलस्यहीन। पुरश्चरण=मंत्र का जप या स्तोत्र पाठ। किसी अभीष्ट की सिद्धि के लिए किए जाने वाला मंत्र जाप। आज्ञा=आज्ञा चक्र, योगियों की साधना का एक सोपान। महाकर्षण=महान आकर्षण। संचित=एकत्रित। त्रिकुटी=दोनों भौंहों के बीच का स्थान। विद्दल=दोदल। निःस्पन्द=निश्चल अतिक्रम=पार। समारब्ध=संस्कार। सहस्रार=सहस्रार कमल। द्विपहर=दो पहर। कर-जप=हाथ में माला लेकर नाम जप करना, माला फेरना।

अर्थ—इस प्रकार राम को दुर्गा की आराधना करते हुए एक-एक कर पांच दिन बीत गए। वह पूरी एक माला फेर कर कमल का एक फूल चढ़ाते जाते थे। इस प्रकार वह अपना पुरश्चरण पूरा करते जाते थे। साधना में निरत उनका ऊर्ध्वगामी मन निरन्तर आलस्यहीन भाव से ऊपर चढ़ता चला

जा रहा था। छठवें दिन उनका मन आज्ञा चक्र पर जाकर स्थिर हो गया। प्रत्येक जाप के प्रभाव से उनकी साधना में महान आकर्षण अर्थात् प्रभाव उत्पन्न होता चला गया। वे अपनी त्रिकुटी के सम्पूर्ण ध्यान को केन्द्रित कर देवी के कमल की दो पंखुड़ियों के समान सुन्दर, कमल चरणों की उपासना कर रहे थे। राम के मुख से निकले जप के स्वर को सुन-सुन कर आकाश थर-थर काँप रहा था। इस प्रकार राम दो दिन तक एक ही आसन पर निश्चल बैठे रहे और दुर्गा के नाम का जप करते कमल-पुष्प चढ़ाते रहे। अन्त में तपस्या का अन्तिम दिवस अर्थात् आठवाँ दिवस चला गया। इस प्रकार राम के मन ने सम्पूर्ण ब्रह्मांड पर विजय प्राप्त कर ली। राम की इस कठोर तपस्या को देखकर सारे देवतागण आश्चर्य एवं भय से स्तब्ध रह गये। इस तपस्या द्वारा राम ने अपने जीवन में जो तपस्या की थी—कठोर परिस्थितियों का अनुभव किया था, उन सबसे संस्कार जल कर नष्ट हो गये। भाव यह है कि इस तपस्या के प्रभाव से राम के मन पर पड़े सम्पूर्ण सांसारिक संस्कार विनष्ट हो गए और उनका मन पूर्णरूप से अनासक्त और निर्मल हो गया।

अन्त में चढ़ाने के लिए केवल एक कमल पुष्प शेष रह गया। राम का मन साधना के अन्तिम सोपान-सहस्रार कमल-चक्र रूपी दुर्ग को पार करने के लिये प्रस्तुत आगे की ओर देख रहा था। भाव यह है कि राम साधना के अन्तिम सोपान पर पहुंच गये थे और इसे पार करने वाले ही थे। रात्रि का दूसरा पहर था। रात्रि के उस अन्धकार में दुर्गा छिपकर वहाँ साक्षात् रूप में प्रकट हुई और मन ही मन हँस कर चुपचाप राम की पूजा का वह अन्तिम प्रिय कमल-पुष्प चुरा कर ले गई।

विशेष—यहाँ कवि ने राम की दुर्गा-उपासना की हठयोगियों की समाधि का रूप दिया है। हठयोगियों के अनुसार अधोमुखी कुंडलिनी ऊर्ध्वमुखी होकर ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। वह मानव शरीर के विभिन्न स्थानों में स्थित चक्रों को पार करती हुई क्रमशः ऊपर बढ़ती जाती है और अन्त में सहस्रार-कमल नामक चक्र में पहुंच जाती है। वही चक्रों की साधना इसका मूलाधार है। अन्तिम चक्र में पहुंचते पर योगी की तपस्या पूर्ण हो जाती है

और वह ब्रह्मा से एकाकार हो जाता है । कुंडलिनी के इस मार्ग में विभिन्न लोकों में कल्पना की गई है ।

अलंकार—अनुरक्ति, सार उल्लेख, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि ।

यह अन्तिम जप....... एक नयन ।

शब्दार्थ—चरण-युगल=दोनों चरण । विमल=शुद्ध । असिद्धि=साधना भंग । शोध=खोज करना । दैन्य=दीनता । मायावरण=माया का आवरण । हृत-चेतन=चेतना-रहित । प्रयन=प्रसन्न । मन्द्रित=मन्दे स्वर में गरजते हुए । राजीव-नयन=कमल-नयन । पुरश्चरण=मंत्र का जप ।

अर्थ—यह अन्तिम जाप है, यह सोचते हुए राम ने दुर्गा के दोनों चरणों पर अपना ध्यान लगाया और नीला कमल लेने के लिए अपना हाथ वढ़ाया, लेकिन उनके हाथ कुछ भी नहीं लगा । राम का स्थिर मन सहसा विचलित हो उठा । उनका ध्यान-भंग हुआ, उन्होंने अपनी पवित्र पलकें खोलीं और देखा कि जहाँ पर फूल रक्खा हुआ था, वह स्थान खाली है । यह सोच कर कि यह जप के पूर्ण होने का समय है और इस समय आसन छोड़ने से जप भंग हो जायेगा, राम की दोनों आँखों में आँसू भर आये । वे कहने लगे कि इस जीवन को जो सदैव विरोधों का सामना करता आया है और उन साधनों को भी धिक्कार है जिनकी मैं सदैव खोज करता रहा हूं । हे जानकी ! मुझे बहुत दुःख है कि मैं अपनी प्रिया (जानकी) का भी उद्धार न कर सका । इस हतोत्साह मन के अतिरिक्त राम का एक और मन था जो अनुत्साहित नहीं हुआ था, जो दीन भावों से दूर था, जो विनय नहीं जानता था, वह माया का जाल भेद कर और प्राप्त करके वुद्धि के दुर्ग पर पहुंचा; अर्थात् इस विषम परिस्थिति में भी वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ नहीं हुआ । चेतना-रहित हुए मन में बिजली की गति से सहसा एक स्मृति जग जाने से राम का मन प्रसन्न हो गया । उन्होंने सोचा कि माता मुझे सदैव कमलनयन कहा करतीं थी । अभी तो मेरी आँखों के रूप में दो कमल बचे हुए हैं । मैं अपनी एक आँख चढ़ाकर यह मंत्र का जाप पूरा करता हूं ।

कहकर देखा.......हस्त थाम ।

शब्दार्थ—तूणीर=तरकश । ब्रह्मशर=ब्रह्म-बाण । महाफलक=बड़े फल वाला । त्वरित=शीघ्र । भगवती=दुर्गा ।

अर्थ—यह कह कर राम ने अपने तरकश की ओर देखा, जिनमें पड़ा हुआ ब्रह्म-वाण झलक रहा था। राम ने लपलपाता हुआ वह बड़े फल वाला वाण अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने वाएँ हाथ से अपना अस्त्र पकड़ा और दाएँ हाथ में दाईं आँख ली और अपनी आँख को सुमन के स्थान पर अर्पित करने के लिए तैयार हो गए। जिस समय राम ने अपनी आँख को वेधने का दृढ़ निश्चय कर लिया, उसी समय समूचा ब्रह्माण्ड कांप उठा और शीघ्र ही भगवती दुर्गा प्रकट हो गई। उन्होंने यह कहते हुए कि हे साधक-धीर और धर्म-धन से धन्य राम ! तुम निश्चय ही पवित्र हो राम का हाथ पकड़ लिया।

अलंकार—वीप्सा, अनुप्रास।

देखा राम ने.........हुईं लीन।

शब्दार्थ—भास्वर=तेजस्वी। बामपद=बायाँ पैर। असुर-स्कन्ध=राक्षस का कन्धा। हरि=शेर। सज्जित=सजे हुए। श्री=शोभा। रण-रंग-राग=युद्ध की साज-सज्जा। प्रणत=झुकना। मन्द-स्वर-वन्दना=मन्दे स्वरों में वन्दना करते हुए।

अर्थ—तब राम ने देखा कि उनके सामने परम तेजस्वी दुर्गा खड़ी हुई थीं जिनका बायाँ पैर महिषासुर के कन्धे पर था और दायां पैर शेर पर। उनका रूप ज्योति से युक्त था दसों हाथ विविध प्रकार के अस्त्रों से सुशोभित थे, उनके मुख पर मंद मुस्कान थी जिसे देखकर संसार की शोभा भी लज्जित हो जाती थी। उनके दक्षिण भाग में लक्ष्मी, बाएँ भाग में सरस्वती, दक्षिण में गणेश, बाएँ भाग में युद्ध की साज-सज्जा से सजे हुए कार्तिकेय और मस्तक पर शंकर विराजमान थे। साक्षात् दुर्गा के दर्शन करके राम उनके चरण-कमलों में अपनी समग्र श्रद्धा को समर्पित करके उनकी मन्द स्वरों में वन्दना करते हुए झुक गये। तब दुर्गा ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि हे नवीन पुरुषोत्तम राम ! रण में तुम्हारी अवश्य विजय होगी। यह कह कर वह महाशक्ति राम के मुख-मंडल में समा गई।

विशेष—इस पद में महाशक्ति के मातृत्व का अच्छा चित्रण हुआ है।

जीवन भर दो

कविता परिचय—इस कविता का रचना-काल सन् १९६६ ई० है। जिसमें कवि बादल से प्रार्थना की है कि वह अपनी जल-धारा द्वारा उसके जीवन को सरस बना दे और उसे वास्तविक शोभा को अंकन करने की शक्ति प्रदान करे।

पथ पर .... ऊर्मिल कर दो ।

शब्दार्थ—सलिल=पानी । उर्मिला=उर्मियों से युक्त; अर्थात् गतिमान ।

अर्थ—कवि बादल से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे अनन्त आकाश के बादल ! मेरे पथ पर जीवन रूपी पानी भर दो और पानी भरकर मेरी गति को गतिमान बना दो ।

तट हों ...... वर दो ।

शब्दार्थ—विपट-छाँह=पेड़ों की छाया । सस्मित-कलि-दल-चुम्बित= मुस्कराती हुई कलियों की पंखड़ियों को चूमे हुए । समीकरण=पवन । द्रुम-विहंगगण=पेड़ पर पक्षियों का समूह ।

अर्थ—हे अनन्त आकाश के बादल ! मेरे जीवन के सूने तट पेड़ों की छाया से भर जाये, मुस्कराती हुई कलियों की पंखुड़ियों से चूमे हुए जल-कण मेरे जीवन में आ जाये; शीतल-शीतल पवन चले और पेड़ पर पक्षियों का समूह मधुर ध्वनियों में बोले ।

दूर ग्राम .... सुन्दरतर ।

शब्दार्थ—वामा=स्त्री । अभिरामा=सुन्दर । अवसन=नग्न ।

अर्थ—दूर गाँव में रहने वाली कोई सुन्दर स्त्री अपनी मन्द गति से आये और श्यामा नायिका नग्न होकर जल में उतरे तथा उसकी सुन्दरतर हृदय की शोभा मेरे मन पर अंकित हो जाये ।

विधवा

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९१६ ई० में हुई थी । यह कविता छायावादी युग की प्रतिनिधि रचना है । इसमें कवि के मानस ने अत्यन्त करुणामय विधवा के जीवन को वर्णन की मार्मिकता प्रदान की है । उसका जीवन कितना दिव्य और पवित्र है, शान्ति उसके जीवन का मूल है, किन्तु इतना होने पर भी वह निर्दय काल के ताण्डव की स्मृति रेखा-सी अत्यन्त क्षीण लगती है । सुश्री महादेवी के शब्दों में—

सामाजिक आधार पर वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी तपःपूत को जो चित्र है, यह अपनी दिव्य अलौकिकता में अकेला है । सामाजिक प्राणियों के विचार की संकीर्णता तथा विधवा की करुणा को ही दृष्टि में रखकर इस कविता की रचना है ।

वह इष्टदेव……विधवा है।

शब्दार्थ—इष्टदेव=आराध्य (जिसकी आराधना की जाय) क्रूर-काल-ताण्डव=क्रूर काल के समान शंकर का एक नृत्य।

अर्थ—कवि विधवा की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कहता है कि वह इष्टदेव के अर्थात् अपने आराध्य के मन्दिर की भाँति और दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन पड़ी है और ऐसी दृष्टिगोचर हो रही है कि मानो वह क्रूर काल की प्रलयंकारी एक स्मृति की रेखा हो और टूटे तरु की छूटी हुई लता सी दीन-हीन लता हो। दलित भारत विधवा के चित्र को टूटे तरु से छूटी लता सी दीन कहकर कवि ने उसकी निर्बलता को व्यक्त किया है। ऐसी दलित भारत में विधवा की कितनी दयनीय स्थिति है।

विशेष—तरु की टूटी शाखा के समान विधवा का अनेकों उपमानों द्वारा कवि मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित करता है। इष्टदेव की पूजा से दीप पूजा से दीप शिखा के अनेकों उपमानों द्वारा कवि ने अपने कलात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उपमा अलंकार ने कविता में एक विशेष छटा उत्पन्न कर दी है।

षट ऋतुओं का………अथवा है।

शब्दार्थ—पदसंचार=पाँव रखना। कुसुमित-कानन=खिले हुए फूलों वाले उद्यानों में कदम रखना। स्वच्छन्द विहार=स्वतन्त्रता से चिचरण करना।

अर्थ—कवि विधवा की कारुणिक दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि उसके जीवन में कभी षड्-ऋतुओं के शृंगार ने पदार्पण किया था और उसके जीवन-रूपी उद्यान में किसी ने नीरव पद संचार किया था; अर्थात् उसके जीवन को सुख साधन देने के लिए अथवा उसको अलंकृत करने के लिये कोई आया था। उसने अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार किया था, किन्तु अब सुख ऐश्वर्य के साधन दुःख की भूली हुई अलंकार-रूपक कथा के रूप में सामने आते रहते हैं।

उसके मधु सुहाग………ध्रुव तारा।

शब्दार्थ—दर्पण=सीसा। बिम्बित=चिन्हित।

अर्थ—कवि विधवा को सम्बोधित करते हुये कहता है कि अपने सुन्दर सुहाग रूपी दर्पण में अपने प्रियतम रूपी धन को वह केवल एक ही बार देख पाई थी। वही उसके निर्बल कर-कमलों का एकमात्र सहारा था। उसके

जीवन का प्यारा ध्रुव तारे की भांति अटल था। उसने उसे ही अनेक जीवन का लक्ष्य माना था।

दूर हुआ ···· मधुकर की पाँखें।

शब्दार्थ—पुलकित=प्रसन्न होना। मन मधुकर=मन रूपी भ्रमर।

अर्थ—आज इसके जीवन का प्रियतम रूपी धन दूर हो गया है। ऐसा लगता है मानो किसी अनन्त लोक से आज भी से करुणा की धारा को बहाता चला जा रहा है। आँखें करुणा के रस से पुलकायमान हो रही हैं। उसकी दयनीय दशा को देखकर मन रूपी मधुकर की पंखुड़ियाँ भीग उठी हैं।

मृदु रसावेश ········ चितवन को।

शब्दार्थ रसादेश=रस में बहाना। पुलिन=किनारा। अंचल=पल्ला दुपट्टा, किनारा।

अर्थ कवि विधवा की मार्मिक स्थिति का वर्णन करता हुआ पुनः कहता है कि उसके कोमल स्वर के प्रवाह में जो गुंजार गुंजायमान हुई है, उसमें केवल हाहाकार ही व्याप्त था। उस करुण की सरिता के मलीन किनारे पर तुम मानो छोटी सी एक कुटी का मौन बढ़ा रही हो। वह अस्त-व्यस्त है। उसका अंचल निरन्तर आँसुओं की वर्षा से भीग गया है। उसके अधर दुःख से सूख गए हैं और दृष्टि भयभीत हो रही है अर्थात् दृष्टि मंद पड़ गई है।

यह दुनिया की ·······समीर।

शब्दार्थ—अस्फुट=अव्यक्त। निश्चिल=स्थिर। समीर=वायु।

अर्थ—कवि विधवा की आन्तरिक स्थिति का वर्णन करता हुआ कहता है कि वह दुनिया की नजरों से स्वयं येन-केन प्रकारेण बचा करके अपने स्वत्व का संरक्षण करके अव्यक्त स्वर में रोती है। उसकी करुणा के क्रन्दन का कोई नहीं सुनता। केवल यह आकाश या उसमें विवरण करने वाली वायु उसके दुःख को सुनने में समर्थ है।

सरिता की ···· कठोर हैं।

अर्थ—वैधव्य के पहाड़ टूट जाने पर उस नारी की कितनी शोचनीय दशा है कि कोई भी उसको सहारा देने वाला नहीं है। वह सरिता भी उसको अपनी करुण लहरों का सहारा देने में असमर्थ है। कोई भी इस चराचर जगत् में उसके भार को वहन करने वाला नहीं है। कितना भारी दुःख है। इस भारी

दुःख का कहीं किनारा भी तो है। हे देव ! यह विधवा पर कैसा घोर कठोर अत्याचार है।

क्या कभी पोंछे ······ उसी से सर गया।

शब्दार्थ—पल्लव=पत्ते।

अर्थ मानव हृदय में मानवता के स्थापन-हेतु कवि कह रहा है मानव समाज क्या कभी तुमने किसी के प्रवाहित होने वाले आँसुओं को पोंछा है अथवा सबको व्याकुल ही करते रहे। पत्तों के ऊपर पड़ी ओस कण की भाँति उसके आँसू भी झड़ गये, किन्तु उन आँसुओं का मूल्य ही क्या जिसको देखने वाला कोई नहीं। वह तो उस वन्य कुसुम की भाँति है जो खिला भी और झड़ भी गया। सम्पूर्ण भारत के आंसुओं को अथवा उसकी पीड़ा को उस दीन-हीन नारी में कवि देख रहा है।

तुलना—कुसुमस्तवकस्यैव द्वे वृत्तिर्मनस्विना।
मूर्ध्नि सर्वतोकस्य वनं विशीर्णयते वनेऽथवा॥

अध्यात्म फल

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९१८ में हुई थी इस कविता में जीवन की विषमताओं का संकेत देते हुए कवि ने बतलाया है कि जीवन में अनेक प्रकार के कटु अनुभवों का स्वाद लेना पड़ता है, किन्तु जीवन का वास्तविक आनन्द उसे ही मिलता है जो साहस के साथ उनसंघर्षों का सामना करता है।

जब कड़ी छाया ······ यहाँ।

शब्दार्थ—मुक्ति=छुटकारा ; जीवन की विषमताओं से छुटकारा। युक्ति =उपाय। चाव=उत्साह।

अर्थ—कवि जीवन की विषमताओं की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि जब जीवन की कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं तो दिल हिल गया, किन्तु मैं यहाँ पर आह भी न भर सका और जब मुझे उन विषमताओं से छुटकारा पाने का उपाय मिल गया तो मैं उस भाव से प्रसन्न हो गया जो यहाँ पर छाया हुआ था।

खेत में ······ सम्पदा।

शब्दार्थ— लता=बेल। भाती सम्पदा=भविष्य का वैभव।

अर्थ—मेरे मन रूपी खेत में भाव की जड़ गड़ गयी और उसे हमेशा धैर्य ने दुःख रूपी जल से सींचा। उससे उत्पन्न होने वाली सफलता की वेल आशा से भरी हुई थी जिस पर फूल और भविष्य के वैभव झूलते थे।

अलंकार—रूपक।

दीन का·······अंग का।

शब्दार्थ—दीन=दुखी। रंग=आनन्द। सुख संघ=सुख समूह।

अर्थ—दुःखी के लिए तो यह समय ही नहीं है जो सुख के समूह के आनन्द को भंग करता है और जो भेद से राज के सुख-साज से पूर्ण अंग का छेद कर खून पीता है।

काल की·····अकूल में।

शब्दार्थ—हूलें=कसक - मूल=कांटें। प्राण=रक्षा। अकूल=अपार। सिन्धु=सागर।

अर्थ—समय की गति से वे सब फूल मुरझा गये और दुःख से उत्पन्न कसक के काँटे शेष रहे। इन काँटों से हमें बल का फल मिला। हे प्राण उसी बल ने मेरी रक्षा अपार संसार सागर में की।

मिष्ट ··· एक है।

शब्दार्थ—मिष्ट=मीठा। इष्ट=चाहा हुआ। नेक=सही। मही=पृथ्वी।

अर्थ—यह फल यद्यपि मीठा तथा सुखदायक होता है, किन्तु जो लोग न तो शिष्ट होते हैं और न जिनका उद्देश्य नेक होता है इसे नहीं चाहते। और वे इसकी निन्दा से तमाम पृथ्वी को भर देते हैं किन्तु नीति रस वालों के लिए वह सरस होता है।

मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?

कविता परिचय—इस कविता में कवि ने यह वताया है कि यदि जीवन में सच्चा प्रेम मिल जाये तो उसकी सारी विषमताएँ समाप्त हो जाती हैं और व्यक्ति फिर नवीन उत्साह लेकर अपने जीवन पथ पर अग्रसर हो जाता है।

मुझे स्नेह ····· न सकेगा ?

शब्दार्थ—स्नेह=प्रेम। स्तब्ध=सूना। दग्ध=जला हुआ। मरु=जीवन रूपी रेगिस्तान। करुणाकर=दया के सागर।

अर्थ—हे दया के सागर ! क्या मुझे प्रेम नहीं मिल सकेगा ? अर्थात् क्या मैं प्रेम पाने से वंचित ही रहूंगा ? क्या मेरे इस सूने और जले हुए जीवन रूपी रेगिस्तान का वृक्ष कभी पल्लवित न हो सकेगा ? अर्थात् क्या कभी मेरे जीवन में सुख नहीं आयेगा ?

जग के ·······न सकेगा ?

शब्दार्थ—दूषित=दोषों से भरे हुए। पुलक-स्पन्द=पुलकनों की धड़कन। कृपा-समीकरण=कृपा की वायु।

अर्थ—संसार के दोषों से भरे हुए बीज को नष्ट करके अर्थात् संसार के अपवादों को छोड़कर यह जीवन पुष्प पुलकनों की धड़कनों से भर कर स्पष्ट रूप से खिल गया है। क्या यह हृदय कृपा की वायु के चलने पर हिल न सकेगा ? अर्थात् क्या यह गतिमान न होगा ?

अलंकार—रूपक।

मेरे दुःख········न सकेगा।

शब्दार्थ—स्पर्श=छूना। महाभार=भारी बोझा।

अर्थ—मेरे जीवन में कष्टों का इतना अधिक बोझा है कि यह उसके कारण झुक गया है, और इसीलिए मेरा हर चरण रुक गया है, अथात् मैं आगे बढ़ नहीं पा रहा हूँ। क्या तुम्हारा स्पर्श मिलने पर यह भारी बोझा कम नहीं हो जायेगा ? अर्थात् यदि तुम्हारा स्पर्श मिल जाये तो मेरे जीवन का बोझा हल्का हो जाये और मेरे रुके हुए चरण फिर गतिशील हो जायें।

वसन बासन्ती लेगी

कविता-परिचय—इस कविता में प्रकृति का वर्णन किया गया है, किन्तु प्रकृति को एक प्रकार से पृष्ठ भूमि के रूप में ग्रहण किया है। एक आलोचक के शब्दों में—

पूरा रूपक पार्वती पर घटता है और 'कुमार सम्भव' के हिमालय वर्णन की विराट्ता के स्थान पर चित्र की ऋजुता इसमें उल्लेखनीय है। कालिदास की पार्वती, प्रकृति के उपकरणों से सम्पन्न हुई है और निराला का प्रकृति-वर्णन मानवीय व्यापारों के संयोग से। रूखी डाल का वसन्त-तप, पार्वती का शंकर-तप। समीर की माला है, वरेण्य बसन्त है और फल-प्राप्ति पुष्पदल है। यह रूखी डाल का तप, तपःपूत पवित्रता के साथ मौलिक उद्भावना का भी

परिणाम है।'

सखी री ......बासन्ती लेगी।

शब्दार्थ—वमन=वस्त्र। वासन्ती=माधवी। हीरक-सी=हीरे जैसी। समीरमाला=वायु रूपी माला। शैलसुता=पार्वती। अपर्ण-अशना=पत्तों को भी न खाने वाली।

अर्थ—डाली पर पार्वती का आरोप करते हुए कवि कहता है कि यह सूखी डाल वसन्त ऋतु से वस्त्र ग्रहण करेगी। देखो यह हीरों जैसी वायु रूपी माला लेकर जाप करती हुई अपलक नेत्रों से तप करती हुई पत्तों को भी न खाने वाली पार्वती की भाँति पत्तों के वस्त्र ग्रहण करेगी।

अलंकार –रूपक।

हार गले ...... वासन्ती लेगी।

शब्दार्थ -ऋतुपति=बसन्त ऋतु। सुकृत=पुण्य। मरहर=महादेव।

अर्थ—इस रूखी डाल को बसन्त ऋतु फूलों का हार पहना कर इसके हृदय रूपी तालाब के सारे पुण्य रूपी किनारों से प्रेम रूपी डाल से भरकर सरस बना देगा। और यह वसन्त रूपी महादेव को पति रूप में ग्रहण करेगी। यह बासन्ती वस्त्र पहनेगी।

अलंकार—रूपक।

मधुव्रत ......बासन्ती लेगी।

शब्दार्थ—रत=लगी हुई। स्वाद-तोप-दल=स्वाद और सन्तोष रूपी कलियाँ। गरलामृत=विष और अमृत। आशुतोष-बल=शीघ्र सन्तोष प्राप्त करने की शक्ति। नेगी=नेग पाने वाला।

अर्थ—मधुव्रत में लगी हुई बधू को यह मधुर फल प्रदान करेगी और संसार को स्वाद और संतोष रूपी कलियाँ देगी तथा गरल को अमृत के समान मानने वाले शिव को शीघ्र सन्तोष का वल देगी और तमाम संसार को उसका नेग देगी यह वासन्ती वस्त्र ग्रहण करेगी।

वन-बेला

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२७ ई० में हुई थी। इस कविता का परिचय श्री वर्मा ने इन शब्दों में दिया है—

वन-वेला का व्यंग्य मध्यमवर्गीय वादी नारेबाजी पर है। यह व्यंग्य उन राजपुत्रों पर है जो अपनी राजपु से विद्या खरीदते हैं, उन लक्षपतियों पर है जो भारत के विषय में शून्य ज्ञान रहकर भी राजनीति और साहित्य में अपना अधिकार-दम्भ बताते हैं, उस पत्रिकारिता पर है, जो पूँजी पर आश्रित है, उन साम्यवादी नेताओं पर है जो रूस को पिता गुरु मानकर भारत की अवहेलना कर जाते है—कविता की पूरी अन्विति (वेला का कथन-चरम सीमा) इस जीवन के मेले की वाह्य-चमक के प्रति तिरस्कार दर्शाती है। वन में कौड़ी के मोल बिकने वाली वेला की समता भी विश्व की कोई वस्तु नहीं कर सकती और अपनी कविता के प्रति विश्वास के साथ कवि अपनी साहित्यिक विजय को अनुभव करता है। मन के उतार-चढ़ाव के अनुरूप ही कविता की व्यक्त शैली में भिन्नता आती गई है। कवि मन में विचार अनेक के पूर्वतर उनकी परिमाल-कालीन कला का रूप है, जहां पृथ्वी और सूर्य का प्रणय चलता है. मध्य में शैली यथार्थवादी तीक्ष्ण चोट करने वाली और व्यंग्य प्रधान है, जो आक्रोश को व्यक्त करती है। अन्त में एक प्रशान्त मनोदशा को व्यक्त करने वाली गम्भीर और दार्शनिक कवि की सी, यह उनके विजय के गर्व की अनुभूति भी व्यक्त करती है।'

वर्ष·········सुकृत मान।

शब्दार्थ—उरोज=स्तन। मंजु=सुन्दर। निरूपम=जिसकी कोई बराबरी न कर सके। पिक-भ्रमर-गुंज=कोयल और भौंरों की गूँज। प्रणय=प्रेम। प्रखर=तेज। उर्जित=शक्तिशाली। भास्वर=दिव्य। रसा=पृथ्वी। दिनकर=सूर्य। क्षोभ=क्रोध। सुकृत=भाग्यशाली।

अर्थ—वर्ष का प्रथम चरण था। पृथ्वी के उरोज उठे हुए थे, अर्थात् पृथ्वी पर सर्वत्र हरियाली फैली हुई थी और सुन्दर तथा अद्वितीय पर्वत शोभा पा रहे थे अथवा मंजुल और अद्वितीय पर्वत पृथ्वी के उरोजों के समान उठे हुए थे। नवीन पत्तों से बँधे हुए कोयल और भौंरे गूंज रहे थे जो अपने जीवन की प्राणवत्ता से प्रेम के गीत रच रहे थे, जिसे सुनकर तपन का यौवन अचानक प्रखर से प्रखरतर हो रहा था। और शक्तिशाली तथा चमकता हुआ सूर्य पुलकित होकर अपने सैंकड़ों व्याकुल किरण रूपी हाथों से गोद में भरकर गुस्से से, उत्कण्ठा से, प्रेम के नैन की समता से पृथ्वी को चूम रहा था जो अपना सर्वस्व दान देकर प्रिया के भाग्यशाली मान को पूर्णरूप से ले रहा था।

दाब मैं........जड़ चेतन।

शब्दार्थ – दाव=प्रभूत, अधिकता। भीष्म=भयंकर। प्रस्वेद=पसीना।

अर्थ – गर्मी की अधिकता के कारण भयंकर से भयंकर ताप बढ़ रहा था जिसके कारण शरीर में पसीने और कंपकपी आती थी। ज्यों-ज्यों आकाश और पृथ्वी दोनों के हृदय पर लू चलती थी, त्यों-त्यों पृथ्वी पर गर्मी की अधिकता के कारण दुःख और पृथ्वी के गहरे विश्वास रूपी गर्मी के झोंके बढ़ रहे थे जो जड़ और चेतन सृष्टि को निर्जीव सा बना रहे थे।

अलंकार—रूपक।

यह सान्ध्य........देश।

शब्दार्थ—सान्ध्य=संध्या का। अम्बर=आकाश। पीताम=पीले रंग का। निरभ्र=बादल रहित। दिगन्त-प्रसर=दिशा में फैला हुआ।

अर्थ—यह संध्या का समय था। आकाश का पीलापन और अग्नि के समान लाल रंग प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रहा था जो किसी अजेय व्यक्ति की भाँति धूम रहित और बादल रहित बनकर सारी दिशाओं में फैला हुआ था तथा सारे विश्व को जला कर अकेला बचा हुआ था। उड़ती हुई धूल में सारा देश छिप रहा था।

मैं मन्द-गमन........स्वर भर।

शब्दाथ—धर्माक्त=धर्म से युक्त। पार्श्व-दर्शन=समीप का दृश्य। मर्माहत=दुःखपूर्ण।

अर्थ—मैं मन्द गति से चलता हुआ, धर्म युक्त होकर तथा विरक्त भाव से पास दृश्य से आंखें हटा कर अपने मन में यह विचार करता हुआ नदी-तट पर चल रहा था कि मेरा जीवन व्यर्थ हो गया और मैं जीवन के रण में हार गया। मैंने यह कभी भी नहीं सोचा था कि मेरे भविष्य की रचना पर ही सब लोग चल रहे थे। इसी तरह बहुत कुछ बातें मेरे मन में आईं और मैं अपने इच्छित स्थान पर पहुंच कर, एकान्त देखकर तथा दुःखपूर्ण स्वर भर कर बैठ गया।

फिर लगा........चित्र।

शब्दार्थ—यथासूत्र=पहले विचारों के प्रसंग में। बिधा=विद्वान्। अनुचर=नौकर। उद्गत कर=उद्यत हाथों से।

अर्थ – पहले विचारों के प्रसंग में सोचने लगा कि यदि मैं भी राजपुत्र होता तो भले ही मैं सदा बुरे कार्य करता रहता तो भी वह जितने विद्वान् हैं मेरे नौकर होते और मेरी प्रसन्नता के लिए वे अपना सिर विनम्रता से झुकाए रखते और उद्यत हाथों से, मैं जो कुछ देता वे उससे अधिक लिखते। जितने भी पेपर होते थे वे सब मिलकर मेरी अमर कीर्ति का गुणगान करते । मेरा जीवन चरित्र लिखकर उस पर अग्रलेख लिखते अथवा मेरा विशाल चित्र छापते ।

इतना भी ······ पिता पास ।

शब्दार्थ—लक्षपति=लखपति । अविचलित=एकाग्र मन से । उग्रतर= प्रबलतर । सुनिर्धार=अच्छी प्रकार सोच-विचार कर । गर्दभ-स्वर=गधे के स्वर को भी छिपा देने वाला स्वर । त्वरित=शीघ्र । सहस्र-षट्=छः हजार ।

अर्थ—यदि मैं राजपुत्र न होता तो किसी लखपति का पुत्र ही होता। मैं नव शिक्षा पाने के लिए विदेश जाता । मेरे पिता देश की नीति के पूर्ण पण्डित माने जाते और वे धन पर एकाधिकार रखते हुए भी अग्रसर साम्यवादी होते तथा साम्यवाद का प्रचार करते । तब उन्हें अच्छी तरह सोच विचार कर जनता राष्ट्रपति चुनती और कुछ लोग उन पर भद्दे राष्ट्रीय गीत रच कर अपने गधे से भी अधिक कर्कश स्वर से गा-गाकर बेचते । हिन्दी सम्मेलन भी इस दिशा में पीछे न रहता और उन गीतों को अमर साहित्य के रूप में इस डर से कि कहीं वे खो न जाएँ, सम्भाल कर रखता, मैं शीघ्र ही समुद्र पार तार के द्वारा यह खबर पाता और लार्ड के पुत्रों को दावत देता और उनके साथ विहार करता । इस तरह प्रत्येक मास केवल छः हजार रुपये खर्च करके और अहनी पढ़ाई समाप्त करके अपने योग्य पिता के पास लौट आता ।

वायुयान से ·······इतना उदार ।

शब्दार्थ— सत्वर=शीघ्र । मर्मान्तिक=भावपूर्ण । प्रान्तिक=प्रान्त का । विचक्षण=विद्वान् । अभंग=पूर्ण ।

अर्थ—में वायुयान से भारत पर अपने चरण कमल रखता हुआ घूमता । जहाँ भी मैं जाता, पत्रों के प्रतिनिधियों में हल-चल मच जाती । सभी कैमरा लेकर दौड़ते और जल्दी से अपना अभिप्राय कहते । अर्थात् फोटो खींचने की

प्रार्थना करते। मैं सभ्यता के नाते झुककर उनकी बात मान लेता और फिर कभी इधर को और कभी उधर को मुँह करके खड़ा होता तथा लगातार नीचे ऊपर देखकर बीसियों भावमुद्राएँ बनाता। तदुपरान्त मैं देश को भावपूर्ण और गूढ़ सन्देश देता जिसमें भाषा को छोड़कर और कोई भी प्रांतिक भाव नहीं होता मैं स्थिर होकर रूस के साम्यवादी विषयक सभी सिद्धान्तों को कह जाता। जो बार-बार अखबारों में छपते और जिन्हें विद्वान् लोग ही समझ पाते। तब मैं पूर्ण रूप से अपने पिता के साथ जनता की सेवा का व्रत लेता और अत्यधिक उदार बनकर तथा मंच पर खड़ा होकर साम्यवाद का प्रचार करता।

तप-तप ······ दर्शन-शर।

शब्दार्थ—रक्ताभ=लाल। दुस्तर=कठिन। सुषम=समता। सुघर=सुन्दर।

अर्थ—सांध्यकालीन नभ का मस्तक तप-तप कर लाल हो गया जिससे दिशा भी लाल हो गई। मैंने आतुरता से अपनी आँखें खोलीं और देखा कि चारों ओर से प्रेयसी के अलक से आती हुई स्निग्ध सुगन्धित की भांति तेज सुगन्धि आ रही थी मैंने तुरन्त सोचा कि मैं भी यहाँ पर अकेला आया हूं इस-लिए वहीं पर बैठ गया और मैंने अपने चारों ओर हँसती हुई उपवन बेला को देखा जो दिन भर के ताप और दु:खों को अपने जीवन में भर कर और अतल की अतुल सांस लेकर इसी प्रकार लहरा रही थी जिस प्रकार किसी परम सिद्ध व्यक्ति की साधना धर्म जीवन के कठिन दु:खों भेद कर और समता लेकर ऊपर आ गई हो अथवा जैसे कोई सुन्दर अप्सरा क्षीर सागर को पार करके निकली हो। जिसका शरीर और केश भीगे हुए हों तथा जो विश्व के चकित दृश्य के दर्शन शरों से आहत होकर कांप रही हो।

अलंकार—उदाहरण।

बोला मैं ······ करो दर्श।

शब्दार्थ—सुबातास=सुगन्धित वायु। मुहुर्मुहुः=बार-बार। अवहेलना=लापरवाही।

अर्थ - वन की वेला को देखकर मैंने कहा - हे वेला ! जिस वन में तुम गीत बन कर लिखी हुई हो वहाँ पर लोगों का आवागमन नहीं है। जब भीषण

गर्मी पड़ती है तो तुम अपने छोटे प्याले में अथाह सुशीलता भर कर यह सुगन्धि की सुरा का पान करा रही हो। मैं शर्म से नम्र हो गया तथा और भी अधिक उसके समीप चला गया। अचानक सन्ध्या-समय की सुगन्धि वायु चलने लगी। तब झुक-झुक कर, तन-तन कर, फिर झूम-झूम कर और वायु हँस कर झकोरा खाती हुई चिरपरिचित चितवन को मेरे चेहरे पर डालती हुई अपना सुन्दर मुख मरोड़ती हुई और बार-बार अपने शरीर में विमल सुगन्धि को भरती हुई बोली—कि में अपना सर्वस्व देती हूं इसलिये तुम मुझे मत छुओ। क्योंकि तुमने अपनी की स्थिति लापरवाही की है, इसलिये तुम्हारा स्पर्श अपवित्र हो गया है। अत: तुम रुको और दूर से ही मुझे देखो।

मैं रुकी ······ वनबेला।

शब्दार्थ—वन्यवह्नि=वन की आग। तन्वि = कोमलांगी। दुग्ध धवल= दूध के समान उज्ज्वल। वामालक चुम्बित=वामा के अलकों से चूवी हुई।

अर्थ— वेला की वात को सुनकर मैं उसी उज्ज्वल पथ पर रुक गया जो नवीन शिक्षा के प्रकाश की स्निग्धता से दिखाई गई थी। मैंने प्रार्थना की कि हे वन की अग्नि की नवीन कोमलांगी जिस प्रकार तुम्हारी उज्ज्वल पंखुड़ियाँ हैं ऐसी विचार-पंखुड़ियाँ तो जो दूध के समान उज्ज्वल हों कविता में भी नहीं मिलतीं और न इस प्रकार असल स्नेह जो विश्व के प्रेमी प्रेमिकाओं के प्रति है नहीं मिलता। तुम्हारे हृदय पर हार है तुम्हारी गति सहज और मन्द है। और तुम में वामा की अलकों से चूमी हुई पुलक गन्ध है, जो काव्य में नहीं मिलती। इस प्रश्न को सुनकर वेला ने कहा कि तुमने केवल आपा खोया है और इस जीवन में खेल खेला है यह कह कर वह सिहर गई।

कुञ-कुञ्ज········ सृष्टि।

शब्दार्थ - छहर=बिखेरना। हरित=हरा। तमश्चरिता=अन्धकार में विचरण करने वाली। निरूपमिता=अद्वितीय। आलोक— अलौकिक।

अर्थ—अपने अन्तिम सुख स्वर में कोयल कूकने लगी और पपीहा प्रिया का विरह दग्ध स्वर मधुर विष बिखेर गया। हृदय में विविध भावों को पैदा करके और हरे पत्तों को हिलाती हुई वायु चलने लगी। लहरों में कम्प और उत्सुकता लेकर नदी तैरने लगी तथा रात में विचरण करने वाली आकाश की अद्वितीय ताराएँ बेला की शोभा देखने लगीं। इस विविध अलौकिक सृष्टि को देखकर सैकड़ों आँखों की दृष्टि विस्मय से परिपूर्ण हो गई।

भाव में·········सञ्चरिता ।

शब्दार्थ — अस्फुट = अस्पष्ट । पावन = पवित्र । सुहृदवर्ग = मित्र मंडली । दिग्देश = दिशायें और स्थान । उपल-प्रहार = ओलों की चोट । शुचि = शुद्ध ।

अर्थ—वेला के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मैं भाव विभोर हो गया । तब वह हँससी हुई मुझ से अस्पष्ट स्वर में कहने लगी—कि ये जीवन बाहरी सुन्दर वस्तुओं को लेकर जितना चमकता है उतनी ही आत्मा की पवित्र निधि पत्थर बनती जाती है, जो कौड़ी के मोल बिकती है । इस निर्जन वन में चाहे जितना खोजो इस प्रकार की आत्मा नहीं मिल सकती और नजरों में सम्भाव रखने वाले व्यक्ति नहीं रहते । नगरों में मान अपमान का प्रश्न है इसलिए वहां पर एक बड़ा है । शेप छोटे तथा मूर्ख हैं । किन्तु जहाँ पर ज्ञान होता है वहाँ पर बड़े भी छोटे होते हैं और असमान भी समान होते हैं । वहाँ पर सब मित्र मण्डली होती है जिनकी आंखों की ज्योति से दिशा और देश स्वर्ग बन जाते हैं । यह सुनकर मैंने कहा कि तुम्हारा कथन सत्य और सुन्दर है । तुम तब भी अपनी डाली पर प्रसन्नता से नाचती रहती हो जब तुम्हारे ऊपर ओले का तीक्ष्ण आघात होता है । अतः केवल तुम अपनी शुद्ध शोभा को संचरित करती हुई मेरे हृदय में और मेरी कविता में बसी रहो ।

फिर उषाकाल·········वायु वही ।

शब्दार्थ — उषःकाल = प्रभात । निरस्वन = चुपचाप ।

अर्थ - फिर प्रभात में मैं टहलता हुआ गया और देखा कि वेला की डाल को झुकाकर कोई ब्राह्मण फूल तोड़ रहा था । वेला ने कहा कि मैं प्रिय के चरणों पर अपने जीवन को अर्पण करने जा रही हूं । उसकी इस अवस्था को प्रभात की वही वायु चुपचाप देखती रही ।

भिक्षुक

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ ई० में हुई थी । इसमें भिक्षुक एवं निर्धन मनुष्य के प्रति सहज ही करुणामय भावनाओं का स्रोत फूट पड़ता है । समाज में निष्ठुरता से पला अकिंचन मानव पशु से भी अभागा गया है । भिक्षुक के माध्यम से कवि निर्धन वर्ग को प्रस्तुत करता है । उसके बच्चों की दयनीय दशा को देखकर भी समाज के पूंजीपति तनिक भी नहीं

पिचलते, किन्तु कवि उनमें वीर अभिमन्यु की कल्पना करता है और इस कल्पना की पूर्ति के लिए वह समाज के समस्त गरल को पान करने के लिए तैयार है ।

वह आता·······पथ पर आता ।

अर्थ—कवि भिखारी की दीन दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि वह अत्यन्त दु:खी होता हुआ और पछताता हुआ पथ पर आता है । वह इतना दुर्बल है कि उसके पेट पीठ मिलकर एक हो गए हैं । वह लाठी के सहारे चल रहा है और मुट्ठी भर दाने के लिए तथा अपनी भूख मिटाने के लिए वह अपनी फटी पुरानी झोली का मुँह फैलाता है और अत्यन्त दु:खी होता हुआ और पछताता हुआ पथ पर आता है ।

साथ दो बच्चे········ अड़े हुए ।

अर्थ—उस भिखारी के साथ दो बच्चे भी हैं, जो भीख के लिए सदा हाथ फैलाते रहते हैं और बाएँ हाथ से भूख के कारण दर्द युक्त पेट को मलते हुए चलते हैं तथा दाहिना हाथ दया दृष्टि करके भीख देने वाले लोगों की ओर बढ़ाते रहते हैं । जब उनके होठ भूख से सूख जाते हैं तब भी दानी लोगों से उनको कुछ नहीं मिलता और वे आँसुओं का घूँट पीकर ही रह जाते हैं । कभी वे सड़क पर खड़े हुए झूठी पत्तलों को चाटते है । जिन्हें झपटने के लिए कुत्ते भी अड़े रहते हैं ।

ठहरो अहो ······· खींच लूंगा ।

अर्थ—भिखारी बच्चों की दीन दशा से द्रवित होकर कवि कहता है कि हे बच्चो; तुम ठहरो, मेरे हृदय में जो अमृत है मैं उससे तुम्हें सींच दूँगा और तुम्हारे दु:ख को में अपने हृदय में दे लूँगा ताकि तुम अभिमन्यु जैसे वीर और बहादुर बन सको ।

तुम और मैं

कविता परिचय—यह कविता दर्शन-प्रधान है । इसमें कवि की चेतना ऊर्ध्व-स्तर की है और ब्रह्म तथा जीव के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति काव्यात्मक है । निराला अद्वैतवादी दार्शनिक हैं । यह कविता इनके इसी रूप की अधिक काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है । भाव, कल्पना और अलंकार के साथ बुद्धि चिन्तन का ऐसा समन्वय काव्य में ही देखने को मिलता है ।

तुम तुंग हिमालय ······भ्रान्ति ।

शब्दार्थ—तुंग=ऊँची । शृंग=चोटी । सुर-सरिता=गंगा । मतवाली मस्त करने वाली । भ्रान्ति=भटकाने वाली दशा ।

अर्थ—हे देव ! यदि हिमालय के ऊँचे शिखर हो तो मैं उसी से निकल कर बहने वाली गंगा हूँ । अगर तुम किसी निर्मल हृदय के भाव हो तो मैं उन्हीं को व्यक्त करने वाली भाषा हूँ । तुम यदि प्रेम हो तो मैं उससे प्राप्त होने वाली शान्ति हूं । तुम यदि मद पीकर चढ़े अन्धकार (नशे) हो तो मैं उसकी खुमारी हूं ।

तुम दिनकर के······ समृद्धि ।

शब्दार्थ दिनकर=सूर्य । सरसिज=कमल । रामानुग=अनुराग युक्त । शुचिता=पवित्रता ।

अर्थ—कवि इसमें आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध बताता है । तुम सूर्य के कठोर रश्मि पुंज हो तो मैं उसके कारण होने वाले कमल की मुस्कान या सुगन्ध विकास हूं । कमल का धर्म मुस्कान नहीं है । अतः औपचारिक प्रयोग है । इससे स्निग्धता अपेक्षित है । यदि तुम वियुक्त हो तो मैं तुम्हारा पूर्व परिचय हूँ । यहाँ पर कई वर्ष का विरह समाप्त होने पर पूर्व परिचय की स्मृति विशेष मर्मस्पर्शिनी होने से वर्णित है । तुम योग साधना हो और मैं उससे तृप्त होने वाली अणिमादि सिद्धि या शक्ति की प्राप्ति हूं । तुम यदि प्रेमानुसारी अर्थात् प्रेम के पश्चात् किया जाने वाला सच्चा तप हो तो मैं पवित्रता की आडम्बरहीन विभूति हूँ । प्रेम होने पर उसके लिए जो साधना की जाती है वह यदि झूठी न हो तो तपस्या होती है । उस तप से जो प्रेम में पवित्रता उत्पन्न होती है वह महान् होती है । इस प्रकार इस अवतरण में कार्य कारण भाव की अभिव्यक्ति है कि परब्रह्म और परमात्मा परस्पर कारण और कार्य रूप है ।

तुम मृदु मानस के भाव ······मन मोहिनी माया ।

शब्दार्थ—नन्दन वन=स्वर्ग का उद्यान । घन=घना । विटप=वृक्ष ।

अर्थ— तुम यदि किसी कोमल मन के भाव हो तो मैं उन्हें व्यक्त करने वाली भाषा हूँ । तुम नन्दन वन के कल्प वृक्ष हो तो मैं सुख शीतलता प्रदान करने वाली उसकी शाखा हूं । तुम प्राण हो तो मैं उसकी काया हूँ । तुम यदि सत्-चित् आनन्द (ब्रह्म) हो तो मैं उसकी मोहिनी माया हूँ ।

तुम प्रेममयी के कण्ठहार ...... अधरों की वेणु ।

शब्दार्थ—वेणी=चोटी । पल्लव=पत्ता । झंकृतकर=वजकर ।

अर्थ—तुम यदि किसी सुन्दरी के कण्ठहार हो तो मैं भी उसकी काल नागिनी के समान वेणी (चोटी) हूँ। दोनों शृंगार के समान हैं । यदि तुम कोमल कर (रमणी के हाथ) से झंकृत (वजाई गई) सितार हो तो मैं उसी निकलने वाली विरहाकुल झंकार हूं। तुम मार्ग हो तो मैं उसकी रेणु (धूलि) हूँ और तुम यदि किसी राधा के मनमोहन हो तो मैं उसके होठों पर रहने वाली मुरली हूं ।

तुम पथिक दूर के श्रान्त ...... मधुरिमा ।

शब्दार्थ—प्रस्तर=कठिन । निशीथ=रात्रि । मधुरिमा=मिठास । बाल इन्दु=द्वितीया का चाँद ।

अर्थ यदि तुम दूर पथ से आने वाले थके हुए राही तो मैं तुम्हारी आशा हूँ। आशाओं के सहारे ही राह पार की जा सकती है। यदि तुम भयंकर भव-सागर हो तो मैं उससे पार जाने की इच्छा हूँ। तुम आकाश हो तो मैं उसमें व्याप्त नीलिमा हूँ। तुम शरतकालीन बच्चों जैसे सुघर या नवोदित चन्द्रमा हो तो मैं रात्रि की मिठास हूँ।

तुम गन्ध कुसुम ...... अचला भक्ति ।

शब्दार्थ—पराग=फूलों की धूल । मलय-समीर=मलय पर्वत से प्रवाहित होने वाली वायु ।

अर्थ—तुम सुगन्धित फूलों की अति सुकुमार धूल हो तो मैं मन्द गति से चलने वाली मलय पर्वत की वायु हूं। वायु धूलि को लेकर उड़ा ले जाती है। तुम स्वतन्त्रता से कार्य करने वाले स्वतन्त्र पुरुष नामक तत्व हो, तो मैं प्रेम की शृंखला-स्वरूप प्रेम का बन्धन डालने वाली कविता हूं । तुम शिव हो तो मैं शक्ति या दुर्गा हूं। तुम मान बढ़ाने वाले श्री रामचन्द्र हो तो मैं दृढ़ भक्ति वाली पतिव्रता सीता हूं। भाव यह है कि प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध में यह समझ लेना चाहिए कि सांख्य दर्शन में ईश्वर नहीं माना जाता। पुरुष वहाँ प्रधान तत्व है उसकी माया ही प्रकृति है। सांसारिक वन्धनों का कारण उसकी प्रकृति मानी जाती है। सांख्य दर्शन में प्रकृति ही सृष्टि का व्यापार चलाती है। पुरुष इन झंझटों से मुक्त रहता है इसलिए इस पद में मुक्त विशेषण इस कविता के साथ लगाया है ।

तुम आशा के मधुमास.........तूलिका रचना।

शब्दार्थ—पंचशरहस्त=हाथ में पाँच बाणों वाला, कामदेव। दिगम्बना =वस्त्रहीन। तड़ित-तूलिका=विजली रूपी कूची से अंकित रचना। शुभ्र= सफेद।

अर्थ—तुम यदि आशामय वसन्त हो तो मैं उसी में कूकने वाली कोयल हूं। तुम यदि कामदेव हो तो मैं तुम्हारी शरविद्ध मुग्धा नायिका हूं। यदि तुम परिधान हो तो मैं नग्ना हूं। मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। तुम यदि आकाश पर यह चित्रांकित करने वाले चित्रकार हो तो मैं तुम्हारे हाथों की बिजली की तूलिका हूं।

अलंकार—रूपक।

तुम रण ताण्डव.........व्याप्ति।

शब्दार्थ—ताण्डव=शंकर का प्रलयंकारी नृत्य। उन्माद=मस्ती। नुपुर ध्वनि=पाजेब का स्वर। नादवेद=शब्दब्रह्म। कुन्द=चमेली। इन्दु= चन्द्रमा अरविन्द=कमल।

अर्थ—तुम यदि रण में योद्धाओं के उन्माद में ताण्डव नृत्य हो तो मैं किसी लस्य कराती हुई युवती की कोमल पायल, ध्वनि हूं और यदि तुम वेदों का तत्व ओंकार हो तो में आदि कवि (स्वयम्भू) हूं। यदि तुम यश हो तो मैं उसकी प्राप्ति हूँ। तुम यदि शुभ्र चन्द्रवत चमक हो तो मैं उसकी निर्मल व्याप्ति हूँ।

आवेदन

कविता परिचय—इस कविता में कवि ने आवेदन किया है कि उसके गीतों में फिर से गति आ जाये, उसके गीत फिर से नवीन झंकार, नई बहार तथा नई करुणा लेकर मुखरित हो जायें।

फिर......... झंकार दो।

शब्दार्थ—अंक=गोद।

अर्थ—कवि आवेदन करता हुआ कहता है कि तुम फिर से अपना सितार सँवार लो और फिर से ठाट बाँध कर अपनी गोद में झंकार दो।

शब्द के.........बहार हो।

शब्दार्थ—कलि-दल=कलियों की पंखुड़ियां। मीड़-भ्रमरावाली=मीड़ रूप भौंरों का समूह। गीत-परिमल=गीत रूपी सुगन्धि।

अर्थ—शब्द रूपी कलियों की पंखुड़ियाँ खुल जायें और गति रूपी पवन पर थर-थर कांपने लगे, मीड़ रूपी भौंरों का समूह उड़ने लगे तथा गीत रूपी-निर्मल सुगन्धि बहने लगे। फिर बहार ही बहार हो।

अलंकार—रूपक।

स्वप्न ज्यों·····उपहार हो।

शब्दार्थ—तरी=नौका। कमल-बलयित=कमल से घिरा हुआ अथवा भरा हुआ। उपहार=भेंट।

अर्थ—यह नौका, यह नदी, यह तट, यह आकाश और यह समुदाय स्वप्न के समान सज जाये और कमल से भरा हुआ सरल आँखों के पानी के हार की भेंट हों।

अलंकार—उदाहरण।

हताश

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ ई० में हुई थी। इसमें कवि ने अपने जीवन के प्रति अत्यन्त घोर निराशा प्रकट की है।

जीवन-चिरकालिक ······ अभिनन्दन।

शब्दार्थ—क्रन्दन=रोना। भोर=प्रभात। वन्दन=वन्दना। अभिनंदन=स्वागत।

अर्थ—कवि अपनी जीवन के प्रति निराशा को व्यक्त करता हुआ कहता है कि वह जीवन तो चिरकाल से ही एक रोना है, अर्थात् प्रारम्भ से ही जीवन दुःखों से भरा हुआ है। मेरा हृदय वज्र के समान कठोर है, चाहे इसे तुम जो भर कर तथा अपनी पूर्ण शक्ति से झकझोर दो, किन्तु इस पर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा। मेरे दुःख के गहरे अन्धकार से आच्छन्न रात कभी प्रभात न ही अर्थात् मेरा जीवन सदैव दुःखों से घिरा हुआ रहे। फिर इतनी उज्ज्वलता, इतनी वन्दना और इतने स्वागत की आशा करना ही व्यर्थ है।

हो मेरी ······ स्पन्दन।

शब्दार्थ—अन्तर्धान=छिपा हुआ। जर्जर=टूटा हुआ। स्यन्दन=रथ।

अर्थ—हताश कवि कहता है कि मेरी प्रार्थना विफल हो; मेरे हृदय के जितने भी कमल के समूह हैं, वे सब मुरझा जायें और मेरा जीवन म्लान हो

जाये। सूनी सृष्टि में रहकर मेरे प्राण सृष्टि की शून्यता प्राप्त करें। मेरा संसार छिप जाये। तब भी क्या ऐसे ही अन्धकार में मेरा टूटा हुआ रथ अटक जाएगा, रुक जायेगा ? अर्थात् वह तब भी अनवरत गति से चलता रहेगा।

अलंकार—काकुवक्रोति।

स्मरण करते

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२६ ई० में हुई थी। इसमें कवि ने प्रकृति का उद्दीपन रूप ग्रहण करके उसके माध्यम से एक विरहिणी के अपार दुःख का मर्मान्तिक वर्णन किया है।

प्राणधन·······उतरते।

शब्दार्थ—ओत-प्रोत=भरा हुआ। शशि-प्रभा=चन्द्रमा की ज्योति। ज्योत्स्ना-स्रोत=चाँदनी के झरने।

अर्थ—अपनी-विरह व्यथा का वर्णन करती हुई विरहणी कहती है कि प्रियतम को यह याद करते हुए मेरी आँखों के निरन्तर आँसुओं की धारा बहती रहती है।

मेरी हृदय प्रेम रूपी जल से भरा हुआ है। सागर दूर हैं। चन्द्रमा की ज्योति रूपी आँखों से चाँदनी के झरने रूपी अश्रु निरन्तर बहते रहते हैं, बादलों की पंक्तियाँ रूपी मेरे सजन नयन हैं जो भाव रूपी उपवन में सदैव उतरती रहती है।

अलंकार—पुनरुक्ति, रूपक।

दुख भोग·····अधर भरते।

शब्दार्थ—धरा=पृथ्वी। तापकरा=तप्त किरणें।

अर्थ—दुःखों के समूह से जब पृथ्वी दिवस के वशीभूत होकर विकल हो जाती है तो उसकी तप्त किरणों से सन्तप्त होकर गगन-नयनों ये शिविर झर कर प्रेयसी के अधर भरते हैं। अलंकार रूपक अर्थात् वह बहुत दुःखी हो जाती है।

तरंगों के प्रति

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२३ ई० में हुई थी। इसमें तरंगों का मानवीकरण करके कवि ने उनके माध्यम से अपनी प्राकृति

विषयक एवं रहस्यात्मक भावनाओं को व्यक्त किया है। एक आलोचक के शब्दों में—'एक रहस्यात्मक संकेत के साथ 'तरंगों के प्रति' का सम्बोधन निराला की प्रकृति-वर्णन की उत्कृष्ट कविता है। प्रकृति में रहस्यात्मक का आभास प्रसाद की याद दिलाता है। तरंगों के आवर्त-प्रवर्त के चित्रों में जहां लघु चित्रकला है, वहीं अनन्त, असीम और विराट व्यापक भी। चित्रों और भावनाओं की संगति से ही कविता का प्रतीक-विधान सफल है और रहस्य के संकेत में दर्शन का समायोजन। तरंगों के छोटे-बड़े चित्रों से भावनाओं की व्यंजना ही अधिक हुई है।'

किस अनंत ······ मिलने जाती हो ?

शब्दार्थ—अम्वर-शैवाल=आकाश रूपी काई। ललित=सुन्दर

अर्थ—कवि लहरों को संबोधित करके कहता कि हे लहर ! किस निस्सीम सत्ता का नीला अंचल हिला-हिला कर तुम मण्डलाकार रूप में सज कर आती हो ? एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर ये किस प्रकार के गीतों को गा रही हो ? तुम्हारी क्षीण कटि पर यह आकाश रूपी हरी काई सुशोभित है। तुम स्वयं ही गीत गाती हो और स्वयं ही अपने सुन्दर हाथों से ताली बजाती हो। यह वताओ कि तुम अपने चंचल चरणों को बढ़ा कर किससे मिलने जा रही हो ?

अलंकार—रूपक।

तिमिर तैर ······· मलती हो ?

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार। भुज=मृणाल=बाँह रूपी कमल। सलिल =पानी। त्रास=दुःख। कन्थ-मन्द-गति=सुगंधित तथा मन्द-मन्द गति से चलने वाली।

अर्थ—हे लहर ! तुम अन्धकार की भाँति पानी पर तैर कर अपनी कमल रूपी बाहुओं से पानी को काटती हो और आपस में परिहास करती हो। कभी कभी शिला के गले को दवोचती हो और कभी डाँटकर—गरज कर—संसार को दुःख देती हो। कभी सुगंधित तथा मन्द-मन्द गति से चलने वाली वायु का तुम अपने उच्छ्वासों से मौन भंग कर देती हो और कभी छाया से शीतल बने हुए तट के नीचे आकर तुम उदासी देखते लगती हो। यह तो बताओ कि तुम क्यों अपने भावों को बदलती रहती हो ? क्यों कभी हँसती हो ? और क्यों कभी हाथ मलकर पछताने लगती हो ?

बांहें अगणित .... आज ?

शब्दार्थ — साज = तैयार। अभिनन्दन = स्वागत।

अर्थ हे लहर ! तुम अपनी अगणित बाँहों को बढ़ाती हुई अपना हृदय खोलकर किस प्रेमी से आलिंगन करने की तैयारी कर रही हो ? तुम अपनी भाषा में छाँट-छाँट कर शब्दों को पिरो रही हो। यह बताओ कि इस प्रकार की संयत भाषा से आज तुम किसका स्वागत करोगी ?

किसके स्वर में ...... दे जाओ।

शब्दार्थ—वक्ष स्थल = हृदय। अवसान = अन्त। दग्ध = जलती हुई। कृतियां = रचनाएँ।

अर्थ—लहरों को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि तुम अपने वर्षों के गीत को किस के स्वर में मिलाकर समाप्त कर दोगी ? आज तुम्हारा किस विशाल हृदय में अन्त होगा ? अर्थात् तुम किसके हृदय में छिप जाओगी ? दुःख है कि यदि आज तुम कहीं छिप गई तो फिर कभी भी नहीं गा पाओगी। तुम्हारे साथ कितनी ही स्मृतियाँ बहती हुई जा रही हैं और तुम्हारे हृदय में कितनी ही जलती हुई चिताओं के हाहाकार छिपे हुए हैं। नश्वरता की अनेक सजीव रचनाएँ तुममें बह रही हैं, अनेक अबलाओं की करुण पुकार तुम में छिपी हुई हैं। तुम मिलने के लिए आकुल तट की रागनियों के निर्भर गुंजार को तथा शंका से व्याकुल के कोमल मुख पर होते हुए व्याकुलता के संचार को ले जाकर असीम की सत्ता में छिपा दो और मुझे कुछ भी देकर मत जाओ अर्थात् जब तुम सपनी समस्त व्यथा को तिरोहित कर दोगी तो मुझे फिर किसी प्रकार के दुःख का अनुभव नहीं होगा।

आये घन पावस के

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२३ ई० में हुई थी। इसमें कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया है। भाषा की सहज संगीतात्मकता के भावों में उत्कर्षता एवं प्रभावशीलता प्रदान कर दी है।

अलि फिर आये ...... रस के।

शब्दार्थ —पावस के = वर्षा ऋतु के। नील सिन्धु = नीला सागर-हरित = हरा। चपला = बिजली। सौरभ = सुगन्धि।

अर्थ—हे सखी ! वर्षा ऋतु के बादल घिर आये हैं। देखो काले-काले

बादल इस प्रकार दिखाई देते हैं, जैसे नीले सागर में सुगन्धि और रस के कमल-समूह हों और उनकी हरी ज्योति चंचल बिजली के समान दिखाई दे रही है।

अलंकार—पुनरुक्ति, उपमा, रूपक, ।

द्रुम समीर ....कसके ।

शब्दार्थ—द्रुम=पेड़ । स्मरण-शर=कामदेव के बाण ।

अर्थ—हे सखी ! हवा के झिकोरे हुए पेड़ थर-थर कर रहे हैं। पानी की धाराएँ झर-झर करके झर रही हैं। कामदेव के बाण संसार के बाणों को कसकर वेध गए हैं।

हरियाली .....हँसके ।

शब्दार्थ—श्री = शोभा । लिपि = लेख ।

अर्थ—हे सखी ! हरियाली ने शोभा का हरण कर लिया है और उसने हँसकर मन्द मन्द कुसुमों में तमाम संसार के यौवन की जय का लेख लिख दिया है।

छोड़ गये....... बस के ।

शब्दार्थ—मनोरमा=सुन्दर । अक्षम=दुर्वल ।

अर्थ—हे सखी ! जब से प्रियतम घर छोड़कर गये हैं, तब से कितने ही दृश्य बीत गए हैं। मैं क्या ऐसी दुर्बल हूं, जो अपने प्रियतम को अपने वश में न कर सकी ?

फुल्ल नयन ये

कविता परिचय—इस कविता में विभिन्न शब्द योजना के द्वारा प्रफुल्ल नयनों का काव्यात्मक विवेचन किया गया है। इस विवेचन में कवि का गंभीर चिन्तन निहित है।

द्रुम-दल शोभी.......चयन ये

शब्दार्थ—द्रुम-दल शोभी—वृक्षों के समूह की शोभा बढ़ाने वाले। फुल्ल =खिले हुए प्रसन्न ।

अर्थ—ये खिले हुए तथा प्रसन्नता से भरे हुए नयन वृक्षों के समूह की शोभा बढ़ाने वाले हैं। ये जीवन के मधु की सुगन्धि के चयन हैं; अर्थात् जीवन की मादकता इनसे छलछलाती है।

रवि के पूरक······शयन ये ।

शब्दार्थ—अनंग=कामदेव । शमित शयन=शान्त निद्रा वाले ।

अर्थ—ये शान्त निद्रा वाले नयन रवि के, रंग के, कवि के कामदेव की छवि के पूरक हैं, तथा आपके व्यंग, संग के संग और अंग के अंग है।

देह भूमि ···· श्रमन ते ।

शब्दार्थ—ज्योतिर्वर्षण=ज्योति की वर्षा । उत्पल=पत्थर । हर्षण-क्षण =प्रसन्नता के क्षण । सृष्ट=बनाये हुए, रचे हुए ।

अर्थ—ये प्रफुल्ल नयन देह रूपी भूमि के सजल घनश्याम हैं, प्रेम की वायु को ज्योति की वर्षा करने वाले हैं । हृदय के पत्थर के प्रसन्नता के पल हैं और आन्दोलन के रचे हुए अन्य हैं ।

अलंकार—रूपक, उल्लेख ।

प्रेम-पाठ······प्रणयन से ।

शब्दार्थ—उभय=दोनों । विविध-विश्व-दर्शन-प्रणयन=विश्व के विविध विचित्र दर्शन के रचयिता ।

अर्थ—ये दोनों प्रफुल्ल नयन प्रेम-पाठ के दो पृष्ठ हैं जो अभी तक न खुले हों, किन्तु अब खुल गये हों । ये नित्य और अनित्य के रूप में मानों संसार के विविध दर्शनों के रचियता हैं ।

छत्रपति शिवाजी का पत्र

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ ई० में हुई थी। निराला की ऐतिहासिक कविताओं में इस कविता का महत्वपूर्ण स्थान है इसमें महाराज जयसिंह का अत्यन्त प्रभावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है । इसमें कवि का पौरुष मुखरित है और साथ ही कवि की अटूट देशभक्ति भी देश के पतन का प्रमुख कारण, निराला की दृष्टि से, आपस की फूट है। इसी फूट के कारण धार्मिक मुसलमानों की धार्मिकता का उदय और सनातन धर्म का ह्रास बताया गया है । इस कारण इस फूट के मूल में धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक पुरुषों के कृत्यों एवं आचरण पर कलंक-कालिमा लग जाने का भय दिखाकर जयसिंह को मुसलमानों का साथ छोड़कर राजपूतों में मिल जाने के लिए प्रेरित किया गया है ।

वीर······रघुनाथ के ।

शब्दार्थ—वासन्ती सुरभि=बसन्त ऋतु की सुगन्धि । दिगन्त=दिशाएँ ।

अमल अंश=पवित्र अंश।

अर्थ--महाराज शिवाजी महाराज जयसिंह को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं कि हे वीर! सरदारों में वीर! महाराज!! आप बहुत-सी जाति-रूपी क्यारियों के पत्ते और फूलों के समूह के समान हैं; अर्थात् जिस प्रकार विविध पुष्पों से क्यारियाँ शोभा पाती हैं; उसी प्रकार आपसे अनेक राजपूत उप-जातियाँ सुशोभित हैं। आप आन-बान वाले हैं और भारत रूपी उद्यान के नायक तथा रक्षक हैं। आज भारत उद्यान में उसी प्रकार नवचेतना की सुगन्धि भरते हैं जिस प्रकार वसन्त ऋतु की सुगन्धि को उसके हृदय से लेकर पवन सारी दिशाओं में भर देती है। आप सबके हृदय पर अधिकार करने वाले अत्यन्त लोकप्रिय—रघुकुल मणि राम के पवित्र अंश और वीर हो।

अलंकार—उपमा अलंकार।

किन्तु राम·········उपाय शून्य।

शब्दार्थ—गौरव-प्रलम्ब-ग्रीवा=गौरव के कारण ऊँची उठी हुई गर्दन। दुर्मद=भयानक। प्लावन=प्रलय।

अर्थ—किन्तु यह बड़े दुःख की बात है कि वीर राजपूतों की जो गर्दन गौरव के कारण ऊँची उठी हुई थी, वह आज अपनी वजह से ही नीचे झुक रही है। देखो, आपका सहारा पाकर मुगल-सेना के द्वारा राजपूतों का बल कुचला जा रहा है। देखो, आज बाबर के वंश की राज्यलक्ष्मी प्रखरतर और प्रखरतर से प्रखरतम होती दिखाई दे रही है जिसका ताप दोपहर की धूप की तरह से असहनीय है। अथवा जिस प्रकार भयानक सिंध नदी का अथाह प्रवाह है, उसी प्रकार मुगल सेना के साथ आप उसी प्रकार विध्वंसक कार्य करते हो, मानो आप वर्षा की बाढ़ के साथ उसमें प्रलयंकारी प्रलय का वेग भर रहे हो। उस प्रवाह में अपना देश बहता है; धन, जन, कुटुम्ब, भाई, अपने सहोदर, मित्र निस्सहाय, भयभीत और उपायशून्य होकर रहते हैं।

भाव यह है कि वैसे ही मुगल सेना की शक्ति काफी प्रबल है, किन्तु आप उनका साथ देकर उसकी प्रबलता को और भी अधिक बढ़ा देते हैं जो अपने ही नाश का कारण बनती है।

अलंकार—उपमा, उदाहरण।

वीरता की गोद·········जीवन-दान।

शब्दार्थ—मोद=प्रसन्नता। मेधा=बुद्धि।

अर्थ—आप इतने वीर हैं कि वीरता भी आपको अपनी गोद में लेकर प्रसन्नता से भर जाती है। आप महान विद्वान भी हैं। राजनीति में भी आप अद्वितीय हैं। हे महाराज ! आप मेरी सेवा, मेरा नमस्कार और साथ ही मेरा आशीर्वाद स्वीकार करें। आशीर्वाद का कारण यह है कि भगवान् आप पर प्रसन्न हों और आपके हृदय की आंखें खोल दें, ताकि आप न्याय-मार्ग को देख सकें।

मैंने यह सुना है कि आप दक्षिण की भूमि पर एक विशाल सेना लेकर मुझ पर चढ़ आये हो। हे जयसिंह ! वास्तव में आप मुगल सिंहासन की जयश्री हैं, आप यहाँ के प्राण निकाल कर तो औरंगजेब के पैरों के नीचे रखना चाहते हैं और मुगलों को जीवनदान देना चाहते हैं।

काढ़कर........मरीचिका है।

शब्दार्थ—सदय=दयालु। यशोलिप्त=यश पाने की लालसा।

अर्थ—आप इतने दयालु हैं कि हमारा हृदय निकालकर कीर्ति से अपना झंडा फहराते हुए चले जाओगे। हाय री यश पाने की लालसा ! तू अन्धे के लिए दिन के समान है, और साथ ही अन्धकार से भरी हुई रात के समान है। तू प्यासे व्यक्ति के लिए मरीचिका के समान है; अर्थात् जिस प्रकार व्यक्ति कभी मरीचिका से पानी नहीं ले पाता, उसी प्रकार यश की लालसा कभी पूरी नहीं होती।

अलंकार—उपमा, सन्देह।

चेतो वीर........अत्याचार।

शब्दार्थ—गरल=विष। कीर्ति-शोणिमा=कीर्ति की दिव्यता। विगत सुख=दुखी।

अर्थ—हे वीर ! तुम अब भी चेतो और अपने कर्त्तव्य को पहचानो। तुम जिस यश-लिप्सा के लिए दौड़ रहे हो, वह अमृत नहीं, विष है जो बहुत ही कड़ुवा और भयंकर है। यह लालसा तुम्हारी कीर्ति को दिव्यता में कलंक की कालिमा के समान है; जो वास्तव में तो छिपी हुई दिखायी देती है, किन्तु जो आखिर में सारे मुख को काला कर देगी। इससे देश केवल दुःखी ही नहीं होगा, वरन् अपने धर्म से विमुख भी हो जायेगा, क्योंकि यह इतना अत्याचार सहन नहीं कर सकेगा।

करो कुछ..........प्रेम की।

शब्दार्थ—सागम्बरा=सागर तक फैली हुई।

अर्थ—हे जयसिंह ! तुम अपने कार्यों पर कुछ विचार करो और अपने वस्त्रों की ओर देखो तथा बताओ कि ये किसके खून से रंगे हुए हैं ? क्या इनमें कहीं लाली का चिह्न दिखाई दे रहा है ? तुम इनमें जो लाली समझ रहे हो वह तुम्हारा भ्रम है। सत्य तो यह है कि सब काली स्याही से रँगे हुए हैं। तुम्हारे कार्यों को सोचकर दोनों लोक यह कहेंगे कि यदि तुम में तनिक भी राष्ट्र प्रेम होता तो अपनों पर बिलकुल भी प्रहार न करते।

यदि तुम अपने नाम से, अपने बाहु-बल से विजय के लिए चढ़ाई करते तो हे वीर ! मैं प्रभात के पात्रों के समान इन नयनों की पलकों को तुम्हारे रास्ते में सुख से बिछा देता; तुम्हारी सेवा में अपना सिर भी झुका देता, तुम्हारे साथ रह कर तुम्हारा अंग-रक्षक और हमरकाब बनता तथा साथ अपनी सेना भी लेकर सागर तक फैली हुई पृथ्वी को जीतकर तुम्हें विजय-सिंहासन श्री प्रेम की स्मृति की भाँति लाकर सौंप देता।

किन्तु ....अपना ही।

शब्दार्थ सरल है।

अर्थ—किन्तु तुम यह सेना लेकर अपनी विजय करने नहीं आये हो, बल्कि अपने मृदुल अंग के समान अन्य राजपूतों को काटकर तुम तो औरंगजेब के लिए विजय प्राप्त करने आये हो। उसने यह कैसा धोखा तुम्हें दिया है। वह औरंगजेब दगाबाज है जो मर्यादा वालों की लाज उतारता है और जिसने तुम्हें भली प्रकार बहका रक्खा है। मैं इस विषम परिस्थिति में बार-वार सोचता हूँ, कि मेरा कर्त्तव्य क्या है ? किन्तु कुछ निश्चय नहीं कर पाता और मेरे प्राण इस समय द्विविधा में पड़े हुए हैं। यदि मैं तुमसे मिलता हूं तो शत्रु यही कहेंगे कि मैं डर कर तुमसे मिला हूँ और यह अपवाद वीरों को शोभा नहीं देता। वीर पुरुष कभी भी समय की बाट नहीं देखा करते। जिन्हें वीर पुरुषों का मिलन संयोग से ही मिल जाता है, वे सिंह कभी गीदड़ों का स्वांग नहीं भरा करते हैं। यदि मैं तलवार हाथ में लेता हूं—युद्ध करता हूं—तो दोनों ओर अपने ही खून की धारा बहेगी, दोनों ओर अपने ही भाई बान्धव मारे जायेंगे।

उठता नहीं.......शेर मर्दों की।

शब्दार्थ—विपक्ष=दूसरी ओर, शत्रु की ओर। कीर्तिकामी=यश की

इच्छा करने वाला। न्याय-धर्म-वंचित = न्याय और धर्म से रहित। फतहयाव होने को = विजय प्राप्त करने को।

अर्थ—हे नरनाथ! हिन्दू चाहे विपक्ष में ही क्यों न हों, किन्तु कभी भी उन पर मेरा हाथ नहीं उठता। यह पेट पालन के लिए कैसी दासता है कि एक ओर तो तुम हम सब को भाई-भाई कहते हो और दूसरी ओर मुगल पक्ष से हमारा वध करते हो। इस संसार में तुम जैसा कोई कीर्ति की लालसा करने वाला नहीं है। हे वीरवर! युद्ध में मेरी तलवार म्यान से निकल कर और चल कर धर्म के हत्यारों से ही रणक्रीड़ा करती है, अर्थात् उन्हीं का वध करती है। यदि तुर्क इस लड़ाई में युद्ध करने के लिए आये होते तो वे बहादुर राजपूतों के शिकार बन गए होते। न्याय और धर्म से हीन उस पापी औरंगजेब ने, जो नर रूप में निरा राक्षस है, जब यह अच्छी तरह समझ लिया है कि यहाँ पर उसकी दाल नहीं गलेगी, अफजल खां के द्वारा शाइस्त खां भी जब कुछ न बिगाड़ सका तो उसने तुम्हारे सिर पर विजय प्राप्त करने का सेहरा बाँधकर दक्षिण में भेजा है, क्योंकि उसमें स्वयं हम वीर शेरमर्द राजपूतों की चोटों को सहने की शक्ति नहीं है।

सोचो तुम ....हमारी शक्ति।

शब्दार्थ—रेणु-रेणु = चकनाचूर। दुर्जय = कठिनता से जीती जा सकने वाली।

अर्थ—तुम स्वयं सोचो! अब स्वतन्त्रता की नग्न तलवार दारुण परतन्त्रता की याद दिलाकर कितने ही भावों से उठती है और जब स्वतन्त्रता व्याकुल होकर कानों में अपना मन्त्र फूँकती है तो वह कौन-सा सुमेरु पर्वत है जो उन तलवारों की चोटों से चकनाकूर नहीं हो जायेगा। हम राजपूत अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए पागल होकर लड़ते है, इसीलिए हमारी शक्ति दुर्जेय है - कोई उसे जीत नहीं सकता।

और भी........झोंकों में।

शब्दार्थ—गन्ध-व्याकुल-समीर-मन्दस्पर्श = सुगन्धि से भरे हुए पवन का शीतल स्पर्श।

अर्थ—मुसलसान हम पर विजय न पा सके इसलिए तुम्हें दक्षिण में लड़ने के लिए भेजा है, केवल इतनी सी ही बात नहीं और भी एक कारण है जो तुम्हें यहाँ लड़ने के लिए भेजा गया है। कारण यह है कि मुगल यह

चाहते हैं कि हिन्दुओं में कोई भी बलवान व्यक्ति न रह जाये, हम राजपूतों की शक्ति नष्ट हो जाये, ताकि तुर्कों को आसानी से विजय प्राप्त होती रहे। हम राजपूत सिंहों की भाँति आपस में लड़कर तथा घायल होकर पड़ जायेंगे और तब वे तुर्क रूपी गीदड़ ही इस जंगल में रहकर आनन्द से राज्य के सुख का भोग करेंगे। औरंगजेब का तुम्हें यहाँ भेजने का एकमात्र छिपा हुआ भेद यही है। तुम इस नीति को समझो। बड़े दुःख की बात है कि तुम्हारी बुद्धि में इतनी सी बात भी नहीं आती। औरंगजेब के जादू से तुम तो हार ही गये, क्या तुम्हारी बुद्धि भी मारी गई ? बस यह समझ लो कि तुम्हें बहकाया, गया। तुम्हीं बताओ कि सेना के साथ इस मरुभूमि में क्या तुमको सुगंधि से भरे हुए पवन का शीतल स्पर्श मिला है। वास्तविकता तो यह है कि सेना के साथ तुम लू और गर्म झोंकों से अच्छी तरह झुलस भी चुके हो, अर्थात् तुम्हें अनेक प्रकार के भयंकर दुःख उठाने पड़े।

सुख और दुख ······ शिकार करता है।

शब्दार्थ — अंजलि = भेंट। धीमान = विद्वान।

अर्थ—तुम अपने जीवन में सुख और दुख के अनेक चित्र देख चुके हो। फूलों की सेज पर भी सोये हो, अर्थात् जीवन के अनेक प्रकार के सुख देखे हैं, और कांटों की राह भी आह भर कर पार की है, अर्थात् अनेक प्रकार के दुःख भी भोगे हैं। हे वयोवृद्ध ! तुमने संसार का काफी ज्ञान प्राप्त किया है। जरा यह सोचो तो कि तुम अपने ही भाइयों से सामना करते हो, अपने ही खून की भेंट उन पूर्वजों को देते हो, जिन्होंने धर्म-जाति के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया था, तुम्हारा यह कार्य यहाँ तक उचित है ? तुम्हारा यह कैसा ज्ञान है ? हे जयसिंह ! लोग कहते हैं कि तुम बुद्धिमान हो, सिंह हो। जितना भी चाहो, तुम हिरनों का शिकार कर सकते हो, किन्तु यह याद रक्खो कि सिंह वन के दूसरे पशुओं का ही शिकार करता है, सिंहों से वह नहीं लड़ता।

कहने का भाव यह है कि तुम्हें राजपूतों से न लड़कर मुगलों से लड़ना चाहिये। इससे तुम्हारा यश भी बढ़ेगा और मातृभूमि की रक्षा भी होगी।

सिंहों के······ बचायेंगे।

शब्दार्थ—गृह-कलह = घरेलू लड़ाई। स्फूर्ति = शक्ति। प्रतिकार = बदला।

अर्थ—हे जयसिंह ! तुम सिंहों—राजपूतों—के साथ ही युद्ध करकेघरेलू

लड़ाई करना चाहते हो। तुम्हारी यह इच्छा अनुचित है। अगर तुम शानदार हो, यदि तुम्हारे घोड़े में तेज दौड़ने की गति है, यदि तुम्हारी बाहुओं में क्षत्रियों का खून वहता है, हे वीर ! यदि तुम्हारे हृदय में माता अभागी की दिव्य-मूर्ति जागती है यदि तुम्हारी शक्ति तुम्हारे अंग-अंग को उकसा रही है, यदि तुम्हें अपनी मर्यादा की याद आ रही है, यदि तुम अपनी तलवार के म्यान में रहते हुए शत्रुओं से (मुगलों से) बदला लेना चाहते हो तो वीर ! मेरे पास आ जाओ। मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ और तुम्हें सादर बुलाता हूं। जो युद्ध के बहादुर हैं, वे मर कर भी माता की रक्षा करेंगे। अर्थात् हमें विश्वास है कि हम दोनों मिल कर मातृभूमि की निश्चय ही रक्षा करेंगे।

शत्रुओं के········मेवा का महाराज।

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम। निर्जर=देवता। भीरु=डरपोक। पीनोरु= पुप्ट उरु वाली। प्रतिद्वन्द्वी=शत्रु। अर्जित=इकट्ठी की हुई। तूणीर=तरकश

अर्थ—यदि तुम शत्रुओं के खून से माँ का एक भी दाग धो सके तो तुम्हें अपने देशवासियों का बहुत प्रेम मिलेगा, तुम देवता कहलाओगे और अमर वन जाओगे। इससे कोई लाभ नहीं होगा कि यदि तुम अपनी शक्ति से, छल से या कौशल से किसी डरपोक, पुष्ट उरुवाली, झुके हुए नयनों वाली नवयौवना पर अधिकार करके किसी भय के कारण उसे किसी दूसरे कामातुर तथा लोलुप शत्रु को सौंप दो। क्या तुम यह देख सकोगे कि तुम्हारे सामने ही तुम्हारी इकट्ठी की हुई प्यारी सम्पत्ति के बल पर कोई दूसरा आंखें दिखाकर योग और संयोग का सुख प्राप्त करे ? यदि तुम देखते हुए भी इस विषय को अनदेखा छोड़ देते हो तो तुम्हारी वीरता को धिक्कार है। यह तो बताओ कि अपने तरकश में तीर के रहते हुए क्षत्रियों ने कब अपना भाग छोड़ा है ? अर्थात् क्षत्री तो अपना भाग लड़कर भी लेते हैं, जब तक उनके प्राण रहते हैं और कमर में तलवार बँधी रहती है। क्या तुमने वीरों का इतिहास नहीं सुना ? पास ही देख लो, चित्तौड़गढ़ वीरों के इतिहास को सुना रहा है। तुम तो तुर्कों के वश में इतनी बुरी तरह से हो गये कि विदेशियों और विधर्मियों पर अभिमान भी करने लगे। क्या वे तुम्हें कभी काफिर नहीं कहते ? क्या कभी तुम्हें जीतकर अपना गुलाम न बना लेंगे ? तुम्हारी सेवा का तुम्हें यह कितना अच्छा नतीजा मिलेगा, किन्तु हे महाराज ! तुम्हें तो अपनी सेवा के फल पाने का लोभ भी न होगा।

बादल घिर आये······पानी दो ।

शब्दार्थ—आपदा=मुसीबत । तृष्णा=प्रबल इच्छा । इष्ट=इच्छित । जन्मभू=जन्मभूमि ।

अर्थ--यदि क्षत्रियों पर, राजपूतों पर, विपत्ति के बादल घिर आये, और जो मुसीबत उन पर हमेशा रहती है, क्या तुमने उन्हें बचाने की कभी कोई कोशिश की ? क्या तुम यह भी जानते हो कि वीर छत्रसाल पर बहुत मुगल शीघ्र ही भयानक आक्रमण करने वाले हैं ? हमारी इन दशाओं को देखकर दूसरे लोग भी हाथ मलते हैं और कहते हैं कि हिन्दू अनाथ हो गये हैं इसलिए यह अत्याचार असहनीय हो रहा है । यह सच है कि मुगलों से तुम्हारा सम्बन्ध हो गया है, किन्तु उस सम्बन्ध के पीछे क्या तुम अन्धे मूर्ख भी हो गये हो ? वे मुगल तो राक्षस हैं और तुम अपनी नीतियों पर विश्वास रखते हो । अपनी प्रबल इच्छाओं की पूर्ति के द्वारा अपने स्वार्थों को सिद्ध करना ही उनका एक मात्र ध्येय है । तुम यह भी जानते हो कि औरंगजेव अपने भाइयों का ही खून बहाकर और अपने पिता के प्राण लेकर शक्तिशाली हुआ है । यदि राजनीति की आड़ लेना ही इच्छित है तो तुम स्वयं सोचो कि शाहजहाँ के साथ उसने किस प्रकार का व्यवहार किया था ? यदि ईश्वर ने तुम्हें कुछ बुद्धि दी है, और यदि अपने वंश का बचा हुआ कुछ पौरुष तुम में बाकी है, यदि तुममें राजपूती के कुछ तत्व शेष हैं तो अपनी जन्मभूमि के दुःखी निवासियों के आँसुओं से अपनी तलवार को तपाकर उस पर कुछ पानी दो, अर्थात् उस तलवार की धार को मजबूत बनाओ ताकि अधिक से अधिक शत्रुओं का बध कर सको ।

अवसर नहीं······ बदला ही किया ।

शब्दार्थ—देवालय=मन्दिर । द्विज=ब्राह्मण । दारा=स्त्री । आतंक=भय । अंक=गोद । विशृंखल=टूटा हुआ ।

अर्थ— यह आपस में लड़ने का अवसर नहीं है । हे महाराज ! अब तक इतने अधिक हिन्दू मारे जा चुके हैं कि अब तो उनके खेत खाली हो गये हैं, और यह जन्मभूमि बलिदान चाहती है । क्या आप अपना सिर हथेली पर रख कर यह खेल खेलोगे ? अर्थात् समर में उतर कर हिन्दुत्व की रक्षा करोगे ? हमारे धन, जन, मन्दिर, देव, देश, ब्राह्मण, स्त्री, बन्धु सब विदेशियों की तृष्णा की भट्ठी में ईंधन की तरह जल रहे हैं । अब तो शत्रुओं के अत्याचारों की हद

हो गई है और हे महाराज ! यदि शत्रुओं का यही अत्याचार और कुछ दिनों चलता रहा तो निश्चय है कि हिन्दुओं की कीर्ति इस संसार से सदा के लिए उठ जायेगी, और हिन्दू-सभ्यता का कोई भी चिन्ह शेष नहीं रहेगा। यह कितने आश्चर्य की बात है कि बहुत थोड़े से मुसलमान, जो भयभीत होकर भारत की गोद में पले हैं, अब अपनी प्रभुता इस देश में मानते हैं क्योंकि यह देश तुम्हारी तरह ही टूटा हुआ है। क्या तुम यह नहीं देखते कि औरंगजेब रण में कैसी चाल चलता है। वह बहुरूपी है और उसने अनेक प्रकार के रंग बदले हैं।

सांकलें·······अपनाओ तुम।

शब्दार्थ—क्षिप्त=उपेक्षित। क्रीतदास=खरीदे हुए गुलाम।

अर्थ—यह भाग्य की कैसी विडम्बना है कि बेड़ियाँ तो हमारी हैं. किन्तु इन्हीं के द्वारा वह हमारे पैरों को बांध रहा है। सिर भी हिन्दुओं के हैं और हिन्दुओं के हाथ में ही तलवार है, किन्तु आज्ञा वह देता है और उसकी आज्ञा पर ही एक हिन्दू दूसरे हिन्दू का सिर काट देता है। यह याद रखिए, कि हिन्दू, धर्म-हिन्दू-जाति और हिन्दुस्तान बरवाद हो रहा है। मर्यादा के लिए आत्म-त्याग की आवश्यकता है, शक्ति के लिए अपनाव और प्रेम की जरूरत होती है। जो व्यक्ति उपेक्षित कर दिये गये हैं, वे बराबर कमजोर होते जा रहे हैं। आप ही अपनी सीमा के रामरामेश्व हैं, भाइयों के लिए हिंसक शेर हैं, और तुर्कों के खरीदे हुए गुलाम हैं, इसीलिए आप उद्धत और मूर्ख हैं। हमें चाहिए कि हम अपनी शक्ति को पहचानें और इस प्रकार आपस में मिल जायें, जिस प्रकार पानी का ढेर पानी में मिल जाता है। फिर देखिए, तुर्कों की शक्ति कितनी देर टिकती है, अर्थात् हमारे संगठित होने पर मुगलों की शक्ति तुरन्त नष्ट हो जायेगी। इसलिए आपस में संघठित हो जाओ और तुम अपने भूले हुए भाइयों को फिर से अपनालो।

चाहिए कि हमें·······आज तुम्हें।

शब्दार्थ—क्षिप्त-शक्ति=उपेक्षित शक्ति। जीवन=पानी। कलुष=कालिमा। प्राची के भाल पर=पूर्व दिशा में। मिहिर=सूर्य। भीति=डर। रेणु=धूल कण का। विष-बल्लरी=विष की बेल।

अर्थ—हमें चाहिए कि तदवीर और तलवार पर खूब पानी चढ़ायें, अर्थात् शक्ति और नीति दोनों का ही पूर्ण उपयोग करें। जिस प्रकार बादलों के समूह

पृथ्वी को घेर कर अपने जल से उसके जीवों को प्लावित करके नवीन जीवन देते हैं, उसी प्रकार हम भी वीर राजपूतों की उपेक्षित शक्ति को इकट्ठा कर लें। हमें ईंट का जवाब पत्थर से, तुर्कों को तुर्की में अर्थात् उनकी भांति धोखा-धड़ी में और पत्थर का जवाब घूँसे से देना चाहिए। यदि तुम महाराज जसवंतसिंह से मिलोगे और अपने हृदय की कालिमा-वैर-वैमनस्य धो डालोगे, यदि तुम महाराज रामसिंह से एकता के सूत्र में गुँथ जाओगे तो निश्चय है कि हिन्दुओं की लुप्त शक्ति फिर जग जायेगी और हे महाराज! भारत की गई हुई ज्योति फिर से जगमगा उठेगी। पूर्व दिशा में फिर से स्वर्गीय प्रभात का उदय होगा, सूर्य से अन्धकार का आवरण नष्ट हो जायेगा और रात के भय तथा उत्पात दूर हो जायेंगे अर्थात् देश के सारे संकट और सभी प्रकार के अज्ञान नष्ट हो जायेंगे तथा देश का हृदय फिर से नवीन उत्साह और आशा लेकर छलक उठेगा। सब मिलकर औरंगजेब को घेर लो। वह कोई शेर तो है नहीं, बहुत थोड़े से उसके सहायक हैं, जो हमारे चरणों से ही दब कर पिस जायेंगे। शत्रु को पनपने का मौका न दो, मैं इस बात को तुम्हें कितनी बार समझाऊँ। तुमने ही रेणु के समान तुच्छ शत्रु को सुमेरु जैसा शक्तिशाली बना रखा है। शत्रुओं की नीच कामनाओं को सींचने के लिए, विष की बेल को पल्लवित करने के लिए तुमने मुगलों की दासता के फूलों की पाश-मालाएँ पहन रखी हैं।

छोड़ो यह ······ हमारी शक्ति।

शब्दार्थ — व्याधि = दुःख प्रखर उत्ताप = भीषण दुःख।

अर्थ —हे जयसिंह! यह हीनता छोड़ो, मुगल आस्तीन के सांप हैं, अतः उन्हें दूर फेंक दो। अपने भाइयों से मिलो जिससे भारत के दुःख दूर हो जायें तुम दासता की जिन बेड़ियों में बँधे हुए हो, उन्हें तोड़ दो और उपयुक्त लहरों में अपने प्राण, मान, धन तथा अपनापन बहा दो, अर्थात् स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दो। तुम कब तक किनारे के पास खड़े हुए चुपचाप भीषण दुःख के कारण मुरझाये हुए फूल की तरह से मृतक, निर्जीव और जड़ बने रहोगे? तुम शत्रु पर टूट पड़ो और उनकी रक्तधारा में बहकर अपनी श्री, अपना रंग और अपना राग दूर तक फैलाओ। व्यक्तिगत विरोधों में पड़कर ही हमारी शक्ति का नाश हुआ है।

कर्षण-विकर्षण .... लिए सब ।

शब्दार्थ—कर्षण-विकर्षण=प्रेम और वैमनस्य । क्षुद्र ऊर्मियाँ=छोटी लहरें सहधर्मिणी=पत्नी ।

अर्थ—यदि हमारा इस प्रकार परस्पर प्रेम और वैमनस्य अर्थात् विरोधी भावों का संघर्ष जारी रहेगा, यदि हम नीच जातियों के साथ द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य में पड़कर छोटी लहरों की तरह टक्कर लेते रहेंगे तो निश्चय ही उन तरंगों का वेग और भी अधिक घट जायेगा और वे छोटी से छोटी होती हुई एक दिन मिट जायेगी । उनकी चंचलता समाप्त हो जायेगी और हम सबका अस्तित्व स्वप्न की भाँति विलीन हो जायेगा । इसके पश्चात् कोई दूसरी लहर ही फलगी ; अर्थात् कोई दूसरी जाति ही विकसित होकर भारत पर शासन करेगी । क्या तुम यह चाहते हो कि सनातन धर्म की शुद्ध धारा भारत से सदा के लिए समाप्त हो जाये । हे महाराज ! हम जितनी आपसी विरोधी शक्तियों से लड़ रहे हैं, सच मानो, यह अपनी शक्तियों को व्यर्थ में ही बरबाद करना है । यह सच है कि समस्त जीवों में विरोधी शक्तियाँ रहती हैं । पिता से पुत्र का, पति से पत्नी का सदा ही विरोध भाव चलता रहता है । यद्यपि विरोध जीवन सत्ता है. तथापि प्रेम सहयोग—बलवान हैं । जब तक वे आपस में मिले हुए हैं, जब तक उन्हें अपने-अपने सम्बन्धों का ज्ञान है, जब तक वे एक दूसरे के लिए हँसते और रोते हैं, तभी तक जीवन सुचारु रूप से चलता है । एक छोटा सा परिवार भी आपस में प्रेम से बँधकर ही चलता है और उतनी ही सीमा में धर्म, भाषा और वेश का अगाध प्रेम बँधा होता है । इनको छोड़कर और सारी बातें, हिन्दुओं के लिए आकर्षणहीन हैं । भाव यह है कि यदि हम और सब बातों को छोड़कर भी केवल धर्म, भाषा और वेश में प्रेमपूर्ण एकता स्थापित कर लें तो भी शत्रु हमारा कुछ नहीं बिगड़ सकते ।

धोखा है ....साम्राज्य ।

शब्दार्थ—एकीभूत=इकट्ठी हुई । सम्वेदना=सहानुभूति ।

अर्थ—आज हममें इतना वैमनस्य फैला हुआ है कि हम अपनी छाया से भी धोखा करते हैं । अपने ही भाइयों को ठगते है और उन्हें लूटकर अपना घर भरते. हैं और उससे प्राप्त सुख में हम इसी प्रकार निश्चित रहते हैं जैसे भिखारी स्वप्न में स्वयं को धनवान् बनाकर अपनी सारी विपत्तियों से छुटकारा पा

लेता है। मृत्यु का इससे भयंकर रूप और क्या होगा ? अर्थात् अपने इस प्रकार के कुकृत्यों से हम जीवित भी मृत के समान हैं । आज हिन्दुओं में कितनी नीचता फैली हुई है। यदि सब शक्तियाँ इकट्ठी होकर एक परिवार के रूप में एकत्र हो जायें, सब लोगों में परस्पर सहानुभूति की भावना फैल जाये, यदि व्यक्ति का स्वार्थ जातिगत हो जाये; अर्थात् अपने हित को न सोचकर जाति का हित सोचने लगें तो देखो, फिर क्या परिणाम होता है ? इसका परिणाम यह होगा कि शत्रुओं का हौसला नष्ट हो जायेगा और उनके द्वारा स्थापित साम्राज्य मिट्टी में मिल जायेगा ।

जितने विचार ...... सर्वस्व सौंपकर ।

शब्दार्थ = पाश = बंधन । विद्युत्दुति = बिजली की चमक ।

अर्थ — यदि हम सब राजपूत एकता के सूत्र में बँध जायें तो साम्राज्य-वादियों की भोग-वासनाओं में आज कितने विचार मचलते है, वे सब सदा के लिए नष्ट हो जायें । तब भारत की छिपी हुई ज्योति पुन: चमकने लगेगी और हिन्दुस्तान को घोर अपमान से छुटकारा मिल जायेगा। देशवासियों के दासता के बन्धन कट जायेंगे। मेरे वीर सरदार गोलकुण्डा और बीजापुर को घेर लेंगे। उनकी तलवार बिजली-सी चमक लेकर वार-बार चमकेगी; भवानी अपनी सखियों के साथ शत्रुओं के खून की धार पियेंगी और मैं अपना सर्वस्व देव, द्विज तथा देश को सौंपकर धन्य हो जाऊँगा ।

यमुना के प्रति –

कविता परिचय — इस कविता की रचना सन् १९२२ ई० में हुई है। यह कविता निराला के सम्बोध गीतों में प्रमुख स्थान रखती है । इसमें कवि को यमुना के तट को देखकर सहसा श्रीकृष्ण और गोपियों की रासलीला का स्मरण हो जोता है। फिर कवि अपनी कल्पना में सारी कथाओं का सार लेकर कविता की सृष्टि कर देता है। इस कविता में विचारों का अवांछित गाम्भीर्य तो है ही, साथ भावों में एकतानता का भी अभाव है। इस कविता में कवि ने अतीत के प्रति अपने जिस अथाह प्रेम का परिचय दिया है, उससे कवि का राष्ट्रप्रेम एवं सांस्कृतिक प्रेम स्पष्टत: मुखरित हो उठा है।

स्वप्नों सी ...... नीरव गान ।

शब्दार्थ — आग्लान = शुद्ध । सम्मोहन = मन को मोहित करने वाला ।

मोहन=कृष्ण। गन्धलुब्ध=सुगंधि के लोभी। अलि-बालों के भौंरों के बच्चों के। सुषमा=शोभा। आकुल=व्याकुल। अतीत=भूतकाल, बीता हुआ समय।

अर्थ—कवि यमुना को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे यमुना! स्वप्नों की-सी मादकता लिये हुये किसकी आँखों की पल्लव-छाया में शुद्ध यौवन की माया की तरह श्रीकृष्ण के मन को मोहने वाला ध्यान आया? अर्थात् तुम्हें देखकर किसको मनमोहन कृष्ण की स्मृति नहीं आती। किन सुगन्धि के लोभी भौंरों के बच्चों की मृदुल गूँज तेरे आँख रूपी फूलों की शोभा को बार-बार जाँच रही है? अर्थात् तेरे अन्दर खिले हुए कमलों पर जो भौंरों के समूह गूँज रहे है ऐसा प्रतीत होता है कि वे तेरी शोभा परख रहे हैं।

हे यमुना! तेरी इन थिरकती हुई लहरों में किसके होठों की व्याकुलता से भरी हुई तान सुनाई दे रही है जो पथिक-प्रिया की भाँति बीते हुए काल के गत-गीतों की याद दिला रही है? अर्थात् जिस प्रकार कोई विरहिणी अपने अतीत की सुखद घटनाओं में डूब जाती है उसी प्रकार तेरी ये थिरकती लहरें विरह-व्यथा से व्याकुल-सी दीखकर अतीत के किसी अंश की ओर संकेत कर रही हैं।

अलंकार—उपमा, रूपक।

बात कहां ·······उद्गार।

शब्दार्थ वंशीवट=वह वटवृक्ष जिसके नीचे खड़े होकर कृष्ण बाँसुरी वजाया करते थे। श्याम-विरह=कृष्ण का वियोग। तप्त=दुःखी। रंजित=सुन्दर। विरह-विधुर=विरह का दुःख। उद्गार=भाव।

अर्थ—हे यमुना! बता अब वह वट का वृक्ष कहाँ गया जिसके नीचे खड़े होकर कृष्ण बांसुरी बजाया करते थे। वह नटनागर कृष्ण कहाँ गया? वह वृन्दावन का धाम जिसका पनघट सदैव गोपियों के चंचल चरणों से व्याकुल रहता था, कहाँ गया? कभी यहाँ पर जिनके कृष्ण के वियोग के कारण दुःख से सन्तप्त शरीर देखे थे, वे गोपियाँ किस सुख की तृषित गोद में जाकर अपनी आँखों के पानी को पोंछती हैं? अर्थात् विरह-विदग्धा वे गोपियों कहां गई?

जिनकी सुन्दर, सहज और सरल चितवन में उत्कंठा से भरी हुई सखियों का जो प्यार छिपा रहता था, क्या वह विरह से दुःखी हृदय के विचार की भांति आँसू की भाँति ढुलक गया। अर्थात् उनका विरह-दुःख कहाँ चला गया?

कहने का भाव यह है कि वे कृष्ण जो वट वृक्ष के नीचे बांसुरी वजाते थे और वे गोपियाँ जो कृष्ण के वियोग में दुःखी रहा करती थीं, कहां चली गईं ?

अलंकार — उपमा ।

तू किस विस्मृति ······· अतीत के संग ?

शब्दार्थ —कातर=दुख भरी । अलस प्रेयसी=अलसाई हुई प्रेमिका । गूढ़ विलास=गहरा आनन्द ।

अर्थ —कवि यमुना को सम्बोधित करके कहता है कि हे यमुना ! तू विस्मृत की विष वीणा से निकली हुई दुख भरी झंकार के समान उठ-उठकर उकता-उकता कर उत्सुकता से स्मृति के दृढ़ द्वारों को खोल रही है । अर्थात् वहुत दिनों की भूली हुई बातों को याद दिला रही है तू अलसाई हुई प्रेमिका के समान स्वप्नों में प्रिय की शिथिल शैया के पास जाकर लघु लहरों के मधुर स्वरों में किस अतीत काल के गहरे आनन्द को कर रही हो ।

हे यमुना ! प्रत्येक हृदय में नूपुर की ध्वनि के समान मौन पवन में मादकता की यह तरल तरंग किस अतीत के साथ विचरण कर रही है ?

अलंकार— उपमा ।

किस अतीत······· विश्व विराट् ?

शब्दार्थ – दुर्जय=अजय । कनक-पुष्प-सा=सोने के फूल के समान । निर्निमेप=अपलक । विराट्=विशाल ।

अर्थ —कवि यमुना को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे यमुना ! तुमने किस अतीत का अजय जीवन सोने के फूल के समान अपनी सुकुमार अलकों में गूँथ लिया है ? तुममें प्रतिभासित होने वाला यह अपार रूप किसका है ? अव तक पुलकित पलकों के छलकने वाला यह मृदुल सुहाग किस विस्मृति की मदिरा की लाली है जो अपलक नयनों की छाया न दिखलाई दे रही है ?

वे किस अतीत के सम्राट् है जो मुक्त हृदय के सिंहासन पर आरूढ़ हैं और जिनके मस्तक पर सूर्य, चन्द्रमा, तारे तथा विशाल विश्व दीपक के समान चमक रहे हैं ।

अलंकार—उपमा ।

विशेष—प्रकृति के माध्यम से रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति ।

निखिल विश्व·······पद संचार।

शब्दार्थ—अमन्द=तेज । अन्तःपुर=महल । स्नेह-समूह=प्रेम का साथी। द्रुत=शीघ्र। मृदु-पद-संचार=मृदुल गमन।

अर्थ—हे यमुना ! तू तमाम संसार की जिज्ञासा के समान आशा की तेज फल उनकर पटल की निज शैया पर मृदुल छन्दों के बंध रच-रचकर अतीत के किस प्रेम के साथी को अपना ध्यान अर्पण करती हो और तेरी ताल-ताल के कम्पन से शीघ्रता से ये किसके गीत निकलने हैं ?

पक्षियों की नींद से शान्त वन के अपार संगीत के द्वारा ये किस अतीत का स्वप्नलोक में मृदुल गमन होता है ?

मुग्धा पर ·······मार ।

शब्दार्थ – मुग्धा = मुग्धा नायिका । बोहित=नाव । अनिल=हवा । ज्योत्स्ना सुहाग=चांदनी रूपी सुहाग। फेनिल=झागों की। पर=पंख।

अर्थ—हे यमुना ! तू किसी मुग्धा नायिका की साज-भरी पलकों पर यौवन की छिपी हुई शोभा के समान है। बता तू किस अतीत के बचपन के साथ आँख मिचौनी खेल रही है ? तेरे हृदय के द्वार किस अतीत सागर के संगम की ओर वढ़ते हैं ? और तेरे नाव के लिए सरल पवन से नयन रूपी सलील के अपार निर्झर बहते हैं ?

उस लाज से मुक्त चाँदनी रूपी सुहाग की फेनों से बनी हुई कोमल शैय्या पर कौन उत्सुकता के साथ और किस अभिसार को रात में स्वप्नों के पंखों से उड़कर चली गई है।

उठ-उठकर ······ निर्दय पाश ।

शब्दार्थ – स्मृति=हँसी। राग=प्रेम। संसृति=रचना।

अर्थ—यमुना को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि हे यमुना अतीत विस्मृति से उठ कर यह किसकी हँसी और किसका प्यार है जो तेरे श्याम कपोलों पर खुलकर आश्चर्यजनक विहार कर जाता है और और यह भी वता कि जीवन की इस सरस सुरा मैं यह किसका मादक प्रेम है जो तेरी ममता में उसके प्रेम की समानता करता हुआ फूट पड़ा।

किन नियमों के निर्मम वन्धन जगत् की रचना का परिहास करके तुम्हारा करुणं क्रन्दन वन जाते हैं। अर्थात् तुम जगत् के विना किन वन्धनों के कारण थी दुखी हो। हे सखी वताओ वे निर्मम बन्धन किसके हैं ?

कलियों की·········मन यन्त्र।

शब्दार्थ—मुद्रित=मुँदी हुई। अलि=सखि।

अर्थ—कवि यमुना से पूछता है कि हे यमुना यह बताओ कि कलियों की मुँदी हुई पलकों में जो सुगन्धि धैर्य खोकर सिसक रही है। और जिनकी व्याकुलता से भरी हुई दुःखपूर्ण कहानी को सुनकर दृग पल्लव आंसू बहाते हैं उनको किसने करुणा के हाथ की किरण बढ़कर तथा सपनों का विचित्र संसार बसाकर पोंछ लिया है और संसार का रहस्य भयद्वार खोलकर दिखा दिया है।

जागरण के इस नवीन जीवन में किस छाया का माया मन्त्र अपनी मृदुल गूंज से दुर्वल जन के मन यन्त्र को खींच रहा है।

अलि अलकों·········नूपुर मंजीर।

शब्दार्थ—लोल=चंचल। ज्योत्स्नासी=चाँदी के समान।

अर्थ—कवि यमुना से पूछता है कि हे सखि! तुम्हारे इन भीगे हुए और काले-काले केशों को लहर के रूप में अनजाने ही कौन चंचल बना देता है। जिसका गूढ़ भेद निश्चय ही शशि जैसे सुन्दर गात से निहित है। यह भी बताओ कि उन नयनों का अंजन राग किस खंजन वन में सोया हुआ है। अर्थात् उन नयनों में वह वास्तविक मादकता और सुन्दरता कहाँ से आई है। और अब वे कदम्ब मुख के समान पीले पराग वाले किन पत्तों में बिखर गए हैं। अब किन तारों में उन हारों के मोती और हीरे चमक रहे हैं तथा किन चरणों में अधीर होकर नूपुर और मंजीर बजते है।

अलंकार—उपमा।

किस समीर·········अभिस्तर।

शब्दार्थ—सरित=नदी। कंकन=एक प्रकार का आभूषण। पारावार=सागर। विकच=खिली हुई। बीची चितवन=लहर रूपी चितवन। अभिसार=प्रेम मिलन।

अर्थ—कवि यमुना से पूछता है कि हे यमुना! वंशी के स्वरों की सरिता की दिलोर किस वायु के द्वारा गुंजित हो रही है? किस वितान से तनी हुई वह करुणा से भरी हुई मरोर प्राण तक को छू जाती है किस कंकण की मृदुल झंकार है वह जो यौवन के प्रथम चरण में लालसा रूपी लता को नित सींचती रहती है? अर्थात् नयी-नयी इच्छाओं का अविर्भाव होता है।

व्यथित प्रेम का सागर अब किस तट पर उमड़कर चलता है और अब किस को खिली हुई लहर रूपी चितवन के द्वारा निर्भय होकर प्रेम-मिलन होता है ?

भटक रहे थे ....उन्माद।

शब्दार्थ—मृग-दृग=दृग की जैसी विशाल-आँखें। मरु-मरीचिका= रेगिस्तान में हिरन को पानी का भ्रम दिलाने वाली रेत की चमक। द्रुम-पुंजों का=वृक्ष-समूह का। बिगलित=नष्ट। क्रन्दन-मलिन=आर्त्तनाद से गूंजता हुआ। पुलिन=किनारा।

अर्थ—हे यमुना ! यह बताओ कि वे किसकी मृग जैसी विशाल आँखें भटक रही हैं ? अर्थात् किसी को आतुर होकर खोज रही हैं। वह अपने पथ पर कौन निराश होकर बैठी हुई है ? और मरु-मरीचिका के द्वारा धोखा खाई हुई-सी उदास होकर आसमान की ओर देख रही है। जिसके नष्ट तथा असफल इच्छाओं के कारण आर्त्तनाद से गूंजते हुए किनारे का शोर अब किन कुंजों के वृक्ष समूह के कठोर हृदय को हिला रहा है ?

उन नैनों का करुणापूर्ण विषाद किस प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बढ़ा है ? और किस अज्ञान में वह आज काले आकाश पर मंडराते हुए बादल का पागलपन छिप गया है ?

अलंकार—उपमा।

कह किस ..... आकाश ?

शब्दार्थ—असल=मस्त। मराल-चाल=हंस-गति। अजीत=अजेय। अवीत=निडर। स्मिति-विकसित=मुस्कान से खिले हुए। नीरज=कमल। तरुण-अरुण=लाल सूर्य। कन्दर=गुफा। अरण्य=जंगल। दिनमणिहीन= सूर्य से रहित।

अर्थ—हे यमुना ! यह बताओ कि किस मस्त हंस-गति से प्रेरित होकर सारे संगीत गूंज उठे हैं जिसके प्रत्येक पद की योजना—लघु, ताल, स्वच्छन्द गति आदि—अजेय और निडर हैं; अर्थात् उस संगीत में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। मुस्कान से खिले हुए कमल रूपी नैनों पर किस की शुद्ध सूर्य किरण की रेखा है और यह कौन है। जो प्रिय लाल सूर्य के साथ-साथ अज्ञात रूप से अन्धकार में छिप गया है।

वह कौन से पर्वत की दुर्गम गुफा है, जिसमें जगत का सांस डूब गया है और अब सूर्य-रहित स्तब्ध आकाश किस जंगल में उतर रहा है।

आप आ गया ....अभियुक्त ?

शब्दार्थ—विटप-विहग=पेड़ का पक्षी। नीड़=घोंसला। तमिस्र=अंधकार। स्मर-सर=कामदेव रूपी तालाब। अन्तर=हृदय। प्रति-भात=चमकता हुआ। श्याम मोह कज्जल-अभियुक्त=कृष्ण-प्रेम के काजल से युक्त।

अर्थ—हे यमुना ! अपने आप ही प्रिय के हाथ में जिसका हाथ आ गया, बताओ तो वह कौन है ? वह प्रियतम की ओर स्वयं ही इस प्रकार लौट आया जिस प्रकार अन्धकार पूर्ण संसार देखकर वृक्ष का पक्षी अपने घोंसले में लौट आता है। कामदेव रूपी तालाब के निर्मल हृदय में जोचमकता हुआ चन्द्रमा देखा था, वह जिसने छिपा लिया है, बताओ वे किस गहरे वन के पत्ते हैं ! आज वह शिथिल जीवन कहाँ है जो बाहु-पाश में बँधकर भी स्वतन्त्र था। कृष्ण के प्रेम के कागज से युक्त आज वह सजीव चितवन कहाँ है ?

अलंकार—रूपक।

वह नयनों का.........वह कौन ?

शब्दार्थ—जलजात=कमल। प्राची=पूर्व दिशा। राका=पूर्णमासी। प्रसुप्ति=अचेतनता।

अर्थ—हे यमुना ! वह नैनों में नित्य ही मँडराने वाला मनोहर स्वप्न, वह हृदय रूपी तालाब का कमल, वह निस्सीम आकाश का चन्द्रमा, वह पूर्व दिशा का विमल प्रभात, वह पूर्णमासी की सी निर्मल शोभा वाला, सूर्य के समान गौरव वाला, कवि के उत्साह के समान आज तेरा वह सरस प्रवाह किस अतीत में मिल गया है ? अर्थात् किस प्रकार नष्ट हो गया है ?

किस अतीत का वह मूक इशारा मेरे मन को खींच रहा है और वह कौन है जो मुझे मेरी अचेतना से प्रिया की भाँति जगा रही हैं !

अलंकार—उपमा, उल्लेख।

वह आविष्कार........ नित्य जीवन।

शब्दार्थ - अविकार=पूर्ण। उद्दाम=प्रबल। भीरु-दृग-संकुल=डरे हुए नैनों का ढेर। अभिराम=सुन्दर। पीड़न=वेदना। लास अंक=सुख से भरी हुई गोद। भ्रकुटि-कुटिल-प्रिय-पथ=क्रोधित प्रिय का पथ। उन्मुख=लीन।

अर्थ—हे यमुना ! यह बताओ कि जो सम्पूर्ण घने सुख-दुःख का घर है, जो प्रबल उच्छृंखलता है, जो संसार के डरे हुए नैनों के ढेर के समान है, जो

सुन्दर कल्पना की गति की भाँति सुन्दर है, जो वर्षों की प्रसन्नता से भरा हुआ खेल है, जो वेदना का चंचल संचार है, जो विलास की आनन्द से भरी हुई गोद है, जो क्रोधित प्रिय के पथ की सीमा है; जो मधुर अधरों पर जागरण के समान हैं, जो अचेतनता बनकर नैनों में डूब जाती है, जो मुग्ध एवं मौन मन को सुख में लीन करती है और उसे नित्य नवीन आकर्षण से भरी हुई होती है (वह छवि कौन है ?)

अलंकार—उल्लेख ।

वह सहसा·········प्रथम पुराना ।

शब्दार्थ—कम्पन द्रुत=शीघ्र ही कम्पन भाव कर देने वाली । सुरभि-समीर=सुगन्धित वायु । स्तम्भित=हल्का कंपन । वक्षस्थल=हृदय । प्रदीप-निर्माण=मुक्ति का दीप । स्खलित वसन=अस्तव्यस्त वस्त्र । अमरण=अमर मुकुलित=खिला हुआ ।

अर्थ—हे यमुना ! वह सहसा शरीर में शीघ्र ही कम्पन का सजीव भाव भर देने वाली, सुगंधि की वायु, अधीर वितान, सहसा हृदय को कँपा देने वाली पलपल मद रखने वाली, मुक्ति का दीप, गुप्त रहस्यों की रचना की अतिशयता से पूर्ण, श्रम, क्रमानुसार संचित ज्ञान, अस्त-व्यस्त वस्त्र वाले शरीर के समान अमर शरीर वाली, नग्न उदास तथा व्यथित अभिमान वाली वह खिली हुई लावण्यता और छिपे हुए मधु से समान अधखिले पुष्प के विकल विकास के समान, सहसा प्रकृति के अनुकूल होने वाली तथा प्रिय दुकूल के प्रथम प्रकाश के समान (वह छवि कौन है ?)

अलंकार—उल्लेख ।

वह अभिराम·········क्षीण ।

शब्दार्थ--अभिराम सुन्दर । दिवा-विभावरी=दिन-रात । सन्धान=खोज । निष्प्रभ=प्रभाहीन ।

अर्थ—हे यमुना ! सुन्दर कामनाओं से भरी हुई लज्जित हृदय वाली उज्ज्वल विश्वास वाली निष्काम दिन-रात के स्वरूप वाली, अपने रूप के मद में मंजुल हास करने वाली, सुवेश-विस्तार के कुंज में उत्सुकता, से प्रिय की खोज करने वाली, तारों के नीरव समाज में तेरे मृदुल गीत के रूप से फूट पड़ने वाली; अतृप्त आग्रह से सींची हुई, विरह रूपी वृक्ष की मलीन जड़, अपने ही फूलों से वंचित गौरव कर, प्रभाहीन और क्षीण (वह छवि कौन है ?)

अलंकार—उल्लेख।

वह निशीथ.........वह रस।

शब्दार्थ—निशीथ=रात्रि। दम्प=दबी हुई। विस्मृत-पथ-परिचायक= भूले मार्ग को याद दिलाने वाली। रास=नृत्य।

अर्थ—हे यमुना ! रात की भयंकर वेदना, दिन की दबी हुई दुराशा के रूप में वह आज अंधेरे का प्रिय परिचय कहाँ है ? दिन की अपनी लाज कहां है ? जिसके घर के कामों में उदासीनता है, मर्म-मर्म में प्रेम विकसित है निर-पराध हाथों की छाया में अंजन के रंजन का भ्रम और सन्देह बनती है।

भूले मार्ग की याद दिलाने वाले के स्वर ले जिसने सीमा के वन्धनों को तोड़ दिया है, वह रास चाँदनी के किस मंडप में निर्भय होकर हो रहा है ?

वह कटाक्ष .... साज।

शब्दार्थ—कटाक्ष=चितवन। प्रिय-अनुसरण-प्रयास=प्रिय के पीछे चलने की कोशिश। मदिर=मादक। किलोल=चंचल। मत्त-भृंग-सम=मस्त भौंरे के समान। मुख-अम्बुज-मधु-लुब्ध=मुख रूपी कमल के मधु के लोभी।

अर्थ—अतीत की वीती हुई घटनाओं की ओर संकेत करता हुआ कवि यमुना से पूछता है कि हे यमुना ! वह चंचल चितवन, यौवन मन, वन-वन में प्रिय (कृष्ण) का पीछा करने की कोशिश, अपलक और सहज चितवन पर प्रिय का अटल अचल विश्वास, अलकों की सुगंधि की मादकता, नदी के स्पर्श से शीतल होकर मन्द-मन्द चलने वाली वायु, उसका स्वच्छन्द प्रवाह, चंचल तथा गतिमान चरण, कटि, भुजा तथा गर्दन का वह उत्साह; मुख रूपी कमल के मधु के लोभी मस्त भौंरे के समान तप-तारा के संग-संग घूमने वाले, विकल वितोड़ित चरण अंक पर शरण विमुख होकर क्षुब्ध नूपुर के हृदय में वजने वाला वह संगीत जो विजय के पद से गर्भित था और जो नाच के द्वारा चपल बनाये गये अधरों से फूटा करता था, आज कहाँ गया ? वह अजेय तथा इंगित से भावों को व्यक्त करने वाला मुख तथा वह सुख से भरा हुआ साज आज कहाँ है ?

वह अपनी ....पार।

शब्दार्थ—प्रकृति=स्वभाव। वृन्त=शाखा। विकच=खिलना। प्रचुर =वहुत। दुस्तर=दुर्गम।

अर्थ—हे यमुना ! अपने स्वभाव के अनुसार अधीर होकर शाखा पर खिलने वाला फूल, विश्व का वह उदार संवाद, नयनों का अनन्त नीर, वह मध्याग्नि के समान जलती हुई तृषा का स्वरूप अधिक मात्रा में प्राप्य वह आदि रस, सकल प्रेम का विस्तार, जीवन के दुर्गम तालाब तथा सागर को पार करना (आज कहाँ चला गया ?)

अलंकार – उपमा ।

वह अंजलि········अभिषेक ।

शब्दार्थ—प्रसून=फूल । सान्त=अन्त सहित । ऊतसित=चंचल । स्खलन=अस्त-व्यस्त ।

अर्थ—कवि यमुना से पूछता है कि हे यमुना ! वह कली की कोमल अंजलि, वह फूल की अन्तिम दृष्टि, वह अनन्त का अन्त सहित ध्वंस, अन्त सहित विश्व की वह अगणित सृष्टि, वह चंचल पलकों पर छाया हुआ विराम, स्मृति की प्रथम चंचल तरंग, वह उद्दीपन, वह मृदुल कम्पन, वह अपनापन, वह प्रिय के साथ रहना, लज्जा के अनजाने ही तिरोहित हो जाने को, शिथिल घूँघट के अस्त-व्यस्त होने को देखकर वह हास्य और मधुरता में मिली हुई वह लज्जा रहित उक्ति और वह नवयौवन का अभिषेक (आज कहां चला गया) ।

मुग्ध रूप······· वह कौन ?

शब्दार्थ—क्रय-विक्रय=खरीदना और बेचना । विनिमय=लेना-देना । विक्षुब्ध=लुप्त । पीन=दृढ़ ।

अर्थ—हे यमुना ! मुग्ध रूप का वह खरीदना और वेचना, निर्दय भाव का लेना और देना, कठोर हाथों में अपने भावपूर्ण मन को सौंपकर वह विस्मृति मरण, वह चाव, वह असफल छल की सरल कल्पना, ललनाओं के मृदुल उद्गार और दृढ़ यौवन का पीन उभार लुप्त होकर कहां चला गया ?

मृदु चितवन की तूलिका उठाकर और मन की मदिरा में चुपचाप मादकता भरकर अपलक आकाश के नीले पटल पर अटल शोभा का अंकित करने वाला वह कौन है ?

अलंकार—रूपक ।

कहाँ यहाँ······· निश्वास ।

शब्दार्थ—अस्थिर=चंचल । स्रोत=झरना । अधिकृत=अधिकार में किये हुए । वातास=वायु ।

अर्थ—कवि यमुना से पूछता है कि हे यमुना ! वह चंचल तृष्णा का चुपचाप वहता हुआ निर्झर अब कहां चला गया ? निरुपाय तृणों से बहते वे अगणित जीवन अब कहाँ चले गये ? नयनों में समाया हुआ वह अपराध यहां पर अब देखने को नहीं मिलता और न अब वह संगीत सुनाई पड़ता है जो अवाध गति से अधिकार में किये हुए अधरों से फूटा करता था।

यहाँ पर विरह दुःख से उत्पन्न गहरे साँसों को लेकर अब वहाँ भी नहीं चलती अर्थात् अब यहां पर वे विरही भी दिखाई नहीं देते और अब न यह विश्वास ही यहाँ पर रहा है जो मृदु मलीन मर्म से निनक कर मुरझा जाता था।

कहां छलकते·······भाव महान।

शब्दार्थ—अम्बर=वस्त्र। घट=घड़ा।

अर्थ—कवि यमुना से पूछता है कि हे यमुना ? अब वैसे ही व्रज-नारियों के छलकते हुए गागर कहाँ हैं ? और उनके पानी से भीगते हुए अब वैसे ही वाहु, उरोज, अधर तथा वस्त्र कहां हैं ? वाहुओं में बँधा हुआ तथा प्रत्येक अपवाद को प्रकट करता हुआ अब वह घड़ा कहां है ? नवयुवतियों की अलकों तथा पलकों को हिलाने वाली वायु तो अब यहां नहीं बहती है।

आँखों के सुन्दर कोरों में चुपचाप आंसुओं में मुस्कान भरने वाली अब बालाएँ भी तो नहीं रहीं और न अब यहां पर विरह तथा मिलन के महान् भाव एक साथ खिलते हैं।

कहाँ सूर के·······असार।

शब्दार्थ—सूर=भक्तकवि सूरदास। अरविन्द=कमल। कदली=केला। श्रीफल=उरोज। मिलिन्द=भौंरा। मयूर=मोर। पावस=वर्षा ऋतु।

अर्थ—कवि कहता है कि सूरदान के वे पद भी नहीं रहे जिनमें रूप के बाग का रूपक बनाकर दाड़िम, कुन्द, खिला हुआ कमल, केला, चम्पक, सरोज, मृगशावक, खंजन, तोता, कोयल, हंस तथा भौंरे के प्रतीकों के द्वारा रूप-माधुरी का वर्णन किया किया गया है। एक ही रूप में आज वे शेर और हिरन कहां रह गए हैं जो अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर स्वतन्त्रता से एक साथ ही विचरण करते हैं और जहां पर काले नाग तथा मोरों का अपार, सहज सुख को देने वाला वन्धु-भाव दिखाया गया है।

वर्षा ऋतु में वेग से बहने वाली धारा में कुन्जों का वह बन्धन अब नष्ट

होकर जगत की विस्मित आँखों में दिन में देखे गये स्वप्न की भाँति असार होकर रह गया है।

विशेष—इन पंक्तियों में सूरदास के निम्नलिखित पद की ओर संकेत है—

'अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग ॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरवर, गिर पर फूले कंज-पराग ॥
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, अमृत-फल लाग ॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक पिक, मृग-मद काग ॥
खंजन, धनुष, चन्द्रमा ऊपर ता ऊर इक मनिधर नाग ॥
अंग-अंग प्रति और-और छवि, उपमा ताकौ करत न त्याग ॥
सूरदास प्रभु पियौ सुधा-रस, मानो अधरनि के वड़ भाग ॥

द्रव-नीहार.........प्रकाश।

शब्दार्थ—द्रव-नीहार=ओस का पानी। अचल-अधरों से=पर्वत रूपी होठों से। सन्ताप=दुःख। आवर्तन=चक्र। अम्बुद=सागर।

अर्थ—कवि यमुना को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे यमुना! पर्वत रूपी होठों से पर्वत के हृदय के जो सन्ताप गल-गलकर तेरे तट से अटक रहे थे, वे अब अपना सिर पटक कर विलाप कर रहे हैं और वे दुःख भरे दिनों के चक्र के समान अब सागर की ओर बढ़ रहे हैं और घूम-घूमकर अपने नैनों की कोरों में अपनी मरोर (चितवन) को देख रहे हैं।

एक रागिनी जो तेरे तट पर मौन तथा उदास होकर रह जाती है, वही डूबे हुए भवन की स्मृति के समान मन को क्षीण प्रकाश—सान्त्वना—दे जाती है।

टूट रहे.........गान ?

शब्दार्थ—निस्सीम व्योम=अपार आकाश। अविचल=स्थिर।

अर्थ—कवि यमुना से प्रश्न करता है कि हे यमुना ? पलक-पलक पर तारों के ये जितने तार टूट रहे हैं और अब तक के जग के रागों का जिनमें गुंजार छिपा हुआ है, उन्हें खींचकर अपार आकाश की वीणा में झंकार करने तथा अपने स्थिर आसन पर बैठकर देवदूत जो अपार गीत गाते हैं और उनके कांपते हुए करुण हाथों में तारक तथा तारों की जो तान होती है, क्या तू भी अपने अतीत के ऐसे ही गीत गाती है।

स्मृति

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ ई० में की गई थी। इसमें कवि ने स्मृति का मानवीकरण करके मन के अनेक भावो का सजीव चित्रण मिया है। छायावादी विशेषाताओं से परिपूर्ण इस कविता का छायावाद के साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

जटिल जीवन-नद .... हो ध्यान।

शब्दार्थ—जीवन-नद=जीवन रूपी नदी। प्रेमालाप=प्रेमपूर्ण बातें।

अर्थ—कवि अपनी स्मृति को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे प्रिय स्मृति! तुम जीवन की कठोर नदी में तैर-तैर कर उसमें चुपचाप डूब जाती हो। हे सतत द्रुत गतिमय स्मृति! तुम फिर उसमें उमड़-उमड़ कर प्रेमपूर्ण बातें करती हो। तुम मेरे सोये हुए अतीत के गीतों को सुनाकर मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लेती हो।

अलंकार—रूपक।

सफल जीवन.........निरुपाय।

शब्दार्थ—सकल=तमाम। निर्मम=निर्दय। शतदल-सर=कमलों से भरा हुआ तालाव। निरुपाय=असहाय।

अर्थ—हे स्मृति! जीवन की सभी सफलता तथा असफलताएँ, कहीं की जीत और कहीं की हार को तुम्हारी ही निर्दय झंकार जगा देती है, अर्थात् तुम्हारे ही द्वारा जीवन की सफलताएँ याद हो आती हैं। तब मैं तेज वायु के द्वारा झिकझोरे हुए कमलों से भरे तालाब की भांति असहाय होने के कारण केवल व्याकुल होकर रह जाता हूं।

मुक्त शैशव......वह छन्द।

शब्दार्थ—मलय=शीतल, पवन। स्नेह-कम्पित=प्रेम के द्वारा कँपाया गया। अस्फुट=जो लिखा न हो। कनक-प्रभात=सोने के समान उज्ज्वल प्रातःकाल।

अर्थ—मृदुल और मधुर शीतल पवन के समान बचपन की वह निबंध अवस्था, किसलय के नये गात के समान प्रेम से कँपाया गया शरीर (यौवनावस्था), अनखिले कुसुमों का सा नवीन-नवीन संचय और जीवन का सोने के समान उज्ज्वल प्रातःकाल, ये सब आज अचेतन अतीत में बन्द हो गये हैं;

अर्थात् बीत चुके हैं और इसी में छन्दों को वह ताल वह गति और वह लय भी बन्द हो गई है।

आंसुओं से ····· अछोर।

शब्दार्थ—अन्तर=हृदय। अछोर=असीम।

अर्थ कवि अपने संगीत की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि स्वच्छ झरने के जल-कणों के समान झर-झर करके आँसुओं से झरने वाले कोमल प्राण जो सिमट-सिमट कर तथा सट-सट कर जिसे जीवन-दान देते थे, वही चुम्बन की पहली हिलोर स्वप्न की स्मृति बनकर दूर, गत और असीम हो गई है, अर्थात् प्रेमावस्था का प्रारम्भ अब बीत चुका है।

पली सुख-वृन्तों········निरुपाय।

शब्दार्थ—सुख-वृन्त=सुख रूपी शाखाएँ। विजन-मद-मुदित=निर्जन प्रवेश में मन को प्रसन्न करने वाली। वक्षस्थल=हृदय।

अर्थ—जिन कलियों का पालन-पोषण सुख रूपी शाखाओं पर हुआ था, जो वृक्ष के हृदय पर लटकते हुए हार के समान थीं, जिनका समूह निर्जन प्रदेश में मन को प्रसन्न करने वाला था, जो प्रेम के उपवन की सुख थीं, उसका शृंगार थीं, वे ही कलियाँ आज असहाय होकर तथा अनाथ बनकर वृक्ष के हृदय से झर गई हैं।

मूर्ति वह ·······अस्फुट बोल।

शब्दार्थ—अश्रुत=मौन। मुक्त कुन्तल—खुले हुए बाल। लोल—चंचल। प्रणय-पीड़ित=प्रेम से पीड़ित। अस्फुट—अस्पष्ट।

अर्थ—यौवन की वह मूर्ति जो बढ़-बढ़कर एक मौन भाषा की तान बनी थी। वह फिर-फिर कर तथा अड़-अड़कर स्वप्न की भाँति अलसाये नेत्रों में मान का रूप धारण कर गई और बिखरे हुए बाल एवं व्याकुल चंचल मुख तथा वे अस्पष्ट वचन प्रेम से पीड़ित हो गये।

तृप्ति वह······· शरीराधीन।

शब्दार्थ—अविकृत=पूर्ण। क्लांति=थकान। गरल=विष।

अर्थ—वह तृष्णा की पूर्ण तृप्ति जो स्वर्ग की आशाओं की भाँति सुन्दर थी, थकान की वह सरल मूर्ति जो अलसाई हुई थी, विष की अमृत और अमृत की प्राण वह रेणु किस दिशा में लीन हो गई जो अब वेणु की आवाज की भाँति इस शरीर के अधीन नहीं है।

सरल-शैशव-श्री·········छटा विस्तार ।

शब्दार्थ—शैशव-श्री=वचपन की शोभा । केलि=आनन्द । हरित-हृत पल्लव-नव-शृंगार=हरे पत्तों का हरण किया हुआ नवीन शृंगार । निरलस=आलस्य रहित । अविकार=पूर्ण ।

अर्थ—सरल वचपन की शोभा, सुख-पूर्ण यौवन, कोमल कलियों तथा भौंरों का आनन्द, शंकाहीन नेत्र, काँपते हुए अधर, हरे पत्तों का हरण किया हुआ नवीन शृंगार, आलस्य रहित तथा पूर्ण दिन की द्युति की शोभा, तथा साँसें भरते हुए विश्व की शोभा का विस्तार (अब नहीं रहा, केवल उसकी स्मृति ही शेष रह गई है ।)

नियति संध्या·······द्वार !

शब्दार्थ—नियति-सन्ध्या=भाग्य की सांझ । दिनमणि=सूर्य । परिमल=सुगन्धि । लक्ष-वक्षस्थलर्गलित=लाखों हृदयों पर अर्गला लगे हुए ।

अर्थ—उसी सूर्य के दिन जो दिन में अपना प्रकाश लेकर पूर्णतया चमक रहा था, अगणित सारे साज भाग्य की संध्या में मुँद गये हैं । अब न तो वे फूल हैं, न वह सुगन्धित है, न वे होंठ हैं और न वह लाज है । चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार फैल गया है और लाखों हृदयों पर अर्गला लगे हुए द्वार ही शेष रह गये है ।

उषा-सी ······· पुष्प संसार ।

शब्दार्थ—द्विदल=दो दल वाली । ईप्सित मंगल=चाहा हुआ कल्याण । मधु-गलित=मधु से भीगा हुआ ।

अर्थ—कवि स्मृति को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे स्मृति ! वताओ तो सही, तुम ऊषा की भांति दो दल वाली सोती हुई पलकों पर अपना कोमल हाथ क्यों सैर देती हो और चाहे हुए कल्याण से मुक्त उसी प्रभात को तुम फिर से क्यों जगा देती हो, जिसमें वही पहले जैसा सुख है, वही भौंरों की गूँज है और वही मधु से भीगा हुआ फूलों का संसार है ?

जगत उर······· क्या छन्द ।

शब्दार्थ—गत=नष्ट । चिता=मृत्यु । चिरता=अटलता ।

अर्थ—कवि स्मृति से पूछता है कि हे स्मृति ! संसार के हृदय की नष्ट हुई अभिलाषाओं को, शिथिल हृदय की सोई हुई तानों को, विस्मृति की दूर हुई तथा मृत भाषा को, मृत्यु की अटलता के आह्वान को जगाने में तुझे क्या

आनन्द मिलता है ? अस्त-व्यस्त गीत का कोई छन्द भी तो नहीं होता। कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार विश्रृंखलित शब्द-योजना में किसी छन्द का अन्वेषण हेय है, उसी प्रकार अतीत के स्वप्नों को जगाना भी निरर्थक है।

मुँदी जो छवि ······ हो सींच ?

शब्दार्थ—सुरा=शराब, मादकता।

अर्थ—कवि स्मृति से प्रश्न करता है कि हे स्मृति ? चलते दिन की जो शोभा मृदुल शमन के कारण सुकुमार आंखों में समाप्त हो जाती है, जिनकी धूमिल जीवन-संध्या विस्मृति के पार हो रही है, अर्थात् भुलाई जा रही है, तुम उसके चित्र खींचकर, उसे याद दिला कर उसमें मादकता क्यों घोल देती हो ?

छिपा जो छवि······सार्थ !

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—जो शोभा छिप गई है,उसे छिप जाने दो। उसे खोलने का तुमको क्या चाव है ? उसके खुलने से—स्मरण हो जाने से--जो दुःख देने वाली झलक मन पर आती है, उसे मत आने दो। हमें निश्चित होकर अपनी जीवन नौका खेनें दो। मेरे ये हाथ क्रमशः दुर्बल हो गये हैं और अब इनको कोई सहारा देने वाला भी नहीं है।

बँधे जीवों की·······नूतन संसार।

शब्दार्थ—पूर्वश्रुत=पहले सुनी हुई। जीर्ण=निर्बल।

अर्थ–कवि स्मृति को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे स्मृति ! तुम संसार की विषमताओं में बँधे जीवों के लिए माया बनकर दिन-रात उन्हें फेरती रहती हो, और पहले सुनी हुई इस बात को सुनाती रहती हो कि यह शरीर तो दुःख-सुख का समन्वय है। फिर इस निर्बल जीवन का दृढ़ निश्चय इस नये संसार को चलता है।

यही तो है ······ ज्ञानाज्ञान।

शब्दार्थ - अहंकृति=अहंकार। अविराम=निरन्तर। ज्ञानाज्ञान=ज्ञान और अज्ञान।

अर्थ—यही तो जग का कम्पन है अचलता में ही भली प्रकार के स्पन्दित होने वाले प्राण रहते हैं। अहंकार में ही जीवन की झंकार है और निरन्तर उत्थान-पतन में ही जीवन की सरसता निहित है। दया, भय, हर्ष, क्रोध, अभिमान, दुख, सुख, तृष्णा, ज्ञान और अज्ञान ये सब जीवन के अर्थ हैं।

रश्मि से ······ उस पार ।

शब्दार्थ—रश्मि=किरण । दिनकर=सूर्य । अन्ध=बारीक । उर में=गहरे काले बादलों के हृदय में ।

अर्थ—स्मृति को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि सूर्य की किरण से सुन्दर तुम अपने आप गहरे काले बादलों के हृदय में अपनी तूलिका से रचकर तथा हर्षित होकर चाप खोल देती हो । तुम आशा का नवीन संसार उगाकर तथा चकित होकर उस पार छिप जाती हो ।

पवन में ······ तड़ित प्रवाह ।

शब्दार्थ—मुदित दल=बंद पंखड़ियां । निशि-भोर=रात और प्रभात । अन्तस्तल=हृदय । तड़ित-प्रवाह=बिजली का वेग ।

अर्थ—हे स्मृति ! तुम प्रतिपल पवन में छिपकर और पल्लवों में मृदुल हिलोर पर कली की बंद पंखुड़ियों को चूम कर पत्तों के छेदों में रात को तथा प्रभात को गाकर तुम बिजली के वेग के समान संसार के हृदय में चाह जगा देती हो ।

ध्वनि

कविता यरिचय—इस कविता की रचना सन् १९२३ ई० में हुई थी । इसमें कवि का जीवन के प्रति आस्था और दृढ़ विश्वास मुखरित हुआ है । कवि की धारणा है कि उसे जीवन में बहुत कुछ करना है, अनेक प्राणियों को दुःख से छुट कर सुख प्रदान करता है, अतः अभी उसके जीवन का अन्त सम्भव नहीं है ।

अभी न ·······मनोहर

शब्दार्थ—मृदुल=सुन्दर । प्रत्यूष=प्रभात ।

अर्थ – कवि जीवन के प्रति आस्था और दृढ़ विश्वास प्रकट करता हुआ कहता है कि अभी मेरा अन्त नहीं होगा, क्योंकि मेरे जीवन-रूपी वन में अभी अभी तो सुन्दर वसन्त का आगमन हुआ है । ये हरे-हरे पत्ते तथा कोमल डालियाँ और कोमल शरीर वाली कलियां अभी-अभी तो महकी ही हैं ।

मैं ही अपना स्वप्नों जैसा कोमल हाथ फेर कर सोई हुई कलियों में एक मनोहर प्रभात को जगाऊँगा ।

पुष्प-पुष्प·······मेरा अन्त ।

शब्दार्थ—तन्द्रालय=नींद के कारण आलस्य में भरे हुए । अनन्त=

भगवान् ।

अर्थ मैं प्रत्येक फूल से उनमें नींद के कारण जो आलस्य भरा हुआ है और उस कारण उनमें जो लालसा जगी हुई है, उसे दूर करके प्रसन्नता के साथ अपने जीवन के अमृत से उन्हें सींच दूंगा और फिर उनको वह मार्ग दिखा दूंगा जहां पर सच्चिदानन्द भगवान् निवास करते है। अभी मेरा अन्त नहीं होगा।

मेरे जीवन का······मेरा अन्त ।

शब्दार्थ—कल्लोलों=चंचल लहरों। बालक मन=बालकों जैसा चौला मन। राग=गीत। दिगन्त=दिशाएँ।

अर्थ अभी तो मेरे जीनन का प्रथम चरण ही है, अर्थात् मैंने अभी तो अपने जीवन में कदम ही रखा है, अतः इस जीवन में मृत्यु की भी अकर्मण्यता नहीं वरन् जीवन का-सा आवेश है। अभी तो आगे के लिए सारा यौवन पड़ा हुआ है। इसलिए मेरा यह बालकों-जैसा भोलापन स्पर्श जैसी चमकती हुई किरणों की चंचल लहरों पर वहती है। हे बन्धु ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे ही अविकसित गीतों में दिशाओं का विकास होगा, इसलिए अभी मेरा अन्त नहीं होगा।

अंजलि

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ ई० में हुई थी। रहस्य-भावना इसमें स्पष्ट है। आत्मा-परमात्मा से मिलकर अपने समस्त संघर्षों को समाप्त कर जीवन मुक्त हो जाना चाहती है, इसलिए यह परमात्मा से बार-बार प्रार्थना करती है कि वह उसके लिए अपना द्वार खोल दे, उसे अपनी शरण में ले ले।

बन्द तुम्हारा·······क्यों द्वार ।

शब्दार्थ—कुसुमित=फूलों से भरे हुए। कुंज-द्रुमों से=वृक्षों के समूह से। सुरभित=सुगन्धित। संचित=इकट्ठा करना।

अर्थ—हे मेरे सुहाग शृंगार ! तुम्हारा द्वार बन्द है, अतः यह द्वार खोलो क्या तुमने मेरी करुणा पुकार नहीं सुनी ? कुछ तो बोलो तुम मौन क्यों हो ?

मैं बड़े ही यत्न से आज हृदय-रत्न को फूलों से भरे हुच वृक्षों के समूह की सुगन्धि से सजाकर तथा इकट्ठा करके लाई हूं। तुम तो इस रत्न से बहुत

दिनों से वंचित हो प्रिय ! यह हृदय-रत्न ले लो, यह न तो द्वार है और न मेरे प्रेम का कोई अमूल्य उपहार है, इसमें मेरा कहीं भी नाम-निशान नहीं है, इसलिए इस पर मुझे अभिमान नहीं हो सकता। लेकिन मैं यह नहीं जानती कि अगर इन फूलों के मन के वीच में लज्जा छिपी हुई हो और वह माला पड़ते ही तुमसे विजय-हृदय पर मेरा राज छीन ले, अर्थात् मेरे प्रति जो प्रेम है, वह दुर्बल पड़ जाये। हे प्रियतम ! अपने मन की बात बताओ कि मेरे आते ही तुमने अपना द्वार वंद क्यों कर लिया है।

सोते हुए······· परिहार ?

शब्दार्थ—पारिजात=कमल। परिहार=त्याग।

अर्थ—क्या तुम सोते हुए स्वप्न देखते हो ? या नन्दनवन का कमल लेकर और किसी के लिए हार बना रहे हो और उस विहार में पड़े हुए क्या तुम मेरा इस प्रकार त्याग कर रहे हो ? भाव यह है कि क्या तुम्हारा मन किसी अन्य में आसक्त हो गया है और इसी कारण तुम मेरी उपेक्षा करते हो।

बिछे हुए ········· पाई

शब्दार्थ—कंटकाकीर्ण=कांटों से भरी हुई।

अर्थ—उन प्रेमी की गलियों में बन्धनों के कांटे बिछे हुए थे जिनमें चलकर मैं तुम्हारे पास आई हूँ, जव मेरे पैरों में काँटे छिद जाते थे तो मैं तव आह भर कर तुम्हें याद करती। अपनी प्रीत की वह राह, जो कांटों से भरी हुई थी, अव मैंने तय कर ली है।

पड़ी अन्धेर·······संसार।

शब्दार्थ—दिनमणि=सूर्य। प्रेम-हरित=प्रेम के द्वारा हरा अर्थात् प्रसन्न।

अर्थ—हे प्रियतर ! अन्धेरे में कब से खड़ी हुई तुम्हारी यह कमलिनी कुम्हला रही है। हे मन के सूर्य और प्रेम के प्रकाश ! उदार हो जाओ, अपना हाथ बढ़ाओ, उसे खिलाओ और हे प्रियतम ! अपना द्वार खोलो। उसका यह प्रेमोपहार अपने गले में पहन लो और उसके मृदुल तथा सुगंधित परागों से उसे सुगंधित, प्रेम के द्वारा हरा और स्वच्छन्द कर दो, क्योंकि यह संसार द्वेष तथा विष से जर्जर हो रहा हैं।

दीन

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ में की थी।

इसमें कवि ने पहले तो एक दीन के दुःखों का संकेत दिया है, तत्पश्चात् वह दुःख का दार्शनिक विवेचन करते लगता है। कवि के अनुसार दुःख से जीवन प्रेरणा मिलती है, कर्मण्यता आती है और जीवन सुख और शाँति का आधार बन जाता है। इसके विपरीत दुःख अकर्मण्यता तथा अशांति का जनक है। अतः सुख की अपेक्षा दुःख अधिक बाह्य है।

सहजात ...... दिन-रात।

शब्दार्थ—सहजात=साथ उत्पन्न हुए। उत्पीड़त=दुःख वेदना। निरंकुश=स्वच्छन्द। भग्न=टूटना। तप्त=दुःख पूर्ण। क्षोभ=दुख। परार्थ=परोपकार। स्मृति=सृष्टि। अविराम=निरन्तर।

अर्थ—कवि दीन के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हुआ कहता है कि तुम्हारा जन्म भी दुख में हुआ हैं और वेदना स्वच्छन्द होकर पूर्ण रूप से तुम्हारे साथ खेल करती है, अर्थात् तुम सदैव किसी न किसी भयंकर दुख से आक्रांत रहते हो। इसी दुख के कारण तुम्हारा दुर्बल हृदय सदा टूटता रहता हैं। तुम अपने हृदय की दुखपूर्ण विपत्तियों को अन्तिम आशा के कानों में हम सबके धड़कते हुए प्राणों में धीमे किन्तु करुणा भरे स्वरों में कह जाते हो और संसार की ओर सहायता की आशा से केवल देखते-देखते, अपने हृदय का दुख त्यागकर जीवन में आये हुए दुख को सहन कर जाते हो। साथ ही तुम यह भी कह जाते हो कि इस संसार में जन्म लेना ही बुरा है, इसलिए यहां पर नहीं आना चाहिये, क्यों कि यहाँ पर सदा अत्याचारों का राज्य चलता रहता है, यहाँ सदा दुख ही दुख उठाना पड़ता है, जो मनुष्य अत्याचारी होते हैं, वे ही यहां पर शूर-वीर कहलाते हैं और जो व्यक्ति हृदय का शूर होता है उच्च विचारों से परिपूर्ण होता है, वह सदा ही दुर्बल और अत्याचारी माना जाता है। यहाँ का व्यक्ति परोपकार से सदा ही दूर रहकर अपनी स्वार्थ-साधना में लगा रहता है; परोपकार के केवल उन्हीं कार्यों को अपनाता है जो उसकी स्वार्थ सिद्धि में सहायक होते हैं। जगत की निद्रा ही यहां पर जागरण माना जाता है; अर्थात् अज्ञान को ही ज्ञान समझा जाता है। इस तथाकथित जागरण का, संसार का और इस समूची सृष्टि का अन्त मृत्यु में जाकर होता है; अर्थात् यह संसार नश्वर है और इसका नाथ अवश्यम्भावी है। यहाँ पर निरन्तर धोखा मिलता है, चोटें सहनी पड़ती हैं, यहां हमेशा कोई न कोई उत्पात होता रहता है। इस संसार में रात-दिन यही क्रम चलता रहता है।

यही मेरा ......सदा अशांति ।

शब्दार्थ—क्रंदन=दुखपूर्ण रोदन । किरणाज्ज्वल=किरणों के द्वारा उज्ज्वल । कर्म-कुटिल=कर्मों की जटिलता ।

अर्थ—जीवन में जो उत्थान-पतन के क्रम चलते रहते हैं, वे ही मेरे, इनके उनके सबके स्पन्दन हैं, अर्थात् उन्हीं से जीवन को प्रेरणा मिलती है । शस्य से मिला हुआ क्रन्दन—सुख तथा दुख का समन्वय ही जीवन की प्रेरणा है । यही मेरा, इनका, उनका, सबका जीवन है और इन्हीं के द्वारा जीवन में दिन में किरणों के द्वारा उज्ज्वलता के समान प्रगति आती है । रात का सोना ही—अकर्मण्य होना ही—जीवन का पतन है; दिन में किये गए कर्मों की जटिलता का अंधकार—कर्मण्यता का दुर्वह भार—ही जीवन में शांति प्रदान करता है । रात्रि का मोह—अज्ञान का बन्धन स्वप्न की भ्रांति के समान निरर्थक है । जिससे सदा अशांति रहती है ।

धारा

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ ई० में की गई थी । इसमें बताया गया है कि यौवन-नदी का प्रवाह अबाध होता है, कोई उसे रोक नहीं सकता । इसीलिए अच्छा यही है कि यह जिस दिशा में बहे, उसे बहने दिया जाये । कविता के अन्त में, कवि ने अपने विचारों को दार्शनिक पुट दया है ।

बहने दो........बहने दो ।

शब्दार्थ—प्रबल वेग=तेज धारा ।

अर्थ—यौवन की बन्धनहीनता एवं प्रबलता बताते हुए कवि कहता है कि इस यौवन के मद से भरी हुई नदी को बहने दो, क्योंकि किसी रोक-टोक से यह कभी नहीं रुकती है और न यह किसी को देखकर झुकती है । वह गरज-गरज कर जो कुछ भी कहती है, उसे कहने दो और जिधर उसकी इच्छा हो, उसी दिशा में उसे तेज धारा में बहने दो ।

अलंकार—रूपक ।

सुना उसे ...... बह जाओगे ।

शब्दार्थ—कुंजर=हाथी । तरंगों में=लहरों में ।

अर्थ—यौवन की धारा की प्रबलता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि यह सुना गया है कि इस धारा को रोकने के लिए कभी कोई हाथी आया

था। फिर उसकी क्या दशा हुई है ? उसे क्या फल मिला। यह वेचारा तिनके की तरह लहरों में इधर-उधर मारा-मारा फिरा, उसका गर्व चूर-चूर हो गया और वह हार गया। यदि तुम भी हठ करके इस धारा को रोकने के लिए जाओगे तो निश्चय ही तुम्हारी दुर्दशा होगी और तुम इसके प्रबल वेग में बह जाओगे।

देखते नहीं·······यह सारा।

शब्दार्थ—तांडव=एक प्रकार का नाच जिसे करके शिव सृष्टि में प्रलय कर देते हैं। त्रस्त=भयभीत।

अर्थ – यौवन नदी के प्रचण्ड वेग का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि देखते नहीं, यौवन की नदी कितने वेग से लहराती है, ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे शिव का प्रत्यक्ष ताण्डव नाच हो रहा हो; अर्थात् प्रलय होने वाली हो। यह किस प्रकार अपनी मतवाली चाल से लहराती हुई वहती है। प्रकृति को देखो, जो इसके प्रबल वेग को देखकर आंखें बन्द करके भयभीत होकर खड़ी है और थर-थर कांप रही है। आज मन के सारे बन्धन ढीले हो गये हैं, और प्राण स्वतन्त्र हो गये हैं। आज सारा दुख भरा रोदन रुक गया है और इसकी पागल धारा को बहता हुआ देखकर यह सारा विश्व असहाय बनकर इसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ है।

अलंकार—उपमा।

बड़े दम्भ से ······ चटकी है।

शब्दार्थ—दम्भ=घमंड। भूधर=पर्वत। शिला-खंड-चय=शिलाखंडों के समूह। नर-मुण्ड-मालिनी=मनुष्यों के सिरों की माला पहनने वाली।

अर्थ—कवि यौवन नदी के प्रबल वेग का वर्णन करता हुआ कहता है कि बड़े घमण्ड से खड़े हुए ये पर्वत जिसको बालिका समझे हुए थे अव वही शिला खंडों के समूह का विनाश कर रही है। इस विनाश को देखकर वे घमंडी पर्वत भय के कारण थर-थर कांप रहे है और वे विध्वंस होते हुए शिलाखंड उसे मनुष्यों के सिरों की माला पहनने वाली दुर्गा बता रहे हैं। उसकी बिखरी हुई लटें इधर-उधर लटक रही हैं और इसके काले हृदय पर सोने जैसी चमकती हुई किरणों की रेखाएँ चमक रही हैं, जिनमें से एक पर आकर दृष्टि ठहर गई है। मैंने देखा कि एक कली चटकी है, खिल गई है।

लहरों पर ....असीम के संग ।

शब्दार्थ—प्रियतम असीम=परमात्मा ।

अर्थ—यौवन नदी की एक प्रबलता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि लहरें एक दूसरी लहर पर चढ़कर इतनी चंचलता से नाच रही थीं कि उनकी परख करना भी याद नहीं रहता था । यदि कोई उससे कुछ पूछता तो वह यौवन नदी उसी तरह पागलों की तरह बहती हुई उत्तर देती है कि नव जीवन की प्रबल उमंग के साथ, संसार की सीमा को पार करके मैं अपने असीम प्रियतम—परमात्मा—से मिलने जा रही हूँ ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने अपने भावों में दार्शनिकता का समावेश कर दिया है ।

आह्वान

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ में हुई थी । प्रलय का आह्वान करना आधुनिक कवियों की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । इस कविता में भी श्यामा का आह्वान करके उनसे यह प्रार्थना की गई है कि वह बस एक बार और अपना ताण्डव-नृत्य कर दें, ताकि वर्तमान विश्व की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाये, तथा फिर से नवीन व्यवस्था का सूत्रपात हो ।

एक बार .... मन अभिरामा ।

शब्दार्थ—श्यामा=महाशक्ति, दुर्गा ।

अर्थ—प्रलय का आह्वान करता हुआ कवि श्यामा से प्रार्थना करता है कि हे श्यामा ! बस तू एक बार और नाच । तेरे नाचने के लिए सभी सामान तैयार है. कितने ही असुर हैं । बता, तुझे कितने असुरों के हार चाहिए । तू मुण्डमालाओं की मेखला बनाकर अपने मन में सुन्दर बन जा । हे श्यामा ! तू बस एक बार और नाच दे ।

भैरवी मेरी ....क्या माँ ।

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—कवि श्यामा का आह्वान करता हुआ कहता है कि हे माँ ! जब मृत्यु तुझसे पंजा लड़ायेगी तभी तेरी भैरवी और झंझा बजेगी, तभी तू अपना खड्ग और खप्पर लेगी और तभी मैं अपनी अंजलि भर-भर उसमें खून भरूँगा उस समय को क्या मैं अपनी उंगलियों पर ही गिनता रहूँ ? अर्थात् हे मां ! तू शीघ्र ही बस एक बार और नाच ।

अट्टहास········सुना माँ।

शब्दार्थ—सिन्धु राग=सागर की एरजना के समान प्रलयंकारी गीत। उत्ताल-तरंग-भंग=ऊँची लहरों की भंगिमा।

अर्थ—श्यामा का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि हे माँ! जब तू अपने अट्टहास और प्रसन्नता से मिले हुए नाच में आनन्द लेगी; अर्थात् तांडव नृत्य शुरू करेगी तो विश्व की इस वीणा के सभी तार टूट जायेंगे, विश्व की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी; उसके जितने भी कोमल छन्द हैं वे सब बन्द हो जायेंगे, तब सागर की गर्जना के समान प्रलयंकारी गीत का प्रारम्भ होगा। हे माँ! तब मृदंग के सुन्दर स्वरों के क्रिया-कलाप में ऊँची लहरों की भंगिमा आ जायेगी, अर्थात् वे स्वरों की कोमलता को छोड़कर भयंकर स्वरों में बोलने लगेंगे। तब मैं कर तल-पल्लव दल के समान निर्जन वन के सभी तमाल वृक्षों को हिलते हुए देखूँगा। हे माँ! झरने के झर-झर स्वर में तू मुझे सरगम सुना दे। हे श्यामा! तू बस एक बार और नाच।

स्वप्न-स्मृति

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १६२२ में हुई थी। इसमें कवि ने अपने गान मधुर स्वप्नों में से एक स्वप्न की मधुर स्मृति का संकेत दिया है। कवि ने अपनी अभिव्यक्ति इतने संयत ढंग से की है कि उसके भावों की लौकिक वेदना पर आध्यात्मिकता की छाया आ गई है; अर्थात् टूटे स्वप्न को याद से लौकिक शृंगार अभिव्यक्त होता है और यही आध्यात्मिक संकेत की व्यंजना भी है।

आंख···· पुष्प से दीन।

शब्दार्थ—व्यक्त=कहा हुआ, प्रकट। अव्यक्त=गुप्त। अन्तस्तल=हृदय, वाताहत=वायु से चोट खाया हुआ।

अर्थ—गत स्वप्नों की स्मृति का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि मैं कुछ ही पल सो गया था कि मैंने देखा कि दो आँसू से भरे हुए नेत्र किसी अनजाने दूर देश से चलकर मेरे पास आये, अर्थात् किसी के दो आँसुओं से छलछलाते हुए नेत्र याद आ गये। उन आँखों की भाषा मौन थी, किन्तु उसके भाव प्रकट थे, अर्थात् उन आँखों से ही उसके हृदय की व्यथा स्पष्ट ज्ञात हो जाती थी। आँखें हृदय पर अपना गुप्त तथा स्पष्ट प्रभाव इस प्रकार छोड़

रही थीं, जैसे कोमल लता पर खिला हुआ तथा वायु से चोट खाया हुआ कोई दीन फूल हो।

अलंकार—उपमा।

भीतर नग्न ...... मर्मस्थल की।

शब्दार्थ—दमन का=इच्छाओं को दमन करने का। सिन्धु-अनल=बड़वानल। जर्जर=दुःख। मर्मस्थल=हृदय।

अर्थ—उन आँखों से यह ज्ञात हो जाता था कि अन्दर ही अन्दर वे अपने इच्छाओं का पूर्णरूप से दमन कर रही थीं और उनके सुख से भरे हुए जीवन का अचल धैर्य दिखाई दे रहा था। उसके हृदय में बड़वानल की तरह प्रचण्ड ज्वाला जल रही थी और उसकी आँखों में केवल दो बूँदें दिखाई दे रही थीं जो शांत भाव में निश्चल थीं जैसे विकल सागर के दुखी हृदय में गति का भाव छाया रहता है।

भाव में .... एक प्रहार।

शब्दार्थ—निमेष-विहीन=निर्निमेष, अपलक।

अर्थ—वे नेत्र अपलक होकर इस प्रकार का भाव प्रकट कर रहे थे और इस प्रकार अन्तिम श्वास छोड़ रहे थे, जैसे थोड़े जल में मछली छोड़ती है—आह! यह संसार भी कितना दुःख पूर्ण है। अब हम यहाँ पर नहीं रहेंगे। तुम्हारा तो एकमात्र आधार मृगतृष्णा से व्यर्थ भटककर और तज्जन्य दुःख से दुःखी होकर हाहाकार करता है। हम इतने दुर्बल हैं कि यदि तुम एक प्रहार भी कर दो तो हमें इस सांसारिक जीवन के दुःख से मुक्ति मिल जाये।

विफल वासना

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ में हुई थी। इससे कवि ने परोक्ष-रीति से अपने हृदय की विफलता का वर्णन किया है। कवि ने जिस प्रकार अपने लौकिक विरह की अभिव्यक्ति की है, उससे वह अभिव्यक्ति लौकिक होते हुए भी रहस्यात्मक बन गई है।

गूँथे तप्त .... चरणों में।

शब्दार्थ—तप्त=दुःख भरे हुए। पुरातन=पुरानी। रुद्ध=बंद। प्रभाकर=सूर्य। प्रखर=तेज।

अर्थ—अपनी विफल वासना का वर्णन कवि एक विरहिणी के माध्यम से करता हुआ कहता है कि हे प्रिय! मैंने कितनी ही बार तब अपने दुःख भरे

आँसुओ से हार गूँथे हैं जब मैं अपनी पुरानी स्मृतियों की धूमिल गोद में बैठी हुई हूं; अर्थात् पुरानी बातें मुझे याद आ गई हैं। तुम्हारी अनुपम कृपा पाने के लिए मैंने अपने वे उपहार कितनी ही बार तुम्हारे बंद द्वार पर रक्खे थे, जिनमें पुरानी स्मृतियां गूंथी हुई थी। मेरे दुखी हृदय का अत्यधिक ताप सूर्य की उन प्रबल किरणों में समा गया है जो अपने स्पर्श से ही अन्य प्राणियों को झुलसा देती है। मैं तुम्हारी अनुरागिनियों के निष्ठुर चरणों में तुम्हारे लिए नूपुर की भाँति अनेक बार बची हूं।

हँसता हुआ ....गाऊँ मैं।

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर। अर्घ्य=स्वागत-जल। बल्लरियां=वेलें। शूल=कांटे।

अर्थ—जब कभी हँसता हुआ बसन्त इस सुन्दर वन में आया तो सारे वृक्ष तरुण हो गये, हरे-भरे हो गये; सारी लताएँ तरुणी हो गईं, हरी-भरी हो गईं और पुराने पत्तों का समूह शाखाओं से झर कर गिर पड़ा। जब तुम्हें स्वागत-जल देने के लिए वे हँसती हुई बेलें आगे बढ़ीं तो मैं अपने हरे अंचल में फूल लिए हुए एक स्थान में खड़ी हुई तुम्हारा स्वागत देख रही थी। हे नाथ! किन्तु मेरे हृदय में उस स्वागत को देखकर जो काँटे चुभते थे, उनका तुमसे किस प्रकार वर्णन करूँ और किस प्रकार अपनी दुख-गाथा तुम्हें सुनाऊँ? अर्थात् मेरा दुख इतना अपार है कि मैं उसका किसी भी प्रकार वर्णन नहीं कर सकती।

छिन्न प्रकृति ....सो जाते हैं।

शब्दार्थ—छिन्न=बिखरता।

अर्थ—मैं अपनी दुख कथा आपको सुनाने में असमर्थ हूँ, क्योंकि जो पुष्प प्रकृति के निर्दय आघातों को सहकर बिखर जाते हैं, वे कुछ नहीं कहते, केवल अपने अपार दुख पर रोते रहते हैं। वे चुपचाप रोते-रोते अपना यौवन रूपी पराग-मधु खोकर और अन्तिम साँस छोड़कर सदा के लिए पृथ्वी पर सो जाते हैं।

वैसे ही ....निर्दय।

शब्दार्थ सरल है।

अर्थ—वैसे भी मैंने रूप और यौवन की चिन्ता में अपना सर्वस्व गँवा दिया है, किन्तु फिर भी मुझे कुछ नहीं मिला। एकमात्र प्रेम मिला था, परन्तु

वह भी तो आशा का एक स्वप्न मात्र था और आज तो विकल हृदय को दुःख के अतिरिक्त कहीं भी कुछ दिखाई नहीं देता। हे देव ! मेरी समझ में नहीं आता कि मैं तुम्हें प्रेममय कहूं अथवा सदा ही निर्दय रहने वाला दुःख का देवता कहूँ ?

प्रपात के प्रति

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२१ में हुई थी। सामान्यतः इसमें प्रकृति निर्झर का वर्णन है, किन्तु प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक भावनाओं की अभिव्यक्ति छायावाद की प्रमुख विशेषता है। कवि की यह प्रवृत्ति इस कविता में परिलक्षित होती है। उज्ज्वल प्रपात (हर्ष) का जन्म वन के गहन अन्धकार (विषाद) से होता है। गतिशील प्रपात (चेतन) का उद्गम जंगल पर्वत (जड़) से होता है और पिता के अवोध दूतों (पत्थरों) से उसका संघर्ष जड़ और चेतन का संघर्ष है। इस प्रकार अपने दार्शनिक अर्थ में यह कविता काफी गम्भीर है।

अचल के········अपनी तान।

शब्दार्थ—अचल = पर्वत। अविचार = मूर्खता। अबोध = भोला।

अर्थ—कवि निर्झर को सम्वोधित करते हुए कहता है कि हे पर्वत के चंचल तथा छोटे झरने ! तुम पर्वत से मचलते हुए निकल आते हो। हे उज्ज्वल वर्ण वाले निर्झर ! तुम घने वन के अन्धकार के साथ क्यों खेलते हो ? इससे तुम्हें क्या मिलता हैं ? तुम्हें अन्धकार से इतना अधिक प्यार हे, इसे देखकर समझ में नहीं आता कि इसे किसी बच्चे का भोलापन कहा जाय अथवा वृद्ध का समानता का व्यवहार कहा जाय। तुम्हारे पिता का—पर्वत का—कोई मूर्ख दूत जब तुम्हारे रास्ते को रोकता है, अर्थात् जब तुम किसी पत्थर से टकराते हो तो थोड़ी देर के लिए रुक जाते हो। और जब उसे पहचान लेते हो, उस मूर्ख का सारा अज्ञान समझ जाते हो तो तुम्हारे होठों से मृदु मुस्कान फूट पड़ती है और तब तुम अजान की ओर इशारा करके चल देते हो तथा उसके हृदय में अपना मधुर गीत भर लाते हो।

सिर्फ एक उन्माद

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२२ में हुई थी। जब इसका प्रकाशन हुआ था तो आलोचकों ने इसके विरुद्ध तीखा प्रचार किया और

इसे स्वयं निराला का ही 'अनर्गल काव्य' बताया। परन्तु कुछ दिनों पश्चात् अनेक आलोचकों ने इस कविता के काव्यतत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वास्तव में 'उन्माद' जैसे निराकार भाव को साकारता प्रदान करना महाकवि की प्रतिभा से ही संभव है!

सिर्फ एक ...... क्षण भर।

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम। अवसाद=दुख।

अर्थ—मेरे मन में सिर्फ एक पागलपन था। वह यौवन का प्रेम नहीं था किन्तु यौवन की तरह ही उच्छृंखल था। वह बचपन का दुख नहीं था, बल्कि वह शिशु की तरह ही चंचल था उसमें कोई ऐसा राग भी नहीं, जिसे जीवन भर गाते हैं। उसमें ऐसा कोई तीव्र विराग का भाव भी नहीं था, जिसे पाकर क्षण भर के लिए कहीं अपनापन भूल जाते हैं।

अपने लिए........कुसम दल।

शब्दार्थ—उत्पीड़ित=दुख। क्रीड़नक=खिलौना। निर्लंकार=अलकार-रहित। अनर्गल=अर्थहीन। कलित=सुन्दर। अविराम=निरन्तर।

अर्थ—कवि अपने जीवन के उन्माद का स्वरूप बताता हुआ कहता है कि वह उन्माद यद्यपि अपने लिए भयंकर दुःख था किन्तु दूसरे लोगों के लिए एक खिलौना था। उसका जीवन पक्षी के समान था जो हँसमुख तो होता है, किन्तु निर्दय बालकों के लिए मोह शून्य होता है। वह उस काव्य के समान था जो अलंकार-हीन, अर्थहीन होते हुए भी किसी महाकवि के सुन्दर कंठ से पुष्पदल की भाँति निरन्तर झरता है।

विशेष—इन पंक्तियों में प्रयुक्त उपमाएँ अनेक विद्वानों की दृष्टि में रुचिकर नहीं हैं, किन्तु यदि गम्भीरता से से सम्पूर्ण कविता का पर्यवेक्षण किया जाये तो ये उपमाएँ भावोत्कर्ष में सहायक बनकर कवि की कवि की कवि-प्रतिभा का परिचय देती हैं।

जन-अपमान ....एक उन्माद।

शब्दार्थ—अपवाद=बुराई। विषाद=दुख।

अर्थ—अपने उन्माद का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि यद्यपि उस उन्माद के कारण लोगों ने मुझे अनेक प्रकार की बुराइयां दीं, किन्तु मुझ पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि मुझे उन्हें सुनने की फुर्सत ही नहीं थी। वह तो सिर्फ एक उन्माद था जो अपने आप में ही चूर रहता था और

जिसने कभी दुःख का अनुभव नहीं किया था।

प्रेयसी

कविता परिचय—इह कविता की रचना सन् १९३५ ई० में हुई थी। इसमें कवि ने लौकिक शृंगार की भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रेयसी के माध्यम से की है। इन भावनाओं को परिपुष्ट करने के लिए प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है। प्रेयसी की स्मृति में उमड़ने वाली घटनाएँ अत्यन्त सजीव एवं प्रभावोत्पादक हैं।

घेर अंग-अंग······किरण सम्पात से।

शब्दार्थ—तारुण्य=सौंदर्य। प्रणय-रश्मि=प्रेम की किरण। विच्छुरित =छिड़का हुआ, बिखरा हुआ। किरण-सम्पात=किरण समूह।

अर्थ—प्रेयसी अपने रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि प्रथम सौन्दर्य की चंचल लहरों ने मेरे अंग-अंग को घेर लिया और मैं अपने तरु तन को घेर कर तत्काल सुन्दरता से भरी हुई लता के समान पल्लवित हो गई। मेरे जग में प्रथम बार सुगन्धि से भरे हुए नवीन फूल खिले और मैं उनसे उसी प्रकार लद गई जिस प्रकार वसन्त में फूलों के गुच्छे होते हैं। मेरी आँखों को प्रेम की प्रथम किरण रंग गई। मैं अपने रंग (प्रेम) के चूर्ण को बिखेरती हुई बजरंग-भाव भर कर विश्व-ऐश्वर्य को इसी प्रकार स्पन्दित करती रही जिस प्रकार शिशिर ऋतु स्वर्ण-प्रभात के पत्र पर किरण-समूह से अनेक रंग अंकित कर देती है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

विशेष—मुग्धा नायिका का अत्यन्त सजीव वर्णन है।

दर्शन समुत्सुक······अरूप में।

शब्दार्थ - दर्शन-समुत्सुक=दर्शन करने की उत्सुकता वाले। युवाकुल =आकुल युवक। पतंग=शलभ। मंजु-मुख=सुन्दर मुख। अलि-पुंज=भौंरों का समूह। प्रस्रवण=झरना। चतुर्दिक=चारों ओर। प्रतनु-भार=हल्का भार।

अर्थ—प्रेयसी अपनी यौवनावस्था में प्रथम चरण रखने पर विविध परिवर्तनों का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरे दर्शन करने की उत्सुकता वाले आकुल युवक मेरे इर्द-गर्द शलभ की तरह प्राणों की बाजी लगाने लगे और

मेरे सुन्दर मुख को देखकर भौंरों के समूह के समान मधुर गूँज करने लगे तथा अपने हृदय के भावों को व्यक्त, अव्यक्त अथवा स्तुति-गीत के रूप में प्रसन्न होकर प्रकट करने लगे। मेरे चारों ओर हृदय की पुलकराशि से स्पंदित होकर आनन्द के झरने झरने लगे। चक्राकार कल रव तरंगों के बीच में मैं उर्वशी की भाँति दिखाई देने लगी। मैं अपने हल्के भार को भी सम्भालने में असमर्थ होकर काँपने लगी और विस्तृत दिशाओं के पार प्रिय अपनी दृष्टि बाँधकर निश्चय तथा अरूप के भाव से युक्त होकर अपनी आंखें बिछाने लगी।

अलंकार—उपमा।

हुआ रूप दर्शन .... रस सृष्टि को।

शब्दार्थ—कृतविध = विद्वान्। लावण्य = सुन्दरता। शुभ्र = सफेद। हीरक-सुमन-हार = हीरे रूपी फूलों का हार। शुचि = शुद्ध।

अर्थ—हे विद्वान् जब तुम मिले तो तुम्हारे रूप का दर्शन हुआ। जिस प्रकार मूर्ति को मोहकर शेफालिका को सफेद हीरे रूपी फूलों का हार पहना कर उसका श्रृंगार करके कवि मूक रस के आनन्द को शुद्ध दृष्टि प्रदान करता है, उसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य मुझे मिला।

याद है .... मन।

शब्दार्थ—प्राची = पूर्व दिशा। फुल्ल = प्रसन्न। मंजरित = पल्लवित। विहग-बालिकाओं का = पक्षी के शिशुओं का। विकच = खिली हुई। वृन्द = शाखा। निःसंग = निष्काम। चल = चंचल। अपल = अपलक। समष्टि = संसार।

अर्थ—प्रेयसी अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि क्या आपको याद है कि एक दिन उस प्रातःकाल में जो पूर्व दिशा की आंखों में प्रथम किरण के कम्पन के समान था, जो बसन्त ऋतु की पल्लवित लता पर प्रसन्न चुम्बनों से प्रथम पुलक उत्पन्न कर रहा था, जिसमें पक्षी के शिशुओं के स्वर सुनाई दे रहे थे, प्रेम तथा मिलन के गीत गाये जा रहे थे, पहली बार खिली हुई कली पहली पवन के स्पर्श से काँपती हुई नग्न-शरीर से अपनी शाखा पर चंचल हो रही थी, मैं उपवन में विहार कर रही थी। हार टूटा हुआ था, मैं मुक्त जीवों की भाँति निष्काम होकर उपवन के विविध रूप-रंग को देख-

देखकर बहुत कुछ सोच रही थी कि तभी एकाएक तुम मुझे मिल गये। तुम्हें देखकर मैं रुक गई, मेरे चंचल पैर अचल हो गये। मेरी दृष्टि निर्निमेष होकर अपने-आप ही तुम पर टिक गई और मेरा संसार में फैला हुआ मन एकाग्र तथा स्तब्ध हो गया।

दिये नहीं······खो गयी।

शब्दार्थ—शून्य=आकाश। नीलाम्बर=नीले वस्त्र वाली। बलाहक—बादल।

अर्थ—हमने अपनी इच्छा से एक दूसरे को प्राण नहीं दिये थे, फिर भी हमारे प्राण अपनी ही इच्छा से एक दूसरे के हो गये थे। मैं तुमसे दूर थी किंतु अपनी ही दृष्टि में मैं खिचकर तुम्हारे काफी पास आ गई थी। मेरे पास जो संसार था, वह दूर से और भी अधिक दूर होता गया। तुम्हारी ज्योतिछवि से मेरी ज्योति-छवि मिल गई, और इस प्रकार एकाकार हो गई जिस प्रकार आकाश में नीलिमा मिल जाती है। मैं तुम्हारे रूप की बन्दी बनकर रह गई थी। पल्लव तथा लताओं के भार, वन, पुष्प, तरु तथा हार, मधुर कूँजन, चंचल विश्व के सारे दृश्य सुन्दर आकाश के भी सारे रूप-दर्शन, सूर्य रूपी हीरे को धारण करने वाली तथा नीले वस्त्रों वाली प्रकृति विदेश के सन्दश-वाहक बादल सब मेरे प्राणों में डूब गये और मैं अपनी सीमा त्यागकर प्रेम की प्रलय में अपना सब कुछ खो बैठी।

बँधी हुई········अपने से हुई।

शब्दार्थ—निरंजन=अंजन रहित। गेह=घर।

अर्थ—तुम से बँधी हुई न बार-बार प्रथम पृथ्वी पर आये सौन्दर्य को देखने लगी। मैंने देखा कि भाव बदला हुआ था। पहले आकाश की घटा वर्षा बनी हुई थी। मेरी अंजन रहित आँखों में एक प्रकार का अंजन-सा लग गया मैं उसे सहज रूप से देखती हुई अपना ज्ञान खोकर जड़ हो गई और मुझमें देह-ज्ञान जगा; अर्थात् मुझे अपने ही शरीर की सुधि शेष रह गई। इसके बाद मुझे अपने घर की याद आई। मैं लज्जित हो गई और मेरे चरण दूसरी ओर बढ़े तथा मैं अपने-आप से ही विमुख हो गई।

चली चुपचाप········किरण कुमारी को।

शब्दार्थ—प्रथुल=भारी। मर्त्य=मृत्युलोक, संसार। अर्थ=लिए। निरलस=चेतन।

अर्थ—मैं सपने घर के लिए चुपचाप चली, किन्तु मेसे मूक और दुख से भरे हुए हृदय में प्रेम का भारी बोझा था। तुम मुझे अपलक नेत्रों से देखते रहे, मानो तुम चिरकाल तक मुझे अपनी दृष्टि में अपना ही नारी रूप बाँधकर रखना चाहते थे, उसे अपनाना चाहते थे और इस संसार में स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करना चाहते थे। अंगों से पीने के लिए अमृत-सा झरने लगा। तुम्हारी वह दृष्टि चेतन थी। तुम मुझे इसी प्रकार एकटक देख रहे थे जिस प्रकार प्रातः काल में सजल शिशिर ऋतु में सफेद हुआ पुष्प एकटक किरण-कुमारी को नवीन किरण को देखता है।

पृथ्वी का····· मैं हुई।

शब्दार्थ—निरुपमा = अद्वितीय शोभा।

अर्थ—पृथ्वी का प्यार आकाश की अद्वितीय शोभा को अपना सर्वस्व उपहार के रूप में दे रहा था। आकाश पृथ्वी की पलकों पर अपनी आँखें रखकर प्रेम कर रहा था। उनके शब्द भावों में बंधन-हीन होकर बहते हुए भी स्थिर थे। मैंने उस गीत पर ध्यान देकर भी ध्यान नहीं दिया। मैं अपने कुल के सम्मान की ग्रंथि में बँधकर अर्थात् कुल-मर्यादा के कारण वहाँ से चली गई। वे बद्ध संसार के संस्कार जीत गये और में उनकी हो ही गई।

समझ नहीं ······· बिन्दु-दान से।

शब्दार्थ—रति = प्रेम। पंकिल = कीचड़ से युक्त। सलिल-देह = पानी की काया। अरुणार्क = लाल सूर्य।

अर्थ—मुझे दुख है कि मैं यह भी न समझ सकी कि मेरे अंचल से बँधा हुआ सत्य खुलकर कहाँ गिर गया। कुछ समय बीत गया और मेरे शरीर की आग जलने लगी, विरह-वेदना पीड़ित करने लगी। मैं इस प्रकार दुखी थी जिस प्रकार नन्दन-निकुंज के प्रेम को मरुभूमि मिल गई हो; अथवा पर्वत कोई निर्झरी भूमि पर उतर आई हो जिससे वह कीचड़ युक्त हो गई और उसकी जल रूपी काया कलुषित हो गई हो। मेरी करुणा से भरी हुई अपलक दृष्टि खुली, किन्तु प्रातःकालीन लाल सूर्य मेरी विरह-व्यथा को बढ़ाकर मुझे जलाते ही रहे और मेरे प्राण को रूप तथा बिन्दु के दान से नहीं भर सके।

तब तुम········बद्ध हो।

शब्दार्थ—अनिल = हवा। संसृति = संसार। श्लथ = शिथिल।

अर्थ—तव तुम छोटे-छोटे कदम रखते हुए साँसों से भावों से तथा चिन्ता से मेरे हृदय में प्रवेश कर मुझे इसी प्रकार झिकझोरने लगे जिस प्रकार हृदय के सजे हुए तार को हवा बार-बार झनझना देती है। अपने उस गीत पर सुखद तथा मनोहर दान के उस आकर्षण में, हृदय की लहरों से में संसार के दुःख तथा क्लेशों को भूल गई और शिथिल गात होकर मैं तुम से वँधी-सी रह गई।

किन्तु लय ·······अभिमान रे।

शब्दार्थ—रूढ़ि=परम्परा। उच्च प्राचीर=ऊँची दीवारें।

अर्थ—किन्तु दुःख है कि परम्परा, धर्म के विचार, कुल, मान, शील और ज्ञान की ऊँची-ऊँची दीवारें मानो तुझे घेरे हुए थीं और जव मैं संसार में पदमात्र रखती, तनिक सी प्रेम की ओर उन्मुख होती तो ये दीवारें मुझे बार बार घेर लेतीं और मैं निस्सीम कल्प तथा पवन का मुक्त विहार न पा सकती भाव यह है कि जव भी मैं तुम्हारी ओर वढ़ने की कोशिश करती तो मेरी स्वतन्त्रता पर अनेक सामाजिक बन्धन लग जाते और मैं छटपटा कर रह जाता हम दोनों भिन्न वर्गों के हैं, भिन्न जातियों के हैं, भिन्न रूपों के हैं, भिन्न धर्म-भाव के हैं, परन्तु केवल अपनेपन की भावना से ही हम दोनों प्राणों में एक थे, व्यर्थ अभिमान करने वाले लोग यह नहीं समझते कि दिन और रात, पृथ्वी और जल, यद्यपि वर्ण और भिन्न स्वरूप वाले हैं किन्तु जव इसका एक साथ गठबन्धन होता है तो स्वर्गिक शोभा की सृष्टि होती है।

अन्धकार था······· साथ।

शब्दार्थ—विपर्यस्त=अस्त-व्यस्त। अश्रुत=न सुना हुआ।

अर्थ—हे प्रियतम ! मेरे हृदय में निराशा तथा विषाद का अन्धकार छाया हुआ था और हृदय अपने ही इस अन्धकार से झुका हुआ तथा अस्त-व्यस्त था। परिवार के सारे लोग अपने-अपने कार्यों में लगे हुए थे। अचानक मधुर प्रभात की तरह तुम मेरे द्वार पर आये और मुझे व्यंग्य शव्द में नीड़ का सुख छोड़कर अपने साथ मुक्त गगन में उड़ने का आदेश दिया। मैं तुम्हारे प्रिय कंठ को सुनकर द्वार पर आई। मैंने यदि तुम्हारा स्वर पहली बार सुना था, परन्तु मैं उसे एकदम इसलिए पहचान गई कि वह निरन्तर मेरी जीवन-वीणा में झंकार करता हुआ अश्रुत रूप से वजा करता था। मैंने तुम्हें पहचाना और

तुमने मेरा बढ़कर हाथ पकड़ लिया। तब मैं सब बंधनों को छोड़कर तुम्हारे साथ चल दी।

एक बार की ....सम्भाल तुम्हें।

शब्दार्थ—शोध=खोज। गरीयसी=श्रेष्ठ।

अर्थ मैं एक बार की ऋणी हूं, किन्तु उद्धार के लिए सैकड़ों बार हृदय में खोज की प्रतिज्ञा की है। मैं उस प्रतिज्ञा को पूर्ण कर चुकी हूं। आज मैं अपने में गर्वित और श्रेष्ठ हूँ। रूप के द्वार पर मोह की माधुरी पीकर तुम अनेक बार मूर्च्छित हुए हो, किन्तु बार-बार मैंने तुम्हें बांह पकड़ कर सँभाला है।

दान

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३५ में हुई थी। इसमें कवि ने मानव-समाज पर बहुत ही तीक्ष्ण और मर्मान्तक व्यंग्य किया है। कवि एक दिन किसी नदी के किनारे जाता है। वहीं पुल के पास उसे एक भिखारी बैठा हुआ दिखाई देता है। वह अत्यन्त दुर्बल और हड्डियों का केवल ढांचा है। नदी से एक ब्राह्मण स्नान करके बाहर आता है। वह बन्दरों को तो पुए खिलाता है, पर उस भिखारी को कुछ न देकर केवल डांट देता है। निराला की यह कविता उस समाज के प्रति एक गम्भीर आक्रोश है, जो अपनी भक्ति की अन्धता के कारण मानव को उपेक्षित करते हैं।

वासन्ती की ....आवेश-चपल।

शब्दार्थ—वासन्ती=वसन्त ऋतु की। तरुणा=यौवन। बालारुण=प्रातःकालीन सूर्य। सस्मित=हँसती हुई। कुंचित=लज्जाशील। रक्तदान=लाल प्रभा वाले। षटपद्=भौंरे। पुंजीकृत=इकट्ठा होना। हेम=सोना। रक्ताम्बर=लाल वस्त्र वाला। स्तवक=फूलों का गुच्छा। अरविन्द=कमल।

अर्थ—वसन्त ऋतु की यौवन से भरी गोद में प्रातःकालीन सूर्य का विशाल मुख शोभायमान था। उसकी चंचल किरणें चूमी हुई, हँसती हुई, लज्जाशील तथा कोमल नवयुवतियों के समान थी। नवीन पत्तों के अधर यौवन के मद से उत्पन्न लाल प्रभा वाले थे। खिलती हुई कली से खिली हुई कली पर उड़ते हुए सुन्दर भौंरे नवीन आशा और नवीन स्पन्दन भर रहे थे। व्यक्त सुख के रूप में उनका मधुर गुंजन इकट्ठा होकर प्रत्येक वन और उपवन में

गूँज रहा था। अमलतास सोने के समान पीला हार पहने हुए था, लाल वस्त्र पहने सुन्दर पलास हँस रहा था। कुन्द का पूजा के लिए अर्घ्यदान अभी बाकी था। मल्लिका प्रथम यौवन की मस्ती में अलसाई हुई थी। फूलों के गुच्छे इस प्रकार खुल रहे थे मानो अतुल मधुमाधवी लज्जा से भर कर सिर झुकाए हुए खड़ी हो। आज पहला कमल फूला था. जो अनिन्द्य रहस्य की शोभा को देख रहा था। सौरभ को अपने शरीर से लपेटे हुए हवा चल रही थी जैसे वह कानों से चुप-चुप किसी प्रिय की कहानी कह रही हो। पतली धारा वाली गोमती नदी नयी तथा क्षीण कमर वाली नदी के समान दिखाई दे रही थी, जो अपने नृत्य के अवसर पर मधुर आवेग में चंचल हो गई हो।

मैं प्रात:·······तत्पर बानर।

शब्दार्थ—पर्यटनार्थ=घूमने के लिए। सदया=दयालु। सप्रयास=प्रयत्न सहित। अनायास=बिना किसी प्रयत्न के; अपने-आप। कृष्ण-काय=काले शरीर वाला। विप्रवर=ब्राह्मणों में श्रेष्ठ। दूर्वादल=घास के समूह। तण्डुल=चावल।

अर्थ- मैं प्रातःकाल में घूमने के लिए चला, घूमकर लौटा और पुल पर आकर तथा खड़ा होकर सोचने लगा—'संसार का यह नियम अटल है कि जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। यह फल यह दयालु प्रकृति स्वयं दे देती है और सोचने के लिए कोई नई बात नहीं है। सौंदर्य गीत, वहु वर्ण, गन्ध, भाषा, भावों के छन्दपूर्ण बन्ध, और भी विलास के ऊँचे-ऊँचे उपकरण, जो अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त हो सकते हैं, प्रकृति उन्हें अपने आप प्रदान कर देती है, ये प्राकृतिक दान हैं। प्रकृति मनुष्य को ही ये दान देती है, इसलिए मानव धन्य है, क्योंकि वह सृष्टि की सबसे श्रेष्ठ रचना है।' फिर मैंने देखा कि उस पुल के ऊपर बहुत से बन्दर बैठे हुए थे। उसी पुल के एक ओर मार्ग पर काले शरीर वाला, हड्डियों का ढाँचामात्र आदमी जो मृतप्राय था अपनी दीन और दुर्बल दृष्टि को ऊपर उठाकर भिक्षा के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। उसका कंठ बहुत ही क्षीण था, सांस तेजी से चल रहे थे। वह इस प्रकार जीवित था, जैसे जीवन से उदासीन हो गया हो। न जाने यह किस शाप के बोझ को ढो रहा था और कौन से कठिन पाप को भोग रहा था। उस पथ पर जाते ही यह प्रश्न सदा मेरे मन में आता, किन्तु इसका कोई उत्तर नहीं होता था। सबसे बड़ी दया का, जो उसके प्रति की जा सकती थी, केवल

यही उदाहरण था कि उसे एक पैसा दे दिया जाय। मैंने झुककर नीचे की ओर देखा तो एक श्रेष्ठ ब्राह्मण स्नान करके, शिव पर पानी चढ़ाकर, दूर्वादल, चावल, तिल और अपनी धोती लेकर ऊपर आये और बन्दरों को देखकर जल्दी जल्दी चले।

द्विज राम-भक्त·········श्रेष्ठ मानव।

शब्दार्थ—द्विज=ब्राह्मण। कपियों से=बन्दरों से। मज्जन=स्नान। इतर=दूसरा।

अर्थ—वे ब्राह्मण राम के भक्त थे और भक्ति की पूर्णता की आशा से शिव का बारह-महीने भजन करते थे। रामायण को पढ़कर के वे श्रीमन्नारायण जपते थे। जब कभी वे दुःख पाते अथवा असहाय अवस्था में होते तो बन्दरों से हाथ जोड़कर अपनी दुःख गाथा सुनाते। वे मेरे ही पड़ौस के रहने वाले सज्जन थे, जो प्रतिदिन नदी में स्नान करते थे। उन्होंने अपनी झोली से पुए निकाल कर और हाथ बढ़ाकर बन्दरों को दे दिए। उन्होंने उस ओर फिर कर भी नहीं देखा जिस ओर वह दूसरा भिखारी बैठा हुआ था; बल्कि उसे दानव कह कर दूर हटा दिया। इस दृश्य को देखकर मैं बोला—'इस सृष्टि की श्रेष्ठ रचना मानव है जो धन्य है।'

खंडहर के प्रति

कविता परिचय इस कविता की रचना सन् १९२३ में हुई थी। इसमें कवि ने खंडहर के माध्यम से भारत के उस अतीत की ओर संकेत किया है जो अब केवल खंडहर रह गया है।

खंडहर ·······नर-नारियों के ?

शब्दार्थ—पुरातन=अतीत। मलिन साज=ध्वंस वैभव। करुणाकर=दयानिधि। पवन-संचरण=हवा का झौंका। विभूति-रज=वैभव की धूल। पुरुष-पुरातन=आदिपुरुष। भव=संसार।

अर्थ—खंडहर के माध्यम से कवि भारत के अतीत का वर्णन करता हुआ कहता है कि हे खंडहर! क्या तुम आज भी खड़े हुए हो? अर्थात् अभी तक तुम्हारा अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ तुम हमारे उस ध्वंस-वैभव के प्रतीक हो जो अद्भुत था और अब अज्ञात बन गया है। हे करुणाकर, तुम करुणा के गीत गाते हुए हमें विस्मृति की नींद से क्यों जगाते हो? अर्थात् जिस अतीत

को हम भुल चुके हैं, उसे फिर क्यों याद दिलाते हो। जिस प्रकार हवा का झोंका परिमल पराग को चतुर्दिक फैला देता है, उसी प्रकार तुम अतीत के वैभव की धूल को, पुरातन पुरुष के आर्शीवाद को सव देशों में भेजते हो? इससे न जाने तुम्हारा क्या उद्देश्य है? तुम्हें तो बन्धनहीन होना चाहिए। क्या तुम नर-नारियों के संसार के वन्धन ढीले करते हो?

अथवा ....नरदेवों के।

शब्दार्थ—जरा-जीर्ण=बुढ़ापे की दुर्बलता। किम्बा=अथवा। आर्त=दुःखी। शैशव-विनोद=बचपन का मनोरंजन खेल।

अर्थ—अथवा तुम बुढापे की दुर्बलता से दुखी होकर अपना कलेजा मलते हो और एकटक आँखों से अपनी सन्तानों से बूँद भर पानी को तरसते हुए अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करते हो। अथवा, हे यश के भंडार! तुम आंसू बहाते हुए यह कहते हो कि हे दुखी भारत! मैं जैमिनी, पंतजलि, व्यास आदि ऋषियों का पिता हूं और राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, भीष्म आदि श्रेष्ठ मानवों ने मेरी ही गोद में बचपन के खेलों को खेला है, जिन्होंने बड़े होकर तुम्हारा सम्मान बढ़ाया है।

तुमने ....प्रणाम है।

शब्दार्थ—गरल=विष। साम-गान=सामवेद के गीत। सुधा-पान=अमृत का पान।

अर्थ—कवि खंडहर से पूछता है कि क्या तुम दुःखी भारत से आँसू बहाते हुए यह कहते हो कि हे भारत वालो! तुमने अपने अतीत के गौरव से मुँह फेर लिया है और सुख की इच्छा के लिए तुम विष का पान कर रहे हो। तुम नवीन छाया में बसे हुए हो और नव स्वप्न लेकर जाते हो। वे स्वच्छन्द प्राण सामदेव के गीत और अमृत का पान करना भूल गये हैं। हे पुरुष-पुराण! तुम अपना आशीष लेकर बरसो। तुम्हारे चरणों में प्रणाम है।

नाचे उस पर श्यामा

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९२४ ई० में हुई थी। वह कविता स्वामी विवेकानन्द की रचना 'नाचुक ताहाते श्यामा' का अनुवाद है। इसमें श्यामा से प्रार्थना की गई है कि वह अपना प्रलयंकर रूप ग्रहण करके नृत्य करे, ताकि देश के सुप्त वीरों के जीवन में पुनः जोश और उत्साह की लहर दौड़

जाये, उनमें फिर से युद्ध-धर्म और कर्त्तव्यपरायणता की भावना जगे।

फूले फूले ....भ्रमर विहार।

शब्दार्थ—सुरभि-व्याकुलता=सुगन्धि के लिए व्याकुल। अलि=भौंरे। ललित तरंग=सुन्दर लहर। सरसी=तालाब। चल-शतदल=चंचल कमल।

अर्थ—कवि प्राकृतिक सुषमा का दर्शन करता हुआ कहता है कि फूल खिल गए हैं जिनके चारों ओर सुगन्धि के लिए व्याकुल भौंरे गूंज रहे हैं। सारे देवता संसार में चन्द्रमा की सुन्दर हँसी की हिलोरें भर रहे हैं सुगन्धि से युक्त धीरे-धीरे मलय पवन चल रहा है जिससे स्मृतियों के सब द्वार खुल रहे हैं; अर्थात् अनेक प्रकार की स्मृतियाँ आ रही हैं। नदी नद और तालाब में सुन्दर लहरें लहरा रही हैं और चंचल कमलों पर भौंरे विहार रहे हैं।

दूर गुहा में ....भाव उदार।

शब्दार्थ—गुहा=गुफा। तान-तरंगों का=लय रूपी लहरों का। निलय=समूह। तरुण-चितेरा=तरुण चित्रकार। अरुण=सूर्य। धरा-अधर...पृथ्वी रूपी होंठ।

अर्थ—कवि प्रकृति की शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है कि दूर गुफा में निर्झरिणी की लय रूपी लहरों की मधुर गूंज हो रही है। स्वरपूर्ण किसलय-समूह-रूपी विहंगों के सुराग के तार बज रहे हैं। तरुण-चित्रकार सूर्य अपनी किरण-रूपी स्वर्ग तूलिका के सुकुमार हाथ बढ़ाकर पृथ्वी पर कितने ही वर्णों का आकार रखता है; अर्थात् कितने ही प्रकार के रंग-बिरंगे चित्र खींचता है। धरा रूपी होंठ कितने ही रंग-रागों के आकार धारण करते हैं। प्रकृति की इस अपार शोभा को देखकर भावुक लोगों के मन में कितने ही उदार भाव जग पड़ते हैं।

अलंकार—रूपक।

गरज रहे..........अचल शरीर।

शब्दार्थ—अशनि=बिजली। निनाद=गरज। संगर=युद्ध। कटक-उन्माद=सेना का पागलपन। उद्गीरण=फैलाना। रक्तिम=लाल। विद्युज्ज्वाला=बिजली की आग। भीम-कोष=भयंकर शब्द। अनल=पानी। अचल-शरीर=पर्वतों के शरीर।

अर्थ—कवि प्रलय का वर्णन करते हुए कहता है कि बादल गरज रहे

हैं बिजली के प्रमाद से भरी हुई घोर गरज गूंज रही है। स्वर्ग और पृथ्वी दोनों में व्याप्त युद्ध की सेना का विकट पागलपन छाया हुआ है। अन्धकार अपार घनघोर अन्धकार को फैला रहा है। यहाँ प्रलय की वायु अपने साँसों के द्वारा अगणित हुंकार सुना रही है; अर्थात् वायु प्रबलतम वेग से चल रही है। इस पर लाल विजली की आग बार-बार चमककर वातावरण को और भी अधिक भयंकर बना रही हैं। फेनों से भरी हुई लहरें गरज-गरज कर इतनी ऊँची उठती हैं, मानों वे पहाड़ों की चोटियों को पार करना चाह रही हों। अत्यन्त भयंकर और गम्भीर शब्द हो रहा है। अतल वस्तुएँ पृथ्वी में धँस करके उसे अधीर और चलायमान बना रही हैं। पानी पृथ्वी को छेदकर बाहर निकल रहा है और पर्वतों के शरीर आपस में रगड़ कर चूर-चूर हो रहे हैं।

हैं सुहावन········संसार।

शब्दार्थ—नील-सलील-सर-बीच-विलास=नीले पानी के तालाब की लहरों में आनन्द मनाने वाले। वलमित=फैले हुए। कुवलय=कमल। श्रुति पथ=कान। ललित=सुन्दर।

अर्थ—कितने ही सुहावने मन्दिर है। नीले पानी के तालाब की लहरो में आनन्द मनाने वाले फैले हुए कमल हैं जिन्हें मलय पवन वन में जन्म लेने वाले वृक्षों के यौवन में हँसी तथा आनन्द भरने वाले खेल खिलाती है। अंगूरों का हृदय-रुधिर प्याले का प्यार बढ़ा रहा है। सफेद फेनों से उठे हुए सिर वाले बुलबुले मन्द-मन्द गूँजते हुए उग और मिट रहे हैं। कानों में वीणा के कोमल तारों की झंकार बजती है। सुन्दर **वासना** का संसार ताल पर ताल देता हुआ बढ़ा चला आ रहा है।

भावों में·········उसका द्वार।

शब्दार्थ—ब्रज का=ब्रजवासियों का। तप्त=दुःखी। नीरज नील=कमल। विम्बाधर=दोनों होठ। पारावार=सागर।

अर्थ—भावो में न जाने कितना ब्रजवासियों का प्रेमपूर्ण उच्छ्वास प्रकट हो रहा है तथा विरह से दुःखी गोपियों के श्वास विरह-ताप से गर्म होकर तथा आंसू बनकर ढल रहे हैं। नीले कमल के समान नेत्रों वाली, अति सुकुमार होठों वाली युवती की आंखों से मृदु भावों का सागर उमड़ रहा है और वह दोनों हाथों को बढ़ाकर मिलने के लिए अभिसार करती हुई चल रही है।

प्राण पखेरू और प्रेम-पिंजरा इन दोनों का द्वार बन्द है।

भेरी .... जुझार।

शब्दार्थ—दमामे=नगाड़े। भीम=भयंकर। जुझार=रण में जूझ जाने वाले।

अर्थ—फररर करके भेरी वज रही है। नगाड़े अपने घोर शब्दों में बज रहे हैं। कड़-कड़ और सन-सन करके बन्दूकें तथा अररर करके तोपें चल रही हैं। रणस्थल में भयंकर धुआँ फैला हुआ है और सैकड़ों ज्वालामुखी भयानक, आग उगल रहे हैं और पृथ्वी तथा आकाश की सीमाओं को हिला रहे हैं। प्राणघाती गोले सौ-सौ बार फटते हैं और छाती पर लगते है जिनसे कितने ही हाथी घोड़े और सवार उड़ जाते हैं। थर-थर करके पृथ्वी काँपती है। लाखों घोड़े कसे हुए तैयार खड़े हैं, जिन पर रण में जूझ जाने वाले वीर चढ़कर अड़ते हुए बढ़ते हैं।

भेद धूमतल.........छोड़ मैदान।

शब्दार्थ—धूमतल=धुँए की सतह। अनल=आग। ध्वजा=पताका। अपर=दूसरा।

अर्थ=धुँए की सतह को भेदकर, आग को पार करके वीरों के समूह गोलियों की बौछारों को चीर कर और उसमें घुस कर गोली को ले जाते और शत्रु की बेड़ी पार तोपों को छीन लेते। वीरता की पहचान पताका आगे-आगे फहराती है। उनकी घायल बाहुओं से खून की धारा बहती है, इस प्रकार भी वीर जवान आगे ही अड़कर बढ़ते जाते हैं। उनके साथ-साथ पैदल सेना चलती है, सब वीर रण के मद से मतवाले हैं। जब कोई वीर गिर जाता है, उसके हाथ से पताका गिर जाती है तो दूसरा रणधीर उसे पकड़ लेता है। अगणित लाशों से खेत पट गये हैं, हजारों वीर जवान कट गये हैं, फिर भी वीर मैदान नहीं छोड़ते, बल्कि लाशों पर पैर जमाकर डटे रहते हैं।

देह चाहता ....रह संसार।

शब्दार्थ—सुख-संगम=सुख का साथ। चित्त-विहंगम=मन रूपी पक्षी। हिम-शशांक=शीतल चन्द्रमा। दिवाकर=सूर्य। शशधर =चन्द्रमा। कलाधर =चन्द्रमा। पामर=पापी।

अर्थ—सब लोगों का शरीर सुख का साथ चाहता है; मन रूपी पक्षी स्वर

की मधुर धारा चाहता है; हँसी रूपीहिंडोला झूलना चाहता है और मन दुःख सागर के पार जाना चाहता है। शीतल चन्द्रमा की किरणों से प्राप्त अंग-सुख छोड़कर कोई नहीं चाहता और न कोई गर्मी से तपते हुए,मध्यान्ह की प्रखरता से नाता जोड़ना चाहता है; अर्थात संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो सुख छोड़कर दुख की इच्छा करे। प्रचंड सूर्य ही चन्द्रमा को प्रकाश देता है, लेकिन सारा संसार चन्द्रमा का ही सम्मान करता है; अर्थात् दुख ही सुख का जनक है, तथापि लोग सुख को तो चाहते हैं; पर दुख को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। इस संसार में सभी लोग सुख के लिए पागल हैं और यहाँ कोई भी ऐसा पापी व्यक्ति नहीं है, जो दुख को प्यार करे। सुख दुख का कारण है अमृत में विष है, यही बात सारा संसार बता रहा है।

सुख दुःख ········नंगी तलवार।

शब्दार्थ हलाहल = विष । रुद्र = भयानक । मुक्त-कुन्तला = खुले हुए केशों वाली।

अर्थ—सुख-दुख का यह निरा विष अधीर मानव के कंठ तक भरा रहता है। इसी के कारण मनुष्य रोते हैं, किन्तु अपनी आशा का चंचल चीर नहीं छोड़ते। भयानक रूप से सब डरते हैं और उसे देख-देख कर आहें भरते हैं। मृत्यु रूप वाली तथा खुले हुए केशों वाली माँ की किसी को भी चाह नहीं होती। यही माँ बार-बार भयंकर भुजाओं में गर्म खून का संचार करती है, उसके हाथों से वीणा छीन लेती है। वह युद्ध की नंगी तलवार के समान भयानक होती है।

मृत्यु स्वरूप······· बिकराल।

शब्दार्थ—उच्छेद = छेदन । त्रास = भय । वदन = मुख ।

अर्थ—हे मृत्यु-स्वरूपे माँ। तू ही सत्य-स्वरूपा और सत्य का आधार है। हे कालिका ! सुख-वनमाली तेरी माया की छाया से ही इस संसार की रचना की हुई है। हे कालिका ! हे करालिक माँ ! शीघ्र मर्म का छेदन करके इस शरीर का यह प्रेम-भाव सुख सपना देखे और माया का नाश कर दे। लोग तुझे मुंडों की माला पहनाते हैं और फिर तुम्हारी ओर देखकर तथा भय खाकर तुमको 'दयामयी' कह-कहकर चिल्लाते हैं। मां ! दुनिया का यह ढोंग तो देखो कि तुम्हें दयामयी कहता है। वास्तव में तो तुम शत्रु-संहारिणी हो। मां ! तुम दिगम्बरा का हर्ष देखकर तथा तुम्हारा अट्टहास सुनकर लोगों के

प्राण काँप जाते हैं। लोग भयातुर होकर तुम्हें असुर विजयिनी कह कर रह जाते हैं और मुँह से कहते हैं कि वह देखेगा, किन्तु माँ ! जब काल आता हैं तो तुम्हारा भयानक मुख देखकर और भय खाकर न जाने वह कहाँ भाग जाता है।

माँ तू मृत्यु·······धन्य व्यवहार।

शब्दार्थ—उत्कट=प्रबल। व्याधि=आपत्ति। छाग-कण्ठ=बकरे का गला। कापुरुष=कायर आदमी।

अर्थ- हे माँ ! तू मृत्यु बनकर घूमती रहती है। तू प्रबल आपत्ति, बलवान रोग की सृष्टि करती है, तू विष के घड़े भर कर पिलाती है और जहर के घूँट देकर लोगों के प्राणों को हर लेती है। हे उन्माद ! तू अपने को भुलावा देता है, भय के करण पीछे की ओर नहीं देखता। यदि तू पीछे की ओर देखेगा तो तुझे विशाल महाप्रलय की सृष्टि दिखाई देगी। तू दुख चाहता है, लेकिन सच बताना कि इस इच्छा के पीछे सुख पाने की चाह नहीं है। तेरी पूजा और भक्ति में सदा स्वार्थ की भावना छिपी रहती है। तू बकरे के गले की खून की धार को देखकर सहम रहा है और तुझ में भय समा गया है। अरे कायर मनुष्य ! तू माँ की दया को अपना आधार वना; अर्थात् कालिका माँ का आश्रय ले। इस प्रकार तेरा व्यवहार धन्य होगा।

फोड़ो वीणा·········भ्रमजाल।

शब्दार्थ—जलधि-ऊर्मि-से=सागर की लहरों के समान।

अर्थ—हे वीरो ! वीणा को फोड़ दो; अर्थात् राग रंग समाप्त करो, प्रेम-सुधा का पीना छोड़ दो, नारी रूपी माया की उस जंजीर को तोड़ दो, जिसमें दृढ़ आकर्षण है। तुम सागर की लहरों के समान आगे बढ़ जाओ और अपने गीतों को गरज-गरज कर गाओ। तुम्हें आँसू पीकर जीना है, तुम्हे अपने शरीर की बलि देनी है, अतः हथेली पर अपनी जान ले लो। हे वीर ! जागो मृत्यु सदैव सर पर चक्कर काटती है। अपने स्वर्गीय स्वप्नों को छोड़ दो, भय करने का कोई कारण नहीं है। अपने जीवन के इस भ्रम-जाल का जो सांसारिक पदार्थों के आकर्षण का कारण है, काट दो।

दुखभार·······भीम कृपाण।

शब्दार्थ—भव=संसार। आगार=भण्डार, समूह।

भीमकृपाण=भयंकर तलवार।

अर्थ—इस संसार में दुखों का भार उन लोगों के लिए कल्याणकारी (ईश्वर) होता है, जिनके मन्दिर का द्वार इतना दृढ़ है कि उसमें सांसारिक विषय प्रवेश नहीं कर पाते, और जिसके लिए जलती हुई चिताओं में प्रेत और भूतों का समूह होता है। वीरों की ईश्वर-भक्ति यही है कि वे निरन्तर युद्ध में लगे रहें। वीर अपनी पराजय से कभी भी नहीं डरते, चाहे उन्हें सौ-सौ बार पराजय का मुख देखना पड़े। अतः सब वीरों के हृदय में स्थित स्वार्थ, इच्छाएँ. सारी मान की भावनाएँ चूर-चूर हो जायें और हृदय महाश्मशान के रण में नाचे; अर्थात् अपना ताण्डव नृत्य प्रारम्भ कर दे।

उक्ति

कविता परिचय – इस कविता की रचना सन् १९३७ ई० में हुई थी। इसमें कवि ने सांसारिक विषयों के प्रति उदासीनता एवं रहस्यात्मक शक्ति के प्रति आसक्ति दिखाई है। यह कविता कवि के दर्शन-मत को व्यक्त करती है।

कुछ न हुआ ……गहो।

शब्दार्थ—श्री=वैभव। तिमिर=अन्धकार।

अर्थ—कवि रहस्य-सत्ता के प्रति अपनी अपार प्रीति का संकेत देता हुआ कहता है कि यदि तुम केवल मेरे पास रहो तो मुझे विश्व के सुख का, उसके वैभव का, न कभी आकर्षण हुआ है और न होगा, यदि तुम मेरा हाथ पकड़ो, मुझे सहारा दो तो मेरे जीवन-नभ के बादल कहूँ या न कहूँ, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मेरे अन्धकार रूपी दुःख की रात में यदि तनिक भी गगन का प्रकाश न फैले तो भी मुझे कोई चिन्ता न होगी। इन दुखों में भी तुम्हारा सहारा पाकर मेरे अधर सदैव हँसते रहेंगे।

अलंकार—रूपक।

बहु रस…… यदि कहो।

शब्दार्थ—विपुल=काफी। मन्द=मूर्ख। काव्यानुमान=काव्य-प्रतिभा।

अर्थ—कवि रहस्यात्मक सत्ता के प्रति अपनी अपार प्रीति का संकेत देता हुआ कहता है कि यदि मैंने अनेक रसों से पूर्ण काफी साहित्य का अध्ययन नहीं किया और लोगों ने मुझे मूर्ख बताया तो मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। यदि मेरी काव्य-प्रतिभा में वृद्धि नहीं हुई, मेरा ज्ञान जहाँ का तहाँ रह गया तो भी मुझे कोई दुख नहीं है। यदि तुम अपनी कथा कहो तो मैं उसे

अच्छी तरह समझ लूँगा, क्योंकि उसे समझने की मुझमें पूरी शक्ति है।

मरण-दृश्य

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३० में हुई थी। इस कविता में किसी अलौकिक प्रिया को संकेत करके कवि ने अपनी रहस्यमयी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है।

कश जो ....जीवन को।

शब्दार्थ—निधि=खजाना। विहग=पक्षी। अम्बर=आकाश।

अर्थ—रहस्यमयी सत्ता को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि हमने जो कुछ भी कहा है, उसे मत कहो। हे प्राण ! नित्य अपने नये-नये दीप रचकर दो। यह संसार सीमाहीन है। तुम इसमें मुझे व्यथा से दुखी बना-बना कर बाँधती जा रही हो और कह रही हो—दुख के रूप में मैंने तुम्हें यह रुपया खजाना ला दिया है। पक्षी के वे पंख बदल गये हैं और मुझे जल की मीन बना दिया है। मुक्त आकाश समाप्त हो गया है और आकाश की मुक्तता जीवन रूपी सागर में आ जाये।

सकल साभिप्राय ....न डरो।

शब्दार्थ—गरल=विष। निरुपाय=असहाय।

अर्थ—कवि रहस्यमयी सत्ता को सम्बोधित करते हुए कहता है कि तुम्हारी सारी बातें अभिप्रायों से भरी हुई थीं, किन्तु मैं उन्हें नहीं समझ पाया था, इसलिए मुझे दुख उठाना पड़ा। तुमने स्नेह से जो चुम्बन किये थे, उन्हीं के कारण आज विष के प्याले दे रही हो और कह रही हो कि हे प्रिय ! इसको पियो। मैं तुम्हारे आग्रह के समक्ष असहाय हूं। मैं मुक्ति हूँ और मृत्यु में भी समाई हुई हूँ इसलिए मृत्यु से भी डरने की आवश्यकता नहीं है।

मरण को जिसने बरा है

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४२ ई० में हुई थी। यह कविता उन आलोचकों को एक प्रबल चुनौती है, जो निराला को अन्य छायावादी कवियों की भाँति, पलायनवादी कहते हैं। मृत्यु में भी मुक्ति निहित है, यह भावना उस व्यक्ति की हो सकती है, जिसने जीवन के भीषणतम संघर्षों को हँस-हँस कर गले लगाया है, अथवा उन्हें लगाने की क्षमता रखता है।

मरण को······हरा है।

शब्दार्थ—मरण=मृत्यु। बरा है=अपनाया है। परा=लौकिक उपलब्धि। अंक=गोद। यशोधरा=यश को धारण करने वाली पृथ्वी। सुकृत=पुण्य। कल्प=कल्प वृक्ष। निस्तन्द्र || चेतन।

अर्थ—कवि कहता है कि जिसने मृत्यु को अपनाया है; अर्थात् जिसे मृत्यु का कभी भी भय नहीं हुआ उसी का जीवन सार्थक है और उसी का लौकिक उपलब्धियों पर अधिकार है तथा सत्य एवं यश को धारण करने वाली पृथ्वी भी उसी की गोद में रहती है। उसी की चेतन चितवन का चयन करने के लिए विश्व के उपवन से पुण्य के जल से सींचा हुआ कल्प वृक्ष थोड़ा-बहुत हरा-भरा रहता है।

गिरि पताक·······कोमल करा है।

शब्दार्थ—उपत्यका=उपवन। तन्वी=कोमलांगी। अमर्ष=ईर्ष्या।

अर्थ—पहाड़ों पर तथा उपवन में हरी घासों से घिरी हुई जो कोमलांगी दिखाई देती है, वह उसी को पुष्पों का भरण करने वाली अप्सरा है। जब मैं संसार में प्रेम से वंचित हुआ, मेरे जीवन में ईर्ष्या के क्षण आये तो उस समय मुझे अपने स्पर्श से जो सान्त्वना देती है, वह किरण उसी सत्ता का एक कोमल हाथ है।

गहन है यह अन्धकार

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४२ ई० में हुई थी। इस कविता में कवि ने बताया है कि समस्त संसार स्वार्थमय है। पूरी कविता में व्यक्तिगत निराशा के स्थान पर निवृत्ति मार्गी दार्शनिक चिन्तन की प्रमुखता है।

गहन है·······लुण्ठन हमारा।

शब्दार्थ—कारा=जेल। अवगुण्ठन=परदा। लुण्ठना=नाश।

अर्थ—संसार की यह भयंकर जेल अन्धकार से भरी हुई है और स्वार्थ के परदों के कारण ही हमारा नाश हुआ है।

खड़ी है······ नहीं तारा।

शब्दार्थ—जड़=अज्ञान। दिनकर=सूर्य। शशिधर=चन्द्रमा।

अर्थ—मेरे जीवन को अज्ञान की दीवार घेर कर खड़ी है। लोग

मुझसे सीधे मुंह बात भी नहीं करते। इस जीवन रूपी आकाश में न तो सूर्य है, न चन्द्रमा और न कोई तारा, अर्थात् यह तो पूर्णतः अन्धकारों से भरा हुआ है।

कल्पना का········श्यामल किनारा।

शब्दार्थ—रुद्र=भयानक।

अर्थ—मेरी कल्पना का ही अपार सागर मेरे शरीर को घेर कर गरजता है, जो बहुत भयानक प्रतीत होता है। इस विषम स्थिति में मेरी समझ में कुछ नहीं आता है और न मुझको श्याम वर्ण का (दूर-स्थित) किनारा ही दिखाई देता है।

प्रिय मुझे········हृदय हारा।

शब्दार्थ—गेह=घर।

अर्थ—हे प्रिय! मुझे वह शारीरिक चेतना दो जिससे मुझे अपने वंचित घर की याद बनी रहे, अर्थात् पूर्व बातों का स्मरण होता रहे। मेरा हृदय उस घर को खोज-खोजकर हार गया है, किन्तु उसका कोई पता नहीं चला।

स्नेह निर्झर बह गया है

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४२ ई० में हुई थी। इस कविता में कवि ने नश्वरता की अभिव्यक्ति करके अपने जीवन की निराशा एवं उदासीनता की ओर संकेत किया है।

स्नेह निर्झर········दह गया है।

शब्दार्थ—स्नेह-निर्झर=प्यार का झरना। पिक=कोयल। शिखी=मोर। दह गया है=जल गया है।

अर्थ—जीवन की नश्वरता की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है कि मेरे जीवन में प्रेम का जो झरना बहा करता था, वह अब बन्द हो गया है और मेरा शरीर रेत के ढेर के समान रह गया है। आम की यह डाल जो सूखी हुई दिखाई दे रही है, कह रही है कि अब मेरे पास न तो कोयल आती है और न मोर। मैं तो उस लिखी हुई पंक्ति के समान हूँ, जिसका कोई अर्थ नहीं होता। मेरा जीवन जल गया है।

अलंकार—उपमा।

दिये हैं········ढह गया है।

शब्दार्थ—प्रभा=ज्योति, प्रकाश। चल=संसार।

अर्थ—आम की सूखी हुई डाली कहती है कि मैंने जगत् को फूल और फल दिये हैं मैंने ही संसार को अपनी ज्योति से चकित किया है और सोचा था कि मेरे फलने-फूलने का समय अवश्य है, अर्थात् मैं सदा ही इसी प्रकार पल्लवित रहूंगी, किन्तु मेरे जीवत का सारा वैभव एक दिन नष्ट हो गया।

अब नहीं आती..............कहा गया है।

शब्दार्थ—पुलिन=किनारा। निरुपमा=अत्यन्त सुन्दरी। अमा=अंधेरी रात। अलकित=उपेक्षित।

अर्थ—आम की सूखी हुई डाली कहती है कि अब मेरे पास किनारे पर बिछे हुए काले पत्तों में बैठने के लिए वह अत्यन्त सुन्दरी प्रियतमा भी नहीं आती। अब तो मेरे जीवन में केवल अंधेरी रात का गहरा अंधेरा ही रह गया है और कवि भी इस बात को कह गया है कि मैं उपेक्षित हूँ।

सरोज-स्मृति

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १६३५ ई० में हुई थी। विद्रोही कवि निराला की सबसे मार्मिक रचना है। इसमें उन्होंने अपने करुण दीन जीवन का हृदय-विदारक चित्रण किया है तथा समाज की अंधी रक्त-पिपासु परम्पराओं के प्रति प्रचंड आक्रोश प्रकट किया है। उनकी सम्पूर्ण करुणा और उद्विग्नता इस एक कविता में सिमिट कर साकार हो उठी हैं।

अपनी पत्नी की मृत्य के पश्चात् कवि का सम्पूर्ण स्नेह और वात्सल्य अपनी फूल से भी कोमल पुत्री सरोज में आ टिका था। सरोज के जीवन को विमाता की छाया से हटाने के लिए उन्होंने जीवन भर दूसरा विवाह न करने का प्रण किया, लेकिन काल के विकराल आघात ने कवि के स्नेह की उस कोमल कली को विवाह के पश्चात् भरी तरुणावस्था में तोड़ कर कुचल दिया। और इस महावज्रपात की चोट खाकर जीवन के आर्थिक क्षेत्र में असफलताओं की गलती उठाने वाला कवि दुख और द्रोह से पागल हो गया और समाज की निर्मम छाती को विदीर्ण करने के लिए काव्य के स्वच्छन्द निर्झर प्रवाहित करने लगा। सरोज-स्मृति कवि के करुण हृदय की अपनी बेटी के निधन पर पढ़ी गई पवित्र ऋचा है। जिसका स्पर्श कर मन मौत से संघर्ष करने के लिए उद्यत हो उठता है।

उनविंश .... तरण ।

शब्दार्थ—उनविंश=उन्नीस । दृक्पात=आँखें बन्द करना, भरना । विराम=समाप्ति । शुचितर=परम पवित्र । सपर्याय=सफलतापूर्वक । अष्टादशाध्याय=अठारह वर्ष । मृत्यु-तरणि=मृत्यु रूपी नौका । तूर्ण-चरण=शीघ्र गति से ।

अर्थ—हे पुत्री ! उन्नीसवें वर्ष पर अपने जीवन का प्रथम चरण रखते ही तू संसार-सिंधु को पार कर गई । अपने यौवन में ही पिता से दुःखद विदा लेकर सदा के लिए नयन मूँद कर चली गई । हे मेरे गीते ! भौतिक नाम रूप के बन्धनों को तोड़ तूने उस अमर, शाश्वत, मृत्यु का वरण किया और अपने चंचल चरणों से जीवन के अठारह वर्ष सफलतापूर्वक मानवता से व्यतीत कर तू ये कह कर मृत्यु की नौका पर सवार हो गई—"पिताजी, मैं आज पूर्ण आलोक को प्राप्त कर रही हूँ । यह मेरा मरण नहीं, अपितु आपकी सरोज का मुक्ति के हेतु ज्योति की शरण में अमर प्रयाण है ।"

अशब्द .... गई पार ।

शब्दार्थ—अशब्द=मूक । अधर=ओष्ठ । भाष=वाणी । अठारह=दिन-रात । ज्योतिस्तरणा=सरस्वती । शत-शर-जर-जर=सैकड़ों तीरों से बिंध हुआ । अक्षम=असमर्थ । सक्षम=समर्थ । स्तब्धान्धकार=गहन अन्धकार ।

अर्थ—मैं मौन अधरों की वाणी का स्रष्टा कवि हूँ । मैंने दिन-रात सरस्वती के चरणों पर रहकर कुछ अन्तर का प्रकाश पाया है । हे मेरी जीवित कविते ! अभावों के सैकड़ों तीरों से जर्जरित हुए अपने पिता को पृथ्वी पर छोड़कर क्या तुम इस विचार से स्वर्ग में चली गई कि जब मेरे पिता स्वर्ग का रास्ता पार करने में असमर्थ होंगे तो मैं उन्हे समर्थ होकर उनका हाथ पकड़ संसार के दुर्गम अन्धकार से पार उतार दूँगी । तेरा विनम्र अभियान इसी बात को प्रकट करता है । कोई अन्य भाव इसके अतिरिक्त इसका नहीं है । अतः यही सोचकर तू श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को आकाश के गहन अन्धकार को चीरती हुई स्वर्ग की ओर चली गई ।

विशेष—कवि ने अपनी पुत्री को 'जीवित करते' कहकर उसके जीवन की सम्पूर्ण शुचिता तथा सौन्दर्य को सूत्रबद्ध कर दिया है । कवि को अपनी पुत्री की मृत्यु पर ऐसा लगा जैसे किसी ने उसके हृदय में स्थिति सरस्वती को छीन

लिया हो और उसके बिना कवि असमर्थ, असहाय, दीन-हीन होकर चीत्कार कर उठा हो।

धन्ये..........मुखचित।

शब्दार्थ—निरर्थक=धनहीन। अर्थागयोपाय=धन अर्जित करने के उपाय। चीनांकुश=रेशमी वस्त्र। विपन्न=दुःखी।

अर्थ—बेटी! मैं तेरा निर्धन पिता तेरे लिए कुछ भी यहीं कर सका। धन कमाने के उपायों को जानता हुआ भी उन्हें कार्यान्वित करने से सदा संकोच करता रहा। धनोपार्जन के मार्ग पर अनर्थों को देखकर अपने स्वार्थ के युद्ध में सदा पराजित होता रहा, अर्थात् अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सका, इसीलिए मैं तुझे रेशमी वस्त्र पहनाकर दही-मक्खन से तेरे मुख को प्रसन्न नहीं कर सका। मैंने कभी गरीबी के हाथ से उसका टुकड़ा नहीं छीना। किसी भी आँखों से टपकते हुए आँसुओं को मैं देख नहीं सका। अपने आंसुओं के दर्पण में सदा अपने मुख और हृदय का प्रतिबिम्ब देखता रहा।

सोचा..............समाभ्यस्त।

शब्दार्थ—स्नेहोपहार=स्नेहमयी भेंट। भास्वर=उज्ज्वल। लोकोत्तर=अलौकिक। समाधान=उपाय। पार्श्व=निकट। समाभ्यस्त=अभ्यस्त।

अर्थ—मैंने अनेक बार विनम्रतापूर्वक यह विचार किया है कि यह हिन्दी की स्नेह सिक्त भेंट मेरी पराजय नहीं है, अपितु अलौकिक उज्ज्वल रत्नों का हार है जो इस अवस्था में भी मुझे प्रफुल्लित कर रहा है। नहीं तो, जहां साहित्य और कला के शुद्ध एवं जागृत भाव संगृहीत हैं वहाँ मैंने भी कुछ योगदान दिया है। और गद्य-पद्य में अभ्यस्त अपनी कुशल कला द्वारा मैं इस जीवन के दैन्य का समाधान भी कर सकता हूं। किन्तु काव्य को मैं अपनी उदरपूर्ति का साधन नहीं बनाना चाहता और न ही अन्य निर्धनों को देखते हुए मैं ऐसा संकल्प कर सकता हूं।

देवे.........कूँची भर।

शब्दार्थ—प्रवर=वीर। घात=आघात। घूर्ण=टूट पड़ना, वात्याचक्र। तूर्ण=शीघ्रता से। शर-क्षेप=तीरों का लगना। चीत्कारोत्काल=कलामय, चीत्कार, हृदय की आह। वांछित=इच्छित।

अर्थ—मेरे इस जीवन समर को वे हँसते हुए निहारते रहे जिन्हें सदा

संघर्षों से टक्कर लेनी पड़ती है। मेरे ऊपर जब सौ-सौ अभावों के तीर आकर प्रहार करते थे। शीघ्रता से दुःख एक के बाद एक मेरे ऊपर टूटते तो मैं चुपचाप उन्हें खड़ा देखता रहता। जीवन के रण का कौशल मुसीबतों के तीर मेरे लिए परिचित हो गये। मैंने अपनी वेदनामयी सुन्दर वाणी में उनकी अभिव्यक्ति कर दी और क्रोधित संघर्ष मेरा कुछ न बिगाड़ सका। उसका कंठ स्वयं रुक गया। मैंने सदा यही सोचा कि इन दुखों से तो जीवन का सौंदर्य और भी अधिक निखरेगा। जीवन में प्राणदायक स्फूर्ति के सूर्य का उदय होगा; सरस्वती इन दुःखों के क्षणों में देखे हाथ में तूलिका उठाकर कौन-सा रंग भरती है, और दूषित आर्थिक जीवन से मेरे इच्छित मानसिक विकास पर अपने स्नेह की तूलिका फेरकर मुझे सफल करती है अथवा नहीं।

अस्तु ···· टेक।

शब्दार्थ—उपार्जन = धनसंचय। अजिर = आँगन। कलक = उमंग इच्छा।

अर्थ—अतः न धन कमाने में असमर्थ होने के कारण तेरा ठीक प्रकार से पालन-पोषण नहीं कर सका। कुछ दिन जब तक तू मेरे साथ रही तो मेरा मस्तक अपने ही गौरव के भार से झुक गया, जब तू मेरे घर में जीर्ण आँगन में भी घर छोड़ने से पूर्व अर्थात् अपनी बचपन में यथोचित सुख नहीं पा सकी। तेरे मन की बाल अभिलाषाएं कभी पूर्ण नहीं हुईं और तेरी दृष्टि सदा आँसुओं से छलछलाती रही। तू अपने प्राणों की उमंग को प्राणों में ही दबाकर छोटी-छोटी आहें भरकर व्यक्त कर दी थी। मैं सब समझता हुआ भी देखता रहा। धन के पथ पर बार-बार अपनी दृष्टि टिकाकर उसे पुनः वहाँ से हटाता रहा।

तू ·········धवल।

शब्दार्थ—उत्पल-तल-दृग = कमल के पत्तों जैसी आँखें। हासोच्चल = हँसी से पूर्ण उज्ज्वल। ऊर्मि-धवल = श्वेत लहर।

अर्थ—जव तू सवा साल की कोमल अबोध बालिका थी, तभी से यह लक्षण प्रकट होने लगे थे कि तू ज्ञान में बड़ी, चपल (प्रवीण) सिद्ध होगी। अपनी माँ के द्वारा प्रतिक्षण चुम्बनों के लाड़ में पलती हुई तू उसके (माँ के) जीवन में नवीन जीवन का संचार करती थी। जब तेरी माँ इस पृथ्वी से अपनी जीवन-लीला पूर्ण कर सदा के लिये विदा हो गई, तब तू अपनी नानी की गोद में जाकर पलने लगी।

वहीं अपनी नानी के पास तू नाना प्रकार के खेल रंग करती रही, उस घर

को दिन रात अपनी चुहुलों से क्रीड़ाओं से सुखमय करती रही। अपने भाई की मार खाकर तू दुःखी हो अपने कमल पत्र जैसे नेत्रों से आँसू छलकाकर जब रोती तो तेरा भाई तुझे देखकर फिर पुचकारता और गंगा के तट पर रेत पर भ्रमण करने तुझे साथ लेकर चल पड़ता तब तू चपलता से उसका हाथ पकड़ कर उसके साथ चल पड़ती। तेरे आंसुओं से धुले तथा मुस्कराहट से समुज्ज्वल मुख को देखकर उस समय गंगा की धवल तरंगे तुझ में ही अपना प्रसार देखती थीं।

तब भी······· उन पर।

शब्दार्थ—समस्त=पूर्णरूपेण। निरानन्द=उदासीन, अप्रसन्न। प्रान्तर=आंगन।

अर्थ- उस समय तक भी मैं इस प्रकार सदैव कवि जीवन में व्यर्थ ही व्यस्त रहकर निरन्तर स्वच्छन्द गति से नये छन्दों में अपनी काव्य रचना करता था। किन्तु सम्पादक मेरी उन रचनाओं के प्रति उदासीनता का भाव दिखा, उन्हें पढ़कर एक दो पंक्ति में छापने की असमर्थता प्रकट कर मुझे वापिस भेज देते थे। मैं अपनी वापिस आई हुई रचनाओं को लेकर उदास मन आकाश की ओर देखता हुआ लम्बे समय तक आँगन में बैठा सम्पादक के गुणों को गुनगुनाता रहता था और जैसा कि मुझे अभ्यास पड़ गया था, पास उगी हुई घास को नोच नोचकर अज्ञात दिशा में इधर फेंकता रहता था। अपने भावों का आरोप उस घास के तिनकों पर ही करता था।

याद है······ अशंक।

शब्दार्थ—सुरूप=सुन्दर। दूरस्थित=दूर के। प्रवाह=देश। दीर्घ गाथ=लम्बी कहानी। अशंक=सन्देहरहित।

अर्थ—मुझे याद आ रहा है—दिवस की पहली धूप तुझ पर पड़ रही थी। तू क्रीड़ा करती हुई चंचल परी की तरह अपने सौंदर्य को प्राप्त कर रही थी। मैं तब दो वर्ष बाद दूर देश से चलकर अपनी आँखों से तुझे देखने को उत्सुक (तेरी नानी के यहाँ) गया हुआ था और आँगन में फाटक के बाहर मोढ़े पर अपने जीवन की कुण्डली की लम्बी कहानी को हाथ में लिये बैठा था उस कुण्डली में लिखे हुए अपने दो विवाहों को पढ़कर मैं हँसने लगा और मेरे मन में भाग्य के अंकों को खंडित कर देने की इच्छा जागृत हुई। मैंने विश्वास की शंकाहीन दृष्टि से अपने भविष्य की ओर देखा।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में निराला के जीवन का महान् आदर्श प्रतिबिम्बित होता है। जो अपने भाग्य के अंकों को खंडित करने का साहस रखते हैं, देवता भी उनसे स्पर्धा करते हैं।

इससे........सुनकर।

शब्दार्थ—परिणय=विवाह। मंगली=एक ऐसे समय में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति जिसे ज्योतिष की दृष्टि से अशुभ समझा जाता है।

अर्थ—इस घटना से पूर्व मेरे आत्मीय सगे सम्बन्धी स्नेहपूर्वक कई बार मुझ से कह चुके थे कि मुझे किसी ऐसी लड़की से विवाह कर लेना चाहिए। जो सुन्दर एवं सुशिक्षित हो। इससे मेरा जीवन अधिक सुखकर हो सकेगा। ऐसे अनेक विवाह आये, किन्तु मैंने विनयपूर्वक सबको लौटा दिया। जो अपने नयनों में प्रार्थना का विनम्र मुनहार भर कर हठ करने लगी कि मैं उत्तर स्वीकृति में दूँ, तो मैं उन्हें निडर होकर यह कह देता कि मैं मँगली हूं, और वे इसे सुनकर स्वयं लौट गये।

एक बार........ बन्धन।

शब्दार्थ—हतोत्साह=निराश, उत्साहीन। एन्ट्रेन्स=एक परीक्षा विशेष।

अर्थ—एक बार विवाह लेकर ऐसे लोग आये जो किसी प्रकार भी निराश होकर नहीं जाने वाले थे। बड़ा संकट आ पड़ा। मन मैं वधू के नयनों का आकर्षण भर आने लगा ; अर्थात् विवाह की ओर में भी आकर्षित होने लगा। मेरी सास जी ने कहा कि भैया वे लोग बड़े भले हैं। वह लड़की एन्ट्रेंस पास है कम पढ़ी लिखी नहीं, मुझ से (सास से) वे कह रहे थे कि वर की उमर छब्बीस वर्ष की तो है, सो ठीक है। लड़की भी अट्ठारह वर्ष की है। फिर हाथ जोड़कर उन्होंने सास जी से मेरे सम्बन्ध में कहा कि मैं उनकी लड़की से विवाह करने को मना कर रहा हूँ। सास ने मुझ से कहा कि वे बड़े सुधरे हुए सज्जन हैं, अच्छे कवि हैं, वड़े नाम वाले धनी-मानी व्यक्ति हैं। लड़की भी शिक्षित और सुन्दर है। आपको यही उचित है कि आप विवाह स्वीकार कर उन्हें सुख पहुंचायें। वे कल रिश्ता लेकर आयेंगे। सास की यह बात सुनकर मेरी दृष्टि कुछ शिथिल सी पड़ गई। तू उसी समय खेलती हुई मेरी आँखों की पुतली की तरह मुस्काती हुई मुझे दिखाई दी और मैं विवाह के बन्धन का विचार कर फिर से चेतन हो गया।

कुण्डली........टुकड़ों पर।

शब्दार्थ—उन्मुक्त केश=खुले बाल। रहस्यस्मित=गम्भीर हँसी। सुवेश =सुन्दर वेश। अजीत=अटल। अखिन्न=हर्ष से।

अर्थ—मैंने तुझे कुण्डली दिखाकर खेलने के लिए उसे तेरे हाथों में दे दिया। तभी स्नान करके बालों को खोले हुए सासुजी गम्भीर हँसी हँसती हुई

अपने सौम्य वेश में कल होने वाले सम्बन्ध से सम्बन्धित बातचीत करने के लिए वहाँ आईं। मैंने प्रसन्न मन से उस ओर संकेत किया और वह कुण्डली टूक-टूक हुई पड़ी थी। वे आश्चर्य से देखने लगी, तू कुण्डली के फटे टुकड़ों पर बैठी खेल रही थी।

धीरे ....मौन प्रान्तर।

शब्दार्थ—केलियों=क्रीड़ाओं। कुंज-तारुण्य-सुघर=यौवन के सुन्दर कुंज में लावण्य-भार=सौन्दर्य का भार। मालकौश=एक प्रकार का मधुर राग। नैश=रात्रि। भोगावती=पृथ्वी। सलील=नीला। व्यंजना=संकेत। दृप्त धार=गौरब की धारा। उत्कलित=छलकती हुई। तन्वि=पतले शरीर वाली कोमलांगी। वन्हि=आग। पिक बालिका=बाल कोकिल। प्रान्तर=प्रदेश।

अर्थ—धीरे-धीरे तेरे जीवन के चरण बढ़ते गये और तू बालपन की क्रीड़ाओं के क्षेत्र से निकलकर यौवन के सुन्दर कुंज में विचरण करने लगी। तेरे शरीर पर सौन्दर्य का सम्भार सिहरने लगा। जिस प्रकार नई-नई वीणा के तारों पर अपने कोमल स्वरों के साथ मालकोश राग झंकृत हो उठता है। रात्रि के सुकुमार स्वप्न की तरह तू धीरे-धीरे प्रातःकालीन उषा के जागरण छन्द की तरह गुंजरित ही उठी। अपने यौवन की आभा से भरकर तेरे चरण थिरकने लगे। वन प्रान्तर तथा दिशाएँ तेरे अमन्द सौन्दर्य की सिहरन का स्पर्श कर प्रकम्पित हो उठे। तेरा परिचय आकाश पृथ्वी, पेड़, फूल तथा पत्ती पर बिखरने लगा। तेरी चितवन को देखकर ऐसा लगता था, मानो धरती के अतल गर्भ से स्नेह की अजस्र धारा फूट रही हो। जैसे नील जल टलमल करता नीचे से ऊपर को उमड़ रहा हो, लेकिन देह के बांध में वँधकर आँखों से छलक कर प्रकट हो रहा हो। अपनी माँ के माधुर्य को व्यंजित करता हुआ तेरे कण्ठ से मधुर स्वर फूटने भगा। मानो प्रत्येक पिता के कंठ से वात्सल्य की गौरवमयी धारा बहकर तेरे ही कंठ में स्थिर हो गयी हो, या रागिनी की समस्त मल्हारें उछल कर तुझ में सिमट गई हों। ऐसा प्रतीत होता था मानो नेरे संगीत काव्य की आग जन्मसिद्ध गायिका का रूप धरकर तेरी दृष्टि में साकार हो गई हो। पता नहीं कौन से वे प्रबल संस्कार थे, नहीं तो संगीत की शिक्षा दीक्षा लिए बिना ही ऐसा स्वर प्राप्त हो जाना आज तक मैंने पृथ्वी पर नहीं सुना। हाँ, इतना मैंने अवश्य सुना, जाना था कि बाल कोकिल जब पहले पहल दूसरे के घोंसले में पलकर उड़ने में असमर्थ होती है तो अपने स्वर से सारे वन प्रदेश को गुंजरित कर देती है।

विशेष—कवि ने अपनी पुत्री का करुणामयी वाणी में शृंगारिक चित्रण किया है जो हिन्दी साहित्य में सर्वथा मौलिक वस्तु है। सरोज के मधुर स्वर का वर्णन उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों द्वारा सर्वथा नवीन पद्धति में किया गया है।

लोक प्रचलित है कि कोकिल अपने बच्चों को कौवे के घौंसले में रख आती है। कौवा अज्ञानवश उसे अपना बच्चा समझ उसका लालन-पालन करता है। बड़ा होने पर कोकिल का बच्चा अपनी माँ को ढूँढ़कर उसके पास चला जाता है।

तू खींची ·······तेरा जीवन।

शब्दार्थ—वात=पवन।

अर्थ—तू मेरा सौन्दर्य बनकर मेरी दृष्टि में उतर आई। मेरे हृदय में तेरी ही छवि आकर साकार हुई। मेरे हृदय का कुंज भावनाओं की गुंजार से लहलहाने लगा। पेड़ पत्तों तथा फूलों के समूह में एक अज्ञात प्रेरणामयी वायु तेरे केशों को चूमती हुई तेरी नव देह को निष्पलक नयनों से निहारती हुई प्रवाहित हो चली। मैं तभी तेरी जीवन की गरिमा को समझ गया।

सासु ·······सहोत्साह।

शब्दार्थ—धन्य-धाम=किसी अच्छे घर से। धर्मोत्तर=उत्तम, धार्मिक सहोत्साह=उत्साह सहित।

अर्थ—सासु जी ने एक दिन तुझे देखकर मुझ से कहा कि भैया अब आगे हमारा वश नहीं है। हमारा काम केवल पालना पोसना था। अब तुम सरोज का किसी कुलीन वर से परिणय कर अच्छे कुल में दे दो। यह तुम्हारा उत्तम धर्म का कार्य है। अब कुछ दिन इसे साथ लेकर अपने घर रहो और किसी योग्य वर को ढूँढ़कर उसके साथ उसका विवाह कर दो। हम भी उत्साहपूर्वक इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेंगे।

सुनकर ······ सुजल।

शब्दार्थ—कनक=स्वर्ण। कुलांगार=कुल में आग लगाने वाले।

अर्थ—मैं यह सुनकर मौन हो गया। मैंने ना हाँ कहा और न ही ना। और मैं तुझे स्वर्णमयी को साथ लेकर उसी प्रकार चल दिया जिस प्रकार कोई भिक्षुक अपने जीवन का स्वर्ण-झनक (पूंजी) लेकर कहीं चल पड़े। मैं तुझ विमल प्रकाश की ज्योति को अपने घर की छाया में ले आया। बार-बार मैंने तेरे विवाह पर विचार कर दुखी हो मन ही मन सोचा कि ये कान्य-

कुब्ज कुल के ब्राह्मण अपने कुलों के कलंक हैं, जो उसी पत्तल में खाकर उसी में छेद करना जानते हैं। इनके हाथों में कन्या को सौंपना बड़े दुख का विषय है। वासना से युक्त इन की वेल में फल भी विषयुक्त ही लगता है। इनका कुल जलता हुआ मरुस्थल है। इसमें सुख शान्ति नाममात्र को भी नहीं।

फिर ·······निराधार।

शब्दार्थ—शोभन=शोभनाय। भीति=भय।

अर्थ—फिर मैंने सोचा कि जिस रास्ते से मेरे पूर्वज गये हैं उसी पर चलना मेरे लिए शोभनीय होगा। मैं इस लोक रीति को पूरा ही क्यों न कर दूं, यद्यपि पुराने परम्परागत विचारों को तोड़ने में भी मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। परन्तु पूर्णरूप से पुरानी परम्परा का भार ढोने में मैं सर्वथा असमर्थ हूं। निश्चय ही मुझ में इतनी विनम्रता कभी नहीं आयेगी जो बन्धु-बान्धवों के स्नेह की सीमा को आकारण ही पार कर सके। अर्थात् मुझमें इतनी विनय नहीं कि मैं परम्परा पर चलकर भाई वन्धुओं के स्नेह का अधिकारी रह सकूं।

वे जो ······ धन्या का।

शब्दार्थ—कछार=किनारे। चमरौधे=चमड़े के। सकेल=कष्टदायक। घ्राण प्राण=गन्ध प्राण। गिरजा=पार्वती। नैमित्तिक=दैवी-कारण स्वरूप। अदृश्य=अलख। इंगित=संकेत। स्नेह-स्राव=स्नेह का प्रवाह। प्रफुल्ल चेतन =प्रसन्न चित्त।

अर्थ—वे जो यमुना के कछार परदरे-पांवों में फटी विवाई वाले—जिनके मुख उदार व्यक्ति की तरह तेजहीन तेल पिये हुए नये-नये चमड़ों की जूते से निकलने वाली गंध जिनके मुंह से आती है, मैं उनके चरणों की अंधा होकर पूजा नहीं कर सकता। सर्वथा जड़ एवं गंध प्राण से ही होकर मैं उन्हें पूजूं ऐसी शक्ति मुझ में नहीं है। ऐसे महादेवों से अपनी प्यारी पार्वती (सरोज) का विवाह करने की मेरी इच्छा नहीं है।

फिर मुझे याद आया कि मुझे पहले एक सज्जन विद्वान् साहित्यिक नवयुवक जो कान्यकुब्ज कुल का ही था, मिला-- वस्तुतः यह दैवी प्रेरणा से ही मुझे मिल पाया था। मेरे भले के लिए यही स्वागत किये जाने योग्य था। विचार दृढ़ हो गया। हृदय का स्नेह उस युवक के प्रति उमड़ पड़ा और उसी समय मैंने उसे खत लिखकर बुला भेजा। वह युवक भी प्रसन्न चित्त

होकर मुझसे आकर मिला। मैंने कहा -- सर्वथा खाली हूं। इस समय मेरे पास देने को कुछ नहीं है। जो कुछ मेरा अपना धन है जो मुझे पूर्वजों से प्राप्त हुआ है वह आपको दे सकता हूँ। मैं अपनी पुत्री का विवाह सज्जन व्यक्ति से कर सकता हूँ, पर मेरी यह इच्छा कदापि नहीं कि दहेज देकर मैं मूर्ख बनूँ। बारात बुलाकर में फिजूलखर्ची करूँ ऐसी मेरी सामर्थ्य नहीं है। तुम मेरी पुत्री से विवाह करो मैं सामाजिक परम्परा के नियमों को तोड़ता हूं। यदि पंडित जी विवाह में आने से मना करेंगे तो लग्न के मंत्र मैं स्वयं पढ़ दूँगा। वैसे जो भी कुछ मेरा वह सभी सरोज का है, यह कुल धन्धा सरोज का है ऐसा तुम निश्चित समझ लो।

आये......थर थर।

शब्दार्थ—संसर्ग = कुटुम्ब सहित।

अर्थ—विवाह में पंडित जी तथा आमंत्रित साहित्यिक व्यक्ति एवं अन्य लोग भी हर्षपूर्वक आये। उन्होंने सर्वथा नवीन पद्धति के विवाह को देखा जिसमें तुझ पर पवित्र कलश का शुभदायक जल पड़ा। मेरी ओर देखकर तू मन्द-मन्द मुसकराई। तेरे अधरों में जैसे बिजली का स्पन्दन डोल गया। तेरे हृदय में छवि झूलने लगी। अपने प्रिय पति का मौन शृंगार तुझ में मुखरित हो उठा। तू एक उच्छ्वास की तरह विकसित होने लगी। तेरे एक-एक अंग में विश्वास नाच कर स्थिर हो गया। तेरी विनम्र आँखों से आभा उतरकर थर-थर तेरे अधरों पर कंपित होने लगी।

देखा ......मैंने कला।

शब्दार्थ—मूर्ति-धीर्ति—धैर्य की मूर्ति।

अर्थ—मैंने तेरी वह धैर्य एवं शील की मूर्ति देखी—उसमें मैंने अपने जीवन के वसन्त का प्रथम संगीत में देखा। अपना वही शृंगार देखा जो कविता के रस से सैदव छुपकर अपनी धारा छलकता रहा, तथा जिसको मैंने अपनी स्व० प्रियतमा के साथ मिलकर गाया था—जो आज भी कवि का रूप धारण कर विश्व में विचरण कर रहा है और आकाश से परिवर्तित होकर पृथ्वी पर तुझ में साकार हो गया हो।

तेरा विवाह हो गया, उसमें सगे सम्बन्धी कोई नहीं आये—न ही उन्हें निमन्त्रण भेजे गये थे। विवाह का राग दिन-रात घर में नहीं गुंजित हुआ न हीं किसी ने रतजगा किया। हां एक मौन संगीत जीवन के स्वर में आकर अवश्य धरती पर अवतरित हो रहा था। मैंने तुझे विवाह के समय माँ की

सभी शिक्षायें दी। तेरे फूलों की शय्या का निर्माण मैंने स्वयं अपने हाथों से किया। मैंने मन में सोचा — कि तू मुझ कण्व की शकुन्तला है यद्यपि तुझे पाठ उससे भिन्न मिला है, तेरी कलायें उसमें भिन्न हैं।

कुछ ········ महाभरण।

शब्दार्थ—समोद = हर्षपूर्वक। न्यस्त = रक्षक-साथी।

अर्थ—कुछ दिन तक हर्षपूर्वक मेरे घर में रह कर तू फिर हर्षपूर्वक नानी की स्नेहमयी गोद में फिर जा बैठी। मामा-मामी का अतुल प्यार मुझे मिला जिस प्रकार बादलों का जल धरती को मिलता है। वे ही तेरे दुःख-सुख में तेरे साथी रहे। तेरे लालन-पालन में सदा लगे। वह लता (सरोज की मां) भी वहीं की थी जहाँ तू बेला की तरह नित्यप्रति विकसित हो रही थी। उस स्नेह से प्रकम्पित लता की गोद में ही तूने अन्त में जाकर शरण ली और अपने नयन सदा के लिए मूँदकर तू महाप्रयाण कर गई।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में कभी-कभी समग्र वेदना एक साथ उमड़कर वह जाती है।

मुझ ······ तर्पण।

अर्थ – हे बेटी! तू तुझ भाग्यहीन कवि का एकमात्र सहारा थी। आज दो वर्षों के बाद तेरी स्मृति में मैं व्याकुल होकर वह बात प्रकट कर रहा हूं जो मैंने आज तक कभी नहीं कही, दुख ही मेरे जीवन की कहानी रही है। मेरा धर्म यदि बना रहे तो बेशक मेरे सम्पूर्ण कर्मों पर बिजली टूट पड़े। मैं सदा अपने इसी पथ पर (दीन जीवन ही मेरा धर्म है) सिर झुकाये चलूँ। मेरा सभी कार्य सर्द ऋतु में मुरझा जाने वाले कमल के पत्तों की तरह नष्ट हो जाये। हे बेटी! मैं अपने पुराने जन्मों के सारे कर्मों को अर्पित कर तेरा तर्पण करता हूं—तुझे श्रद्धांजलि भेंट कर रहा हूं।

भाव जो छलके पदों पर

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३३ ई० में हुई थी। इस कविता में कवि की अलौकिक सत्ता के प्रति अदम्य आस्था मुखरित है।

भाव ········ सरोवर।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—हे भगवान् आपके पदों पर मेरे जो भाव छलके हैं, वे न तो कभी हल्के हों और नष्ट हों।

वह मेरे मन को सदा के लिए निर्मल बना दे, मेरी देह तथा मन का

शीतल करे और मेरे सब दुखों का वह हरण करे जो सरोवर में नहा आई हो।

गंध वह………कहीं कर।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—हे भगवान् ! वह गंध तुम्हारी हो और उसकी धूल मेरी हो। हे प्रिय ! वह तुम्हारी चितेरी हो। आरती की सहज फेरी को कभी सूर्य की किरण कम न कर दें, इसका मुझे वरदान दीजिये।

दलित जनों पर करो करुणा

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३९ में हुई थी। इस कविता में भगवान् की करुणा की महिमा का गान करते हुए कवि ने उनकी करुणा की याचना की है।

दलित जन………अरुणा।

शब्दार्थ—दलित=दुखी। अरुणा=रक्षक।

अर्थ—कवि भगवान् से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे भगवान् ! हम दुखी जनों पर कृपा करो। हे प्रभु ! तुम्हारी रक्षक शक्ति हम जैसे दीन व्यक्तियों पर भी उतर आये ! अर्थात् आप हम जैसों की भी रक्षा करें।

हरे तन मन………तरुणा।

शब्दार्थ—पावन=पवित्र। मनोभावन=मनोहर।

अर्थ—कवि भगवान् से प्रार्थना करता रहता है कि हे भगवान् ! तुम्हारी कृपा हमारे तन-मन के दोषों का हरण करके उनमें पवित्र प्रीति भरे, हमारा मुख मधुर और मनोहर हो। मेरी सहज चितवन पर तुम्हारी तरुण किरण तरंगित हो।

देख वैभव………भक्त वरुणा।

शब्दार्थ—समुद्धत=चंचल। भक्ति-वरुणा=भक्ति की वरुणा।

अर्थ—कवि भगवान् से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे भगवान् ! मुझे ऐसा वरदान दो कि संसार के वैभव के सामने मेरा सिर न झुके, मेरा चंचल मन सदा स्थिर रहे और मेरे जीवन में सदा तुम्हारी भक्ति की वरुणा बहती रहे।

भगवान बुद्ध के प्रति

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४० ई० में हुई थी। इसमें बताया गया है कि आज के वैज्ञानिक युग में शान्ति सर्वथा नष्ट हो चुकी

है। भगवान् बुद्ध ने शन्ति की स्थापना के लिए जो प्रयत्य अपनाये थे, उनका अनुकरण करने से ही विश्व का कल्याण सम्भव है। आज के मनुष्य ने सुख की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक साधन अपना रखे हैं किन्तु भौतिक अथवा साँसारिक सुख के पीछे भागने वाले व्यक्ति की आत्मा में शान्ति नहीं है। भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चलने से ही मानव सच्ची शान्ति को प्राप्त कर सकता है। यही इस कविता केन्द्रित भाव है।

आज सभ्यता........स्वार्थ विचक्षण।

शब्दार्थ—वैज्ञानिक=विज्ञान से सम्बन्धित। जड़=प्राण रहित। विकास =उन्नति। गर्वित=अभिमान से भरा। अग्रसर=बढ़ना। स्थल=पृथ्वी। अम्बर=आकाश। नभयानों=हवाई जहाजों। दर्प=घमण्ड। विचक्षण=दूर-दर्शी, चतुर।

अर्थ कवि वैज्ञानिक विकास की नश्वरता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहता है—आज संसार को अपने वैज्ञानिक उन्नति पर अभिमान हो रहा है, किन्तु उसे यह ज्ञान नहीं है कि इसी वैज्ञानिक उन्नति के द्वारा ही वह निरन्तर विलास की ओर बढ़ता चला जा रहा है। यह साफ ही दिखाई दे रहा है कि मनुष्य ने सुख की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक साधनों को खिलौना बना रखा आज मनुष्य ने केवल धन को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बना रखा है और इसी की प्राप्ति के लिए वह आगे बढ़ता चला जा रहा है। मनुष्य ने पृथ्वी जल और आकाश को रेल तार, बिजली, जहाज और हवाई जहाजों से भर, दिया है और वह अपनी इस वैज्ञानिक उन्नति पर घमंड से भर गया है। संघर्ष की वृद्धि होती चली जा रही है। वर्ग से वर्गों के समूह जूझ रहे हैं, एक राष्ट्र से दूसरा राष्ट्र भिड़ा हुआ है और स्वार्थ में चतुर व्यक्ति का संघर्ष चल रहा है।

हँसते है........विनिर्वाण यह।

शब्दार्थ—जड़वाद=भौतिकबाद। परस्पर=आपस में। विकृत=विगड़े हुए। अतीत=भूतकाल, बीता हुआ समय। पतित=गिरा हुआ, नीचा। अपटु =जो चतुर न हो, सीधा सादा। वन्य=जंगल। विनिर्वाण=मुक्ति।

अर्थ—निराला जी कहते हैं कि आज का मानव भौतिकवाद में फँसा हुआ है अर्थात् सांसारिक सुख में ग्रस्त है। प्रेतात्माओं की भाँति आज का मानव भटक रहा है। वह अपने नेत्रों को और मुंह को बिगाड़ कर कहता है कि भूत-काल मनुष्य मात्र के लिए अत्यन्त भयानक था। वहाँ संसार का मन ऊँचा उठा

होने की अपेक्षा नीचे गिरा हुआ था। हमारे बन्धु सीधे सादे शिक्षा से रहित और जंगली थे। भूतकाल में आज की भाँति मनुष्य उन्मुक्त प्राण वाला नहीं था, तर्क के द्वारा आज का मानव प्रत्येक बात को सिद्ध करता है। मानव की यह मुक्ति एक प्रकार का सपना ही है। उनमें सत्य नहीं है।

विशेष—आज का मानव अपने पूर्वजों को मूर्ख और अपने आपको बुद्धिमान समझता है वह स्वयं को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त समझता है, किंतु उसकी यह मुक्ति एक प्रकार का भ्रम ही है। 'अपितु अशिक्षित' में 'अ' वर्ग भी एक बार क्रमिक आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास शब्दालंकार है।

वहां बिन कुछ·········तथागत।

शब्दार्थ—विमुख=हटा हुआ, दूर। सर्वस्थित=सर्वस्व, सब वैभव। रूढ़ि=परम्परा। रत=लगे हुए। तथागत=भगवान् वुद्ध।

अर्थ—निराला जी अतीतकाल को गिरा हुआ न समझकर गौरवपूर्ण समझते हैं। भगवान् वुद्ध की वन्दना करते हुए पुन: कहते हैं—हे भगवान् बुद्ध! तुम अतीत काल में सत्यरूपी सरस्वती के मन्दिर के सामने इस संसार में उतरे थे। तुम बार-बार मानव के मन में उतरते चले आ रहे हो। तुमने अपने भोग-विलास का त्याग किया। राजकुमार होने पर भी तुम सांसारिक विषयों से दूर रहे। अपना समस्त सांसारिक वैभव त्याग कर तुमने सत्य के लिये परम्परा का भी त्याग किया, अर्थात् राजकुमार होते पर भी साधुओं का सा जीवन स्वीकार किया। कठिन तपस्या करके तुमने अपने तथ्य अर्थात् सत्य की प्राप्ति कर ही ली।

विशेष—'सत्य-वाणी' में निरंग रूपक अर्थालंकार है। सत्य पर वाणी का अभेद आरोप किया गया है। 'मन्दिर-जैसे' में उपमा अर्थालंकार है।

फटी ज्योति विश्व·········ज्योति प्रदर्शित।

शब्दार्थ—सम्मिलित=एकत्रित। तिरोहित=छिप जाना। संचित=एक हुए। वंचित=हीन। शत=सौ। उत्स=स्रोत, झरना। पंकिल=कीचड़ में सना हुआ। अदर्शित=जो दिखाई न दे।

अर्थ—भगवान् बुद्ध ने जब सत्य की खोज कर ली तो सत्य की ज्योति सम्पूर्ण संसार में फैल गई। सब मनुष्य एकत्रित हो एप। आहिस्ता-आहिस्ता मनुष्यों के मन में जितने भी वुरे भाव अर्थात् विचार ये वे सब छिप गये। पृथक् रूप से पृथक्-पृथक् धर्मों में भगवान बुद्ध के ये विचार सम्मिलित हो गए। सब धर्मों में अलग-अलग ढंग से यह भाव आ गया कि मनुष्य में दया

होनी चाहिए। मनुष्य दया से सर्वथा हीन न हो। मानवता रूपी जल के सैंकड़ों झरने इधर-उधर सभी देशों में बहने लगे। अर्थात् मानवता का प्रसार हो। संसार का जो भौतिक रूप तुम्हारे बल के कारण कीचड़ में सन गए और दृष्टि से दिखाई न दिए। तुम्हारे कारण ही सम्पूर्ण विश्व में प्रकाश फैल गया है और वही प्रकाश दिखाई देता है।

विशेष—'मानवता जल' में मानवता पर जल का अभेद आरोप होने के कारण निरंग रूपक अर्थालंकार है।

सुन्दर हे सुन्दर

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३९ में हुई थी। इसमें कवि ने भगवान् की प्रार्थना करते हुए बताया है कि वह सर्वशक्ति सम्पन्न है और उन्हीं की कृपा से उनके जीवन में काव्य-प्रतिभा एवं अनासक्ति का आभिर्भाव हुआ है।

सुन्दर है·······स्वर।

शब्दार्थ—अनिश्वर—अनश्वर, अमर।

अर्थ—कवि ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे ईश्वर! तुम अत्यन्त रूप वाले हो, अतः तुम्हारे दर्शन से मेरे जीवन में अमर स्वर का विकास हो गया है; अर्थात् मुझे ऐसी प्रेरणा दी है कि मैं अमर काव्य की सृजना कर रहा हूं।

पर से ज्यों·······छूकर।

शब्दार्थ—तान-सुरसरिता=लय की गंगा। मंगल-पद=कल्याणकारी चरण।

अर्थ—हे ईश्वर! जैसे ही प्राणों ने तुम्हारे कल्याणकारी चरणों को छूआ वैसे ही गीत अपनी स्वाभाविक गति में फूट पड़ा और लय की गंगा बहने लगी, अर्थात् तुम्हारे चरणों में इतना प्रभाव है कि उन्हें छूते ही कविता अपने प्रबल और सहज वेग से फूट पड़ती है।

उठी है·······भर-भर।

शब्दार्थ—तरंग=लहर। निःसंग=आसक्तिहीन होकर।

अर्थ—हे भगवान्! मेरे जीवन में आपकी कृपा से एक लहर उठी है जिसमें जीव आसक्तिहीन होकर बह रहा है। मैं इसी आधार पर तुम से मिलने के लिए तथा खिलने के लिए उस लहर को अपने जीवन में समेट कर बार-बार तुम्हारी ओर चला हूँ।

जग-जन के जीवन के सुन्दर

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३९ ई० में हुई थी। इसमें कवि ने भगवान् से स्तुति की है कि वे उसे ऐसा वरदान दें कि वह अपना सर्वस्व उनके चरणों में समर्पित कर दे और हृदय में इतनी उदारता दें कि वह गैर को भी अपना सके।

जन-जन के·······न्यौछावर कर।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—कवि ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे प्रत्येक जन के जीवन के सुन्दर भगवान् ! तेरे चरणों पर अपने वरण लिए हुए भावों को अर्पित करके उन पर तन, मन और धन न्यौछावर कर दूँ, आज मुझे ऐसा वरदान दो।

दाग-दाग·······जल-जलकर।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—कवि ईश्वर-स्तुति करता हुआ कहता है कि आपने जो आग की चिनगारी प्रत्येक जन से हृदय में डाली, वह अब जलकर आग का रूप धारण कर गई है। मुझे आप ऐसा वरदान दें कि मैं उस आग में जल-जलकर आपकी आरती उतारूं।

गीत जगा·······दुस्तर।

अर्थ—कवि ईश्वर-स्तुति करता हुआ कहता है कि मेरे मन में जो गीत जग गया है, आप उसे अपने गले लगा लें, अर्थात् स्वीकार कर लें। हमारे लिए जो गैर बन गया है, वही सहज सगा बन जाये और जो मार्ग अति दुर्गम हो, उसे हम आपकी कृपा से पार कर लें।

जलाशय किनारे कुहरी थी

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४६ ई० में हुई। इसमें कवि ने प्रकृति का बहुत ही सजीव मूर्तिमन्त वर्णन किया है। अनेक भावों के अनेक बिम्ब कवि की काव्य-प्रतिभा के परिचायक हैं।

जलाशय के······ अन्तर में।

शब्दार्थ—जलाशय = तालाब। दल = समूह। परिमल = सुगंधि। स्यार = गीदड़। दिपा = छिपा। अन्तर = हृदय।

अर्थ—तालाब के किनारे एक कुहरी थी जिसके चारों ओर हरे और

नीले पत्तों का घेरा पड़ा हुआ था। पानी पर आम की डाल आई हुई थी। गहरा अन्धकार छाया हुआ था। तालाव के किनारे सुनसान थे जिन पर यत्र-तत्र जुगनू के समूह चमक रहे थे। वन की सुगंधि लिए मलय-वायु धीरे-धीरे चल रही थी। नारियल के पेड़ क्रम से हिले। ताड़ के पेड़ इस प्रकार सीधे खड़े हुए थे, मानों वे सबको ताक रहे हों। छिपा हुआ पपीहा पी-पी पुकार रहा था। गीदड़ आराम से इधर-उधर घूम रहे थे। उजाला हो गया और तारा छिप गया। तालाव में लहरें उठती थीं और हृदय में तारा चमकता था।

धूलि में तुम मुझे भर दो

कविता-परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४० ई० में हुई थी। इस कविता में कवि की आस्था, भाव एवं उदारता का भाव विशेष रूप से अभि-व्यंजित हुआ है।

धूलि में ..... वरण कर दो।

शब्दार्थ धूलि-धूसरित = धूल में सने हुए।

अर्थ कवि ईश्वर-स्तुति करता हुआ कहता है कि हे ईश्वर ! तुम मुझे धूलि में भर दो और तुम्हारे जो पैर धूल में सने हुए हैं, उन्हीं को प्राप्त करने का वरदान मुझे दे दो।

दूर हो .... प्रखर हो।

शब्दार्थ—वर्ण-आश्रम-गत = जाति तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रम का। निरामय = सुखपूर्ण। सदाशयता = महानता। प्रखर = प्रबल।

अर्थ—कवि ईश्वर स्तुति करता हुआ कहता है कि मेरे सारे अभिमान और सन्देह दूर हों, मेरे जाति तथा आश्रय के महाभय भी नष्ट हो जायें। मेरा जाति-जीवन सुखपूर्ण हो, इस प्रकार की प्रबल महानता मेरे जीवन में भर दो।

फूल जो........वर दो।

शब्दार्थ—सदल = समूह-सहित। क्षिति = पृथ्वी। सुकर = आसान।

अर्थ—हे ईश्वर ! तुमने जो फूल खिलाया उसे ही समूह के सहित लाकर पृथ्वी में मिला दिया। तुमने मुझे मरण से जीवन दिया तथा अब वह वरदान दो जो आसान हो।

देवी सरस्वती

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४३ ई० में हुई थी।

इसमें सरस्वती की महत्ता के वर्णन के साथ-साथ छः ऋतुओं के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों का विशेष सजीव एवं सहृदयता से वर्णन किया गया है। यह कविता किसानों की दशा का जो स्वाभाविक चित्र उपस्थित करती है, उसी के आधार पर निराला को किसानों का अथवा गाँवों का कवि कहा जा सकता है।

मानव का ······ वीणा के स्वर।

शब्दार्थ—सित=सफेद। शतदल=कमल। विकच=खिले हुए। अधर= निरालम्ब। सुघर=सुन्दर। नीरज=कमल। सज=माला। शाश्वत=अमर। लघूर्मियों पर=छोटी लहरों पर।

अर्थ—कवि सरस्वती देवी के रूप का वर्णन करता हुआ लिखता है कि मानव का मन संसार सागर के समान है जिसमें आत्मा का सफेद कमल खिला हुआ है। उन्हीं खिले हुए कमलों की पंखुड़ियों पर तुम्हारे सुन्दर चरणतल निरालम्ब रूप से रखे हुए सुशोभित हैं। तुम दो हाथों में वीणा लिए हुए हो। अन्य दो हाथों में से एक हाथ में पुस्तक और दूसरे में कमल लिए हुए हो और एक हाथ में माला के जादू के सुन्दर स्वरों की भाँति युशोभित है। तुम नीले वस्त्र पहने हुए हो, तुम्हारा तन स्वच्छतर ज्योति से खिला हुआ है। तुम्हारी वीणा के एक तार से जड़ और चेतन प्रकृति का अमर मन मिला है। पैरों के नीचे छोटी-छोटीलहरों पर हंस पैर रहा है, जो वीणा की मृदुल तथा तीव्र झंकारों से युक्त स्वरों को सुन रहा है।

साम-गीत ······ अब्दों की।

शब्दार्थ—साम-गीत=सामवेद के गीत। समाहित=एकाग्र। अर्चा= पूजा। सकाम=इच्छा वाला।

अर्थ—कवि सरस्वती देवी की महत्ता का वर्णन करते हुए कहता है कि आर्यों ने तुम्हें मानकर ही, तुम्हारी महत्ता स्वीकार करके ही, सामवेद के गीत गाये थे और तुम्हें ज्ञान, धन जानकर अपने मन को एकाग्र किया था। केवल तुम्हारी ही पूजा उन्होंने वेदों की सहज ऋचाओं के द्वारा की और तुम्हारे चरणों पर फूलों की अंजलि भर-भरकर अर्पित की। हे विमले! तुम आर्यों की सरल और निरंकुश देवी हो। ऐसी इच्छा वाला व्यक्ति इस संसार में कोई नहीं है, जो तुम कोअधिकाधिक पाने की इच्छा न करता हो। हे शुभ्र! यद्यपि तुम अब्दों की बन्दनीय हो, तथापि कुलरंग, राग और शब्द नित नवीन ग्रहण करके तुम्हारी वन्दना करते हैं।

ऋतु के फूल·········पुक और फल।

शब्दार्थ—बलाकों की=बगुलों की। अवनी=पृथ्वी। अर्जन=प्राप्त करना, इकट्ठा करना। क्षिप्र=शीघ्र। रंकों की=गरीबों की। द्रुम=वृक्ष।

अर्थ—कवि देवी सरस्वती की महत्ता का वर्णन करता हुआ कहता है कि तुमने विभिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगंधि वाले फूलों को उत्पन्न किया है। तुमने संसार में रहने वाले लोगों के मुरझाये हुए मुखों को हँसा दिया है। तुम वर्षा हो, बगुलों की पंक्ति हो, वन की शाखा के पत्तों से टपकती आँखें हो, उतरी हुई नदी हो जिनके किनारे पर प्रसन्न होकर मोर नाचते हैं, कली की गन्ध के कारण गूँजते हुए भौंरे सारी पृथ्वी के छोरों को गुंजा रहे हैं। तुमने सावन भादों के हिंडोले में हँसी भरी है, बालाओं के संगीतों के स्रोत वहाये हैं। तुमने बिजली जैसे निपुणतर हाथों से घन-मृदंग का वादन किया है, अर्जुन के प्राप्त होने पर परी जैसा नृत्य किया है। तुम जल तरंग के समान हो जो पक्षियों के समूह के मधुर बोलों से बजती है। तुम सुन्दर दृश्य पंक्तियों को देखने और दिखाने वाली हो। तुम संसार के तालाब से सैकड़ों रूपों की तेज मन्दी गति वाले गरीबों की और राजपूतों की निकली हुई सरस्वती हो। जिस प्रकार बीजों से अंकुर, अंकुरों से पल्लव, पल्लवों से शाख, शाखा से वृक्ष और वृक्ष से नये फूल निकलते हैं, उसी प्रकार तुम संसार-सर से निकलती हो।

अलंकार—उल्लेख, उपमा, सार।

हँसते बढ़े·········सुहायी।

शब्दार्थ-पुरवाई=पूरब से चलने वाली हवा।

अर्थ—जल पर हरे रेत की भाँति खेतों में धान की फसलें लहलहाती हुई बढ़ीं। अरहर, काकुर-सावाँ, उड़द और कोदों की खेती लहलहाने लगी। आम पूरी तरह पक गये। तालावों में कमल और लहराते हुए करँवुए निकल आए। पक्षी आ-आकर ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर ठहरने लगे। वालाएँ हाथ में खुरपी लेकर खेतों को निराती हैं और साथ ही साथ वारहमासी तथा सावन की कजली गाती जाती हैं, जुही की कली मुस्कराने लगी। मन्द गति से चलने वाली तथा सुगंधि से भरी हुई पूर्व की हवा बल खाकर आने लगी और नागिनी की तरह डसने लगी।

शरद पंकजों·········कृषि फल।

शब्दार्थ—शरद पंकज—शरदकालीन कमल।

अर्थ—शरदकालीन कमलों जैसे, खंजन से नयनों का देखना हर सिंगार

के हार विश्व के द्वार का प्रतिक्षण. झुकी हुई शांति भरी हुई, सुन्दर वन-वस्त्रों वाली सफेद चन्द्रमुखी पृथ्वी पर अपने मधुर अधरों की हँसी को बिखेरने लगी। किसानों की आशा से, श्रम से धारा से, धान्य से पृथ्वी का कृषि-फल उत्पन्न होता है, जो सभी के जीवन का सहारा है।

सिमटा पानी ……… बजी बधाई।

शब्दार्थ जाया=पुत्री। मग्न=प्रसन्न। उन्मद=मस्ती से भरी हुई।

अर्थ—खेतों का पानी सिमट गया ओट पर हल चले, खेत पांसे गये, जिन्हें जोत-जोतकर मखमल के समान मुलायम बना लिया गया था। उसमें चने, जौ मटर, गेहूं, अलसी, राई, सरसों के बीज बोए गए और हाथों से बजती हुई ताली में ऐसा स्वर निकला, मानो सुहावनी वीणा बजाई गई हो। पौधों की रागिनी सजीव, सजी और सुखदाई थी। उन्हें देख-सुनकर दुःखी किसानों की लड़की की आंखों में सुख के आँसू खेतों की हरियाली से भर आये। हरे-भरे खेतों की सरस्वती लहराने लगी और प्रसन्न हुए किसानों के घर में मस्ती की बधाई बजने लगी।

खुली चाँदनी ……… लौटे सीधे।

शब्दार्थ कतकी=कातिका। चंगें=उमंगें।

अर्थ—अपनी हरी-भरी खेती को देखकर किसान बहुत खुश हुए। वे छिटकी हुई चाँदनी में डफ और मंजीरे लेकर खेसों को बिछाकर तथा गोल बांधकर बैठ गये। वे कबीरदास और तुलसीदास के भजन गाने लगे। कभी धनुष भंग के भजन गाते और कभी राम के बनवास के। कार्तिक मास में उन्हें गंगा-स्नान से बड़ी उमंगें हुई। सब लोग गाड़ियां सजाकर और मन में उमंगें लेकर नहाने के लिए चले। उन्होंने मेले में से खेती के लिए कुछ सामान खरीदे और वहां हाथी, घोड़े तथा रब्बे देखकर वे सीधे लौट आये।

कुन्दों के ……… जिसमें।

शब्दार्थ कुन्दों के=कमल के। शुभ्र=स्वच्छ। हरित=हरी। हिम-सीकर=शीतल बूंदें। शस्य-शीर्ष=शस्य का सिर।

अर्थ—ओस-बिन्दुओं से शीतल हेमन्त ऋतु की परी कमलों की स्वच्छ हँसी पर उतरी। तुम्हीं हरे आकाश पर पृथ्वी की श्वेत मंजरी होकर मंदगति वाली सुगन्धि से युक्त संचरण करती हुई शीतल ऋत्ता किन्नरी के रूप में बाग-बाग, वन-वन रव की सुगन्ध मन्द पीकर शीतल बूंदों से युक्त पत्ते-पत्ते पर स्निग्ध पवन के साथ झूम रही हो। तुम शस्य की चोटी से उठी हुई हों, तुम मटर-पुष्प के सौरभ-धन से लुटी हुई हो। तुम सरसों के पीले फूलों की साड़ी पहने

हुए हो जिसमें अलसी के नीले फूलों की रेखाएँ खींची हुई हैं।

प्रखर शीत ....अन्तिम सुन्दर।

शब्दार्थ—प्रखर=तेज। शर=बाण। हरीतिमा=हरियाली। शीर्ण=सूखना। वसन=वस्त्र। घृत-यव=घी और जौ। स्वस्त्यपन=कृत-विशेष के आरम्भ में विघ्नशांति की कामना से किया जाने वाला मन्त्रोच्चार या प्रायश्चित्त-विधान।

अर्थ तुमने प्रबल शीत के बाण से जग को वेधा और हरियाली के पत्ते-पत्ते को तुमने भी छेद दिया है। नदियां सूख गई हैं। बागों मे ठिठुरे के समान साधारण जन अपने घरों में ठिठुरे हुए बैठें हैं। उनका धन छिना हुआ है जिसके कारण उनके आधे तन पर भी वस्त्र नहीं है। वे अपना गृह जीवन आग में ताप तापकर बिता रहे हैं। उनको यह दिखा रही हो कि तारे टूट रहे हैं जो पत्तों की डाली के सहारे छूट रहे हैं। उन्हें फिर दूसरा जीवन पल्लवित करेगा और किसी अस्त्र से उनके अन्न तथा वस्त्र से दुख दूर करेगा। जमींदार की वन आई है, महाजन धनी हो गये हैं। जग के धूर्त्त पिशाच धूर्तगण अपना सम्मान वनाये हुए हैं। हे सरस्वती! तुम विश्वरूपिणी हो। तुम्हारे मूर्ति बनाकर वसन्त के दिन बड़ी दीनता से तुम्हारी गीत और वाद्य में उड़ी सामाजिकता के साथ पूजा की और तुम्हें फूलों की अंजलि अर्पित की। गंगा की रेती की वेदी बनाई। विघ्नों का नाश करने के लिए मन्त्र पढ़कर तथा घी और जौ लेकर हवन किया गया। यह अन्तिम विसर्जन सुन्दर था।

नव पल्लवित ....सुतार को।

शब्दार्थ—सुखकर=सुख देने वाला। वृन्त-वृन्द=डाली-डाली। कुण्ठा=अतृप्त इच्छाएँ। मनोज=कामदेव। समवेत=इकट्ठे।

अर्थ—नये पत्तों को विकसित करता हुआ सुख देने वाला वसन्त पृथ्वी पर आया। डाली-डाली से नये पत्तों के रूप में तुम फूटीं, कूकने वाली कोयल रूपी हृदय से मधुर कंठ फूटने लगा। सारी अतृप्त इच्छाएँ समाप्त हो गईं। स्वच्छन्द गति से बहती हुई हवा ऐसी प्रतीत होती है मानो पृथ्वी की वीरता समाप्त हो गई है। पके हुए खेत इस प्रकार लहरा रहे हैं मानो सोने के अंचल लह‌रा रहे हों। नये कामदेव के भाव लोगों के मन में उमड़ने लगे। हर दिन शा‌म को गाँव वाले सभ्य जन इकट्ठे होकर ढोलक और मंजीरे पर गीत गाते हैं। फाग हो रहा है। धमार की धुनें बज रही हैं और होली चैती तथा लेज सुन्दर तानें गाई जा रही हैं।

बौरे आमों की······· कोई मस्ती ।

शब्दार्थ—बौरे=बौर वाले । तकवाहा=रक्षक । सुवेश=सुन्दर वेश वाली ।

अर्थ—बौर वाले आमों की सुगन्धि पृथ्वी पर छा गई है । सर्वत्र नये वर्ष का आनन्द छाया हुआ है और चांदनी सुहावनी लग रही हैं । रबी की फसल कटी, आम के नीचे खलियान लगाया गया । वहीं पर चना, मटर, जौ, गेहूँ और सरसों काटकर इकट्ठा कर दी गई । वहीं पड़ी हुई चारपाई पर खलियान का रक्षक बैठ गया । जरा दूर मेंड़ के किनारे पर जिसने जहाँ चाहा, अपना चूल्हा जला लिया । खलियानों में ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे कोई नई बस्ती बस गई हो और वहाँ पर सुन्दर वेश वाली मस्ती विचरने लगी हो ।

ग्रीष्म तापमय········काया ।

शब्दार्थ—ग्रीष्म=गर्मी । सम्बल=सहारा । समाराधना=आराधना । दुस्तर=कठिन ।

अर्थ—गर्मी गर्मी से युक्त थी । लू की लपटों की दोहरी और झुलसाती किरणों की दोपहरी इतनी तेज थी मानों वर्षों से इकट्ठी होकर आई हों । हे सरस्वती ! तुम कुंए के पानी की जमुना के वृक्ष के नीचे की शीतलता हो और लदे हुए आम के बागों का सहारा हो । गेहूं, चने और मटर खलिहान से झाड़कर घर लाये गये । तुमने उस गाँव में जहाँ न तो कोई साधन है और न कोई संचय है, अत्यन्त सुख का वातावरण बना दिया । वहाँ पर न तो समाज की कोई दीक्षा है, न कोई सुखदायक शासन है, वहीं पर आराधना करना और कठिन लहरों की बिजली से झुलसाती हुई जनता की रट, उठते हुए कदमों की और दौड़ते हुए कदमों की तेजी से सरपट, रुद्र ताल की भैरव जैसी रण की छाया इस प्रकार नाच रही है, जैसे किसी भिन्न जगत् की काया हो ।

हर चक्र ·····मंगल से ।

शब्दार्थ—विवर्तन=चक्कर । तन्वी=कोमलांगी । सायक=बाण । अन्तस्तल=हृदय ।

अर्थ—हर एक चक्र के चक्कर से वर्ष का जन्म गति के क्रम-उपक्रम सुन्दर कमल उगा रहा है । तुम ऊपर नीचे आसमान के समान हो, दिन के प्रकाश में तुम श्वेत और कोमलांगी जनता के मन रूपी धनुष पर बाण की तरह चढ़ी हुई हो बाल्मीकि का क्रौंच-मिथुन, जिसके कारण आदि कवि की कविता फूटी थी । व्यास का जन्म-फल कालिदास की दशा, हर्ष का उत्कल का दमन नवीन आलोक

में सुन्दरतर होकर तुम बगुलों की पंक्ति की तरह शब्द-शब्द पर छन्द-छन्द पर इसी प्रकार टूट पड़ी जैसे झंकारी के हृदय के कुंकुम और पराग उड़ते हैं, जीवन की वीणा के तारों से मंगल भरे स्वर निकले हैं।

राग-रंग·······काम से।

शब्दार्थ—राग-रंग=आनन्द। वृहत रूप से=वड़े रूप से।

अर्थ—आनन्द की रामायण दुख की गाथा से इसी प्रकार समाप्त हुई जिस प्रकार भाषा के अधिक मनोहर स्वर सँभाले हुऐ हो, वीर जाति के सुन्दर तर चित्र अपने बड़े रूप में खुले हुए हों। सुन्दर बल्कल पर सभ्यता खिल गई हो। महाभारत-कालीन सभ्यता कुछ वदली, जैसे भिन्न रूप की और भिन्न गंध की कदली बदल जाती है। सीता और राम से एक और द्रौपदी और अर्जुन से अनेक पंक्तियों के व्रत तथा इच्छा से।

भारत की·······समयन कविता।

शब्दार्थ—आलोक-समन्वित=प्रकाश से भरा हुआ। शशिधर=चन्द्रमा। मानसी=मन की। निरवधि=अवधि-हीन। विकीर्ण हुआ=फूटा। सनयन=साकार।

अर्थ—कवि देवी सरस्वती की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखता है कि तुम्हीं भारत की प्रांतीय सभ्यता का लेख हो, राजनीति का जीवन और संसार का आकर्षक हो। तुम अमृत का आस्वाद देने वाले कालिदास की श्री-समृद्धि हो, तुम्हीं में धार्मिकता और साहित्यिकता का सम्मेलन है। तुम्हीं ने हर्ष को प्रौढ़ता दी। स्वयंभू कवि कम्बु को जन्म दिया, जिन्होंने रामायण को मौलिक रूप से रचा। प्राकृत के शम्भू आदि शताब्दियों तक रामायण के कवि और विद्वान रहे और तुलसी तक ही उस शताब्दी के कविवर माने जाते थे। जिस छन्द में उन्होंने रामायण लिखी थी, उसी छन्द में उसी प्रकार अन्तर किया जिससे जनता में नवीन चेतना जगी। तुम्हारी ही कृपा से सूरदास के गीत निरन्तर रस के स्रोत बहाते हैं और उनसे रस का सागर उसी प्रकार उमड़ पड़ता है जैसे चन्द्रमा से सागर उमड़ पड़ता है। तुम्हारे ही कारण मीरा के हृदय की सहज भावनाओं से भरे हुए गीत शोभाशाली हैं। तुम्हारी कृपा से ही कबीर में ज्ञान का प्रकाश फूटा, ज्ञानदास के उपदेश फूटे और दादू के स्वरों को जन्म मिला। तुम्हीं चिरन्तन जीवन की प्रगति हो, विश्व की मोहने वाली

शोभा हो और कवि की साकार कविता हो।

तुलसीदास

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९३८ में हुई थी। यह महाकवि निराला की उदात्त रचना है। इसमें एक ओर उन्होंने भारतीय संस्कृति के डूबते हुए सूर्य का कारुणिक तथा दूसरी ओर मुगल साम्राज्य की घोर विलासिता का मार्मिक वर्णन किया है। हिन्दू संस्कृति के उसी अस्तप्राय सूर्य की विभा की रक्षा करने की पृष्ठभूमि में कवि तुलसीदास का उदय होता है।

तुलसीदास के जीवन की प्रख्यात घटना को कवि ने सर्वथा मौलिक रूप में चित्रित किया है। तुलसीदास का प्रकृति के अखिल सौंदर्य से अभिभूत हो सांसारिक जड़ता के प्रति उपेक्षित भाव दिखाना तथा उनकी आत्मा के अखंड विकास का कवित्वमय वर्णन इस कविता में है। कवि की शैली तथा वर्णन शक्ति समर्थ एवं बदलती है। निराला के महाकलेवरमय व्यक्तित्व का आभास भी पाठक को सहज ही कविता में मिल जाता है।

बिखरी........निरूपमिता।

शब्दार्थ—सफरी=मछली। निष्पात=अपलक। भावातुर=भावों से उद्वेलित। पृथु=विशाल, गम्भीर। उपशमिता=शान्त। नि:संबल=संबलहीन, बेसहारा। अरूप=रूपहीन, सत्य से सम्बन्धित। शीर्ण=दुबली, पतली, हारी, थकी।

अर्थ—कामाभिभूत तुलसीदास के अनुचित आगमन से क्रोधित एवं दुखित हुई रत्नावली की रोषपूर्ण मूर्ति का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि रत्नावली की मछली के समान चिकनी काली लटें बिखर कर मुखमन्डल पर लटकने लगीं। उसकी कमल सरीखे नयनों की पलकें अपलक होकर एकटक स्थिर हो कर जम गईं। बिना किसी सहारे के केवल गहन ध्यान से डूबी, अपने पार्थिव रूप को त्याग रूपहीन सत्य के सौन्दर्य में डूबी योगिनी के समान अन्तर की जागृति को प्रकाशित करती हुई वह अनुपम सौन्दर्य वाली प्रिय-मोह त्याग कर शिथिल देह से युक्त तुलसीदास के सामने खड़ी रह गई।

अलंकार—उपमा तथा रूपक।

विशेष—नारी के उदात्त विद्रोहात्मक रूप का अनूठा चित्रण है।

कुछ समय........मति डोली।

शब्दार्थ—अनन्तर=पश्चात्। स्वर्गीयाभा=स्वर्ग की सुन्दरता। स्वरित

प्रखर=तीव्र स्वर में। अचपल=स्थिर। कमला=लक्ष्मी। मति=बुद्धि। अमला=सरस्वती।

अर्थ—कुछ समय तक खड़ी रहने के पश्चात् वह स्वर्गीय प्रकाश तुल्य रत्नावली अपनी तीव्र वाणी के स्वरों में जीवन के मधुर निर्झर और गुंजार भरती हुई बोलने लगी। वह इस प्रकार बोली जैसे स्थिर शब्दों की बिजली चमक कर वहीं स्थिर हो गई हो। उस अवला कहलाने वाली अतुल बल समन्वित दिव्य नारी को उस समय बोलते देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो जल पर साक्षात् लक्ष्मी का उदय हुआ हो अथवा सरस्वती ही चंचल हो उठी हो।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा।

धिक्.........आए।

शब्दार्थ—धिक्=धिक्कार। धाए=आए। अनाहूत=अनामंत्रित, बिन बुलाए। धूत=पवित्र। सूत=दास,सेवक। दाम=धन, पैसे। चाम=चर्म, त्वचा। विराम—समय, संधि।

अर्थ—तुम्हें धिक्कार है जो तुम इस प्रकार बिना बुलाये ही यहाँ दौड़ आए। यह अपमानजनक कार्य कर तुमने अपने वंश के पवित्र धर्म को कलंकित कर दिया। तुम राम के नहीं, अपितु कामदेव के क्रीतदास हो। जिस शरीर के कारण तुम बिना धन के बिक गये हो, वह हाड़-मांस के जघन्य पुतले के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। क्या तुम्हें जीवन में ऐसी ही निम्न स्तर की शिक्षा प्राप्त हुई है कि वासना के क्रीतदास होकर सदा शरीर सौन्दर्य के पीछे भटकते रहो। क्या तुम्हें नहीं पता कि इसका अन्त कहां है। परिणाम कैसा है?

विशेष—रत्नावली के मुख से तुलसीदास के प्रति ये शब्द मानो नारी के उदात्त चरित्र की मानव मात्र के लिए चुनौती है जो भटके मनुष्य को समय-समय पर प्रकाश की लौ दिखाती रही है। तुलसीदास की परम्परावद्ध कहानी में यह प्रसंग यों है—

लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्ममय-देह मम, या में ऐसी प्रीति।
होती जो श्री राम में, न होती भव भीति॥

जागा ...... जड़िमा वह ।

शब्दार्थ— संस्कार=प्राचीन पुण्य तथा हृदय के सुप्तभाव । वामा=स्त्री अनल-प्रतिमा=आग की मूर्ति । भान=आभास । जड़िमा=जड़ता, ज्ञान-शून्यता ।

अर्थ—रत्नावली के वेदना भरे शब्दों को सुनकर तुलसीदास के पुराने तथा तीव्र संस्कार जाग उठे और उनके हृदय से काम और वासना के भाव जल कर नष्ट हो गये । उन्होंने देखा कि उनके सामने एक स्त्री नहीं, अपितु आग की एक प्रतिमा खड़ी है । उन्होंने देखा कि उनके चारों ओर ज्ञान का सागर हिलोरें ले रहा है, उनका अज्ञान का प्रथम आभास समाप्त हो गया है और सांसारिकता के प्रति उनका मोह तथा अज्ञान सब छुट गये हैं ।

देखा........पर स्त्री ।

शब्दार्थ—शारदा=सरस्वती । नील वसना=नीले वस्त्रों वाली । सृष्टि रशना=संसार को रसमय करने वाली । शुचि=शुद्ध । निश्वसना=स्थिर चित्र । वरदायी=वर देने वाली । अमृताक्षर=अमृत के अक्षरों से युक्त । श्री=शोभा । सौन्दर्य=शान्ति ।

अर्थ—जिन्होंने देखा कि नीले वस्त्रों से सुसज्जित सारे संसार को आनन्द देने वाली, जीवन की पवित्र वायु प्रवाहित करने वाली तथा वरदायिनी साक्षात् सरस्वती उनके सामने खड़ी है । रत्नावली का स्वर ऐसा था जैसे सरस्वती की वीणा अपने आप बज रही हो । अथवा अमृत के अक्षरों का शीतल निर्झर फूट रहा हो । मानो इस विश्व रूपी हंस पर इस शारदा के चरण टिके थे और उनकी कान्ति सर्वत्र फैल रही थी ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

दृष्टि से........क्षर रेखा ।

शब्दार्थ—भारती=सरस्वती । धूमायमान=धूएँ से आलोड़ित । घूर्ण्य=वात्याचक्र, वायुमण्डल । प्रसर=विस्तृत । धूसर=धूँधला । ताराद्वार=सूर्य । ऊर्ध्व=ऊँचा । सधर=नीचे । क्षर=नश्वर ।

अर्थ—सरस्वती के दर्शन से तुलसीदास की आत्मा का विकास होने लगा और वह उषा की ओर उन्नत होता गया । उसे सर्वत्र ज्ञान का आकाश दिखाई दिया । समस्त शून्य घूमते हुए धुएँ का समुद्र सा लगता था जिसमें सूर्य, चन्द्रमा और सितारे डूबते जा रहे थे । उस शून्य में क्या ऊपर है क्या नीचे कुछ नहीं सूझता था । सीमा की सभी रेखाएँ मिटती जा रही थीं ।

विशेष—तुलसीदास के मन में ऊर्ध्व गगन का अलौकिक चित्रण इन पंक्तियों में है। साधक को जब ज्ञान होता है तो उसका मन शरीर की पर्तों को पार करता हुआ एक चक्र के बाद दूसरे चक्र पर इसी प्रकार ऊर्ध्वगमन करता जाता है।

चमकी······ बन्धन सब।

शब्दार्थ - तारा=रत्नावली रूपी तारिका। द्युतिनील=नीले आकाश की नीली आभा। द्वन्द्व=बन्धन-द्विविधाएँ।

अर्थ—जब तक वह नवीन तारिका (रत्नावली) चमकती रही, नीले आकाश की कान्ति उसी में विलीन होती रही। अब सरस्वती का स्वरूप एवं महिमा (दिव्यता) क्षीण होने लगे। उनका प्रकाश भी धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगा। आकाश गतिहीन छन्द की तरह निस्पन्द था। तुलसीदास के मन में अब केवल आनन्द रह गया था, सभी प्रकार के दुःख तथा द्विविधायें समाप्त हो गई थीं।

अलंकार—रूपक।

थे मुंदे····· निष्प्रश्रय।

शब्दार्थ—ज्ञानोन्मीलित=ज्ञान से खुले। सौरण=सौन्दर्य। अवसित= स्थित। प्राणाश्रय=प्राणशक्ति। निष्प्रश्रय=बेसहारा।

अर्थ—तुलसीदास के ज्ञान चक्षु खुले थे, यद्यपि आँखें ऊपर से बन्द दिखाई दे रही थीं। जिस प्रकार कली में उसका सौन्दर्य छुपा रहता है, उसी प्रकार तुलसीदास भी अपने ही चित्त में डूबे हुए थे। उतकी प्राण शक्ति अब असीमता में स्थिति हो चुकी थी, अर्थात् अपनी असीम सत्ता की महिमा को वे पहचान गये थे। जिस सौंदर्य में कवि स्वयं वन्द रहा था, आज वह सौन्दर्य स्वयं कवि के माध्यम से छलक रहा था। जिस प्रकार कली में सौरभ तथा कविता में कविता छन्द निहित होती हैं उसी प्रकार बेसहारा सरस्वती का उनमें विकास हो रहा था।

विशेष—सरस्वती के दर्शन की प्रेरणा से कवि का आत्मिक उन्नयन एवं सरस्वती का उनके हृदय में वासित हो जाना उनके आगामी महिमामय कवि जीवन की भूमिका का आभास देता है।

जप आया ········ निःशूला।

शब्दार्थ—देहात्मबोध=अपने शरीर की सुध। शोध=ध्यान। निर्विरोध= अनवरता। रोधप्रतिकूलता=विरोधहीन। उत्पल=कमल।

अर्थ—तुलसीदास को जब अपने शरीर की सुध आई तो उनका विचार बाहर चलने को हुआ। सभी प्रकार के विरोधों को मिटाकर आज उनके जीवन की गति स्वच्छन्द हो गई थी। उनकी चेतना की अविरत गति इस प्रकार प्रवाहित हो रही थी जैसे सौन्दर्य की कलित धारा कमल पुष्पों को पूर्ण विकसित करती हुई, गुदगुदाती हुई निर्बाध गति से बह रही हो।

विशेष—तुलसीदास की चेतना के साथ सौन्दर्य की अजस्र धारा की तुलना कर कवि ने चेतना को रस के आनन्द भाव में भूषित सिद्ध किया है।

बाजी ...... निश्चल।

शब्दार्थ—बाजी=मुखरित। शब्दोच्छल=शब्दों का कलरव। ऊना=उदास। दूना=दुगना। आसुर-भावों=राक्षसी भावों से, कठोर तपस्या आदि की दुस्साध्य क्रियाओं से। भूना=भस्म, दग्ध।

अर्थ—तुलसीदास की चेतना की लहरें कलकल का निनाद कर ध्वनित हो उठीं। उनके आकुल भावों का आवेग शब्दों का रूप धारण कर गुंजित हो उठा। जिससे समस्त पर्वत प्रदेश तथा जंगल का वातावरण गूंजने लगा। ऋषि मुनियों का उदास एवं सूना रसहीन हृदय, जो आसुरी भावों के कारण भस्म सा हो गया था—अब दुगना प्रसन्न होकर उस रसमय स्वर लहरों को सुनने लगा।

विशेष—तुलसीदास की कविता ने भक्तों एवं साधकों को रसमय मार्ग दिखाया। तपस्या से अधिक महत्व प्रेम का है। शारीरिक साधना से आत्मा की पवित्रता अधिक महिमावान है।

जागो .... महिमाबल।

शब्दार्थ—अन्ध=अन्धकारमयी। प्रपात=झरना। पूर्वाचल=पूरब दिशा से, उदयाचल से। तमजिज्जीवनी=अन्धेरे पर विजय पाने वाली जीवन की चेतना। ज्योतिर्घन=घनी ज्योति।

अर्थ—तुलसीदास के अन्तर से उनकी जागृत चैतन्य शक्ति भारत की विलासाभिभूत जनता के प्रति जाग्रति का सन्देश देती है। यह संदेश सांकेतिक रूप में कविवर निराला का आधुनिक युग को भी है। अथवा उस युग को था जिसमें भारत दासता के बन्धन में आबद्ध था।

हे अज्ञान के अन्धकारावृत अंक में सुषुप्त भारतीय नर वीरों! अब ज्ञान का स्वर्णिम सवेरा हो गया है, तुम अपनी मोह निद्रा से जाग उठो! वह हीनता एवं अन्ध मोह की तमिस्रा अब बीत चली है, देख उदयाचल के प्रफुल्ल शिखर

से ज्ञान की किरणों का ज्योतित निर्झर झर रहा है। हे तेजस्वी ! अन्धकार पर जीवन की सत्यमयी चेतना अब विजय पाने की है। चेतना की इन किरणों को अपने में संगृहीत कर लो। भारत की अतुल महिमा एवं बल से प्रणीत ज्योति फिर से विश्व में (तुलसीदास के शब्दों द्वारा) प्रकट हो रही है। अर्थात् हमारी उज्ज्वल उदात्त संस्कृति का पुनरुदय हो रहा है।

होगा .... मायाकार।

शब्दार्थ—दुर्धर्ष=भयंकर। समर=युद्ध। निशिवासर=दिन-रात। भारती=सरस्वती। जीवनहार=जीवन का विनाश करने वाले तत्व। जीवन भर=जीवन का पोषण करने वाले तत्व। सकल=सारे। मायाकर=मायावी हाथ।

अर्थ—एक बार फिर से जड़ और चेतन में भयंकर युद्ध होगा। कवि की प्रत्येक छवि से युक्त जीव का पोषण करने वाली भावना जीवन के संहार को उद्धत दुष्ट भावनाओं से टक्कर लेगी। इधर सरस्वती है और उधर भौतिक जीवन के सभी एकत्रित उपकरण हैं। किन्तु विजय इधर ही होगी, क्योंकि यहाँ ईश्वर की शक्ति है और वहाँ मायावी राक्षसों के अन्यायी हाथ हैं।

यह युद्ध एक साथ रावण से राम का, जड़ से चेतन का, अज्ञान से ज्ञान का, भौतिक विचारों से आध्यात्मिक चेतना का, तथा पश्चिम की जड़ संस्कृति से पूर्व की भूत संस्कृति का युद्ध है। विजय अन्त में आसुरी पक्ष पर दैवी पक्ष की ही होगी।

हो रहे .... मोड़ेगी।

शब्दार्थ—खिन्न-खिन्न=उदास, दुखी। बल=समूह, पक्ष। अकल=पूर्ण गह=ग्रहण करके। रविकर=सूर्य। वर्षण=वर्षा। भव-पादप=संसार रूपी वृक्ष। मर्षण=मन की मलिनता।

अर्थ—जो अपने-अपने दलों से बिछड़ कर आज तितर-बितर हो रहे हैं। जिनके मन उदास हैं, उनको इस कवि की यह पूर्ण कला एकत्रित एक एकता के सूत्र में बाँध देगी। अर्थात् सब बिछड़े हुओं को मिला देगी। जिस प्रकार सूर्य एक-एक बूँद जल को इकट्ठा कर वर्षा बरसा कर वृक्षों को हरा-भरा करता है, उसी प्रकार यह कला भी एक व्यक्ति को लेकर सबको एकता में संगठित कर जीवन को लहरा देगी और सबके मन के मलों को धो देगी। आपस में मन-मुटाव नहीं रह पायेंगे।

देश .... सोयेंगी।

शब्दार्थ—बिंधकर=पीड़ित होकर। अशेष छविवर=सम्पूर्ण सौन्दर्य को लिये हुए। निश्चेतना=जड़, भौतिक जीवन के उत्साह को क्षीण करने वाली।

अर्थ—देश और काल की बाधाओं से पीड़ित होकर यह सम्पूर्ण सौन्दर्य का कलाओं से युक्त कवि आज जाग उठा है। इसका स्वर पाकर सरस्वती मुखरित हो उठेगी। जीवन को जड़ता के भावों से भरने वाली जो कायरता पूर्ण विलास की काव्यकृतियाँ सैंकड़ों मन के दूषित भावों की पंकिल नदियाँ छलकाया करती हैं, वे अब इस पवित्र वाणी को देखकर सर्वथा समाज से लुप्त हो जायेंगी।

तमुके······मांगी।

शब्दार्थ—अमार्ज्य=धुँधलका। देवीत्यमान=उज्ज्वल।

अर्थ—जब उस पर ज्ञान के प्रकाश की धारा पड़ी अन्धकार का धुंधला पर्दा टूक-टूक हो गया। हे भारतीयो ? अब संसार की वीणा में बहार का स्वर भर कर जाग उठो। अर्थात् संसार के दु:ख दूर कर उसे प्रसन्नता दो। अपने हाथों में अपने करुण प्राण लेकर अपने समक्ष ही उन्हें ज्ञान के प्रकाश से प्रदीप्त करो। जड़ संसार को गति दो, फिर जो तुम चाहोगे तुम्हें मिल जायेगा।

क्या हुआ ······ तानों की।

शब्दार्थ—गुना=ग्रहण कहेना, समझना। अधुना=नवीन। अचपल=स्थिर, अचंचल। उपमिता=उपमा के योग्य।

अर्थ—तुलसीदास के अन्दर से क्या स्वर फूटे--कहां क्या होता—इसे यह (तुलसी) नहीं सुन पाये। उन्होंने अपने भावों को केवल अपने मन में ग्रहण किना। उनके नवीन प्राणों की साधना की जागृति का ही उन्हें केवल अनुभव हुआ। उन्होंने देखा कि सामने रत्नावली मूर्तिवत् खड़ी है और उनकी आँखों से आँसू छलछला रहे हैं। संसार के रागों की सम्पूर्ण तान भी उस समय उसके कारुणिक सौन्दर्य की तुलसा नहीं कर सकती थी।

जगमग········बहने का।

शब्दार्थ—अन्त्य=अन्तिम। भाव=कथन, भाषा। लेशावकाश=तनिक सा भी अवकाश। बहने का=घूमने का, भटकने का, आनन्दित होने का।

अर्थ—तुलसीदास का जीवन जैसे उस अश्रुप्लावित मूर्ति को देखकर प्रकाश से जगमगा उठा और उसने अन्तिम बात रत्नावली से यों कही—हे देवी तुमने मेरे हृदय को प्रकाशित कर मुझे राह दिखा दी, अब यहाँ रहने का रंच-मात्र भी कारण मैं नहीं देखता हूँ। मैं अपने घर के भीतर कभी लौटकर नहीं

आऊँगा । आज से मैं जीवन भर (प्रभ की खोज में) भ्रमण करने का व्रत लेता हूँ ।

चल……रवि रेखा ।

शब्दार्थ—सुघर=सुन्दर। विश्वाश्रय=संसार का आधार स्वरूप । गहिमा घर=महान् । पटल=पट, द्वार । प्राचीन-दिगन्त-उर=पूर्व दिशा की गोद । पुष्कल=विकीर्ण, सुन्दर ।

अर्थ—(यह कहकर) तुलसीदास के चरण धीमे चलकर उन्हें वाहर ले आये । उनके हृदय में अब भी रत्नावली की वह सुन्दर परिचित मूर्ति अंकित थी । जो अपनी महिमा में संसार को आश्रय देती जान पड़ती थी । फिर तुलसीदास ने देखा कि संकुचित कलियाँ अपने श्वेत पंखुड़ियों के द्वारों को खोलती हुई कमलों के रूप में परिवर्तित होकर जन्म-सुख के जल पर पैर रही हैं और पूर्व दिशा की गोद से सूर्य की रश्मियां सर्वत्र विकीर्ण हो रही हैं अर्थात् तव तक प्रातः के सूर्य का उदय हो चुका ।

सहस्राब्दि

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९४२ ई० में हुई थी । एक आलोचक के शब्दों में—सहस्राब्दि निराला की ऐतिहासिक चेतना और राष्ट्रीय जागृति को व्यक्त करती है । विक्रम के १००० संवत् तक भारतीय इतिहास और संस्कृति का ओजस्वी वर्णन हुआ है । परिमल की यमुना और अनामिका की दिल्ली की परम्परा की यह कविता है। इतिहास की परिवनर्तशील गति के सन्दर्भ में अतीत गौरव से परिचित होने का महत्व तत्कालीन स्थिति में आवश्यक भी था ।

विक्रम की……चाटुकार ।

शब्दार्थ—निरवसाद प्रतिमा=दुखरहित मूर्ति । इतिवृत्तात्मक=ऐतिहासिक । दिगनाग दलन=दिशाओं के हाथियों का कुचलना ।

अर्थ—कवि भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण अतीत की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि विक्रम का एक हजार संवत विभिन्न गीतों से अम्वर को गुंजा चुका है, अर्थात् उसमें अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई हैं । आज मुझे उज्जयिनी की, 'दुखरहित मूर्ति की' ऐतिहासिक कथा की, उस आर्य धर्म की, उस शिरोधार्य वैदिक समानता की, पाटलिपुत्र की जहाँ बौद्ध धर्म का उदय तथा अन्य हुआ और पृथ्वी पर उत्पन्न हुए अनेक लोगों तथा राजाओं की, अकबर के दरबार में रहने वाले नवरत्नों की ज्योति की जो सभा के मजबूत आधार थे, उस प्रतिभा की जिसने दिशा के हाथियों को भी कुचल दिया था, कालिदास के शिव और सौन्दर्य से मण्डित काव्य की, महाकाल के मन्दिर में होने वाली पूजाओं की और प्रिया से प्रिय की चाटुकार के समान शिमुखात

की याद आ रही है।

आ रही याद·······पृथ्वी मर्दानि।

शब्दार्थ—अप्रमाद=प्रमाद रहित। अभिनन्दन=स्वागत। आवर्तित=घेरकर। स्यन्दन-बन्दन=रथ की वन्दना करना। अकलुष=निर्दोष। भास्कर=प्रकाशमान। पदातियों का=पैदल सेना का।

अर्थ—कवि भारत के अतीत की स्मृति करता हुआ कहता है कि आज मुझे अप्रमादरूप से ली गई शब्दों से विजय की, महावीर विक्रमादित्य के स्वागत की, प्रजाजनों का घेर कर रथ की वन्दना करने की, कलशों से सजी हुई निर्दोष सुन्दर युवतियों की, मुट्ठी भर कर खीलों की वर्षा करती हुई स्त्रियों की, हर द्वार पर जीवन को यौवन से भरते हुए स्वर की, नश्वरता को अमरता देकर प्रकाशमान करने वाले मालकौश हर की प्रत्येक ताल पर नृत्य करने वाले हाथी तथा घोड़ों की भर-भर करके गूँजने वाली रथ की ध्वनि की घण्टों की घन-घन की और उन्मत्त होकर अपने पैरों से पृथ्वी को रौंदती हुई पैदल सेना की याद आ रही है।

आ रही·····रुचिर तार।

शब्दार्थ—निरपवाद=अपवाद रहित। अप्रतिहत=अद्वितीय। तरी—नौका। समलंकृत—अच्छी प्रकार से सजे हुए।

अर्थ—कवि भारत के अतीत का स्मरण करता हुआ कहता है कि आज मुझे निरपवाद विधि से नारियों का चित्रण करने वाली तूलिका की, ब्राह्मण-प्रतिमा के अद्वितीय गौरव-विकास की, वर्णाश्रमों के द्वारा स्फुरित नवीन ज्योति की, नवीन विलास की, नई कामिनियों के वेश की, नये केशों की, नई-नई कवरी की, नये-नये बन्धनों की, नई-नई तरंगों की, नई-नई नौका की, नई-नई वाहन विधि की, नई-नई वनिता जनों की, नये-नये चिन्तन की, नई-नई रचनाओं की नये-नये उत्सवों की, नये कटाक्षों की नये सम्बोधन और उच्चारणों की, प्रिय तम के नये प्रेम की, नवीन समानता की, नई संस्कृति की, नई वस्तु-वास्तु-कौशल-कला की, नये आधार सारे विज्ञान, शिल्प और साहित्यों की, संस्कृत पर प्रहार करने वाले पाली भाषा के प्रबल पराक्रम की ओर कालिदास तथा वररुचि के अच्छे प्रकार से सजे हुए काव्य की याद आ रही है।

कर रपा मनन·········भ्रमण करते।

शब्दार्थ—दिव्य=उच्च। मारण=मारने वाला। सम्मोहन=मोहने

वाला। उच्चाटन=नष्ट करने वाला। वशीकरण=वश में करने वाला। संकर्षण=आकर्षित करने वाला। संत्रासन=दुख देने वाला।

अर्थ—मैं आचार्य शंकर के उत्थान, बौद्धधर्म के पतन और जन बल बढ़ाने के लिए वाम-पंथ के प्रचलन के विषय में सोच रहा हूँ। मैं सोच रहा हूँ कि लोगों में भय का कारण कामदेव के पंचवान मारण, सम्मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, संकर्षण और संत्रासन हैं। फिर दिव्य भाव के स्थान पर अदिव्य भावों का ग्रहण हुआ फिर यह रूप भी शक्ति के साधन से वदल गया। वौद्ध से आराधना के द्वारा आर्यरूपता हुई। उस अदिव्यता के कारण कुमारिल भट्ट का बौद्धों से विरोध हुआ। यह विरोध छोटी सी बात से ही बहुत वड़ा वन गया। वे शकर के शिष्य हुए जो लोगों के मन में शुद्ध भाव भरते थे और दिग्विजय के लिए समूचे भारत में भ्रमण करते थे।

सुविदित ········ रज से।

शब्दार्थ—सुविदित=प्रसिद्ध। प्रचण्ड=प्रबल। वामा=स्त्री।

अर्थ—प्रयाग के प्रसिद्ध प्रवल पंडित मण्डन थे जिनकी स्त्री का नाम उभय भारती था। इन्हीं का शंकर से कामशास्त्र पर शास्त्रार्थ हुआ था। विजित होकर तथा विचलित होकर शंकर शिक्षा लेने के लिए लौटे। अपना अध्ययन पूरा करके और राजदेह में प्रवेश करके त्यागी शरीर को निर्मल रख कर वे व्याध के पास आये और उसे पिता कह कर द्रुम-पातन की शिक्षा ली। फिर वे एक पेड़ पर चढ़ गए, बैठे और मन्त्र पढ़ा। डाली झुक कर आँगन में आ गई। उससे उतर कर बोले—'जो पहले से हारा हुआ है वह दरवाजा किस प्रकार खोल सकता है? उभय भारती मध्यस्थ बनी शंकर से उनका प्रबल शास्त्रार्थ हुआ जिनमें मंडन मिश्र हार गये। फिर वे गृह छोड़ कर विजयध्वजा त्याग कर चले गए और ज्ञान की आँखों से नभ तथा धूल से मिल गए।

आ रहा याय ········ सम्बल।

शब्दार्थ—ख्यात=प्रसिद्ध। अनिर्वात=स्थिर। दाहकरण=नाशक।

अर्थ—वेदों का वह उद्धरण याद आ रहा है। वह प्रसिद्ध और वेद-निष्णात ज्ञान की शिक्षा जो स्थिर और अडिग थी, प्रस्थानत्रयी का भाष्य, भारत के चारों ओर मठों की स्थापना, बौद्ध धर्म का नाश और अपने ही प्रायश्चित्त के कारण शंकर के शिष्यों का तुषाग्नि में जलना याद आ रहा है। मुझको जनता के जीवन की वह अस्थिरता याद आ रही है, पण्डितों का बढ़ा हुआ वह दुःख

जैसे शंकर मत से अद्वैतवाद से वे घायल हो गये थे, छिपे हुए बौद्धों के कथन कर्मकाण्ड के लोप हो जाने पर फल के लोभी मनुष्यों के दुख और दीनता, पाप समूह को नष्ट कर के भगवान से श्री, विभूति और शरण पाने की इच्छा याद आ रही है

ऐसे सांसारिक·········प्रखर ।

शब्दार्थ - गृही=गार्हस्थिक । संश्लिष्ट=मिलना । तथागत=भगवान बुद्ध ।

अर्थ – ऐसे ही सांसारिक लोगों के लिए पुनर्जीवन के समान आचार्य रामानुज आए । उन्होंने गार्हस्थिक चरित्र का उपदेश देकर और दर्शन की भिन्न व्याख्या करके लोगों को श्री तथा सुख प्रदान किया तथा पूर्ववर्ती व्याख्याओं को मिला कर उन्होंने अपने दर्शन का नाम विशिष्टाद्वैतवाद रक्खा। जो वैदिक ज्ञान है, वही भगवान बुद्ध का मोक्ष मार्ग है समस्त पृथ्वी एक सी ही। विचारधारा रही है। देश तथा काल के भेद से इसमें भिन्नता आ रही है बौद्धों के प्रचार से ही मिस्र में धार्मिक भावना फैली। वही भावना हजरत मूसा की प्रतिभा में बदल कर एक सुन्दर धर्म के रूप में प्रकट हुई। फिर कुछ परिवर्तन के साथ इसे ईसा ने प्रचारित किया और वही एक नये रूप में मुहम्मद प्रकट हुआ। एक ही प्रेम स्वरूप भिन्न-भिन्न रूपों में इसी प्रकार फैला जिस प्रकार प्रलयकालीन जल दशों दिशाओं को भर देता है। इस भावना से भ्रातृ-भाव का परम आनन्द मिला।

टूटा भारत ······ यह देश

शब्दार्थ—सम=समान। विपत्संकुल=विपदाओं से भरा।

अर्थ — इससे भारत में फैली हुई वर्णाश्रम व्यवस्था पहली बार भिन्न-भिन्न हुई। जो समान थे, वे आज विषम बने हुए हैं। राजा दाहिर युद्ध में हार गया। उसकी कन्याओं का हरण हुआ। उन्हें जब अपने साथ लेकर मुहम्मद बिन कासिम अरब को चला तो उन कन्याओं ने जिस प्रकार बदला चुकाया, वह तो सबको ही मालूम है। जब कान्यकुब्ज के प्रबल साम्राज्य का पतन हुआ तो देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो अनेक प्रकार की विपदाओं से भर गया।

उधर अदम्य·······गाया स्वर ।

शब्दार्थ—दुर्दान्त=भयंकर। समुच्छेद कर=उखाड़ कर।

अर्थ—उधर इस्लामी राष्ट्र अदम्य होकर बढ़ता ही चला गया। उसका

वेग इतना तेज था कि उसे सम्भालने में पृथ्वी असमर्थ रही। उन दूसरी प्रजाओं में भयंकर क्षत्रियों से जो नया था, वह निश्चय ही इस प्रकार समाप्त हो गया जिस प्रकार स्वर्गीय आकाश से हजारों बार पाला पड़ने से कमल का खिला हुआ समूह नप्ट हो जाता है, जिस प्रकार अधिकारी को भेद यहाँ की प्रकृति बदलना चाहती है और पहले के सारे नियमों को उखाड़ फेंकना चाहती है, जिस प्रकार निपुण सृष्टि नूतनता चाहती है और दूसरे लोगों को उनके अधिकार गिन कर दे देना चाहती है। प्राणों की पुकार सुन कर पवित्र हार गूँथ कर अदृश्य एवं सुन्दर प्रियतम को वह पहनाना चाहती हैं, इसी प्रकार इस शताब्दी ने भी पतितों को ऊँचा करने करने के लिए दूसरे राग से स्वर गाया।

अर्चना

गीत १— तिमिरदारुण………हरसो।

शब्दार्थ—तिमिरदारण=अन्धकार को नष्ट करने वाला। मिहिर=सूर्य।

अर्थ—कवि सूर्य की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि अन्धकार को नप्ट करने वाले सूर्य ! तुम अपना दर्शन दो। अपने ज्योति के हाथों से अत्यन्त अन्धकार में पड़े नए संसार का स्पर्श करके उसे सजग बनाओ। हमारा जीवन खो गया है। अज्ञानता के कारण हमारा सहारा भी छिन गया है। हमारे इस शरीर के पतन को उत्थान देकर इसमें नवीन प्राणों का संचार करो। हमारी गति और अधिक तेज हो, हर कली और फूल की क्यारी खिल जाये। स्वाभिवक रूप से सुगंधि से भरी हुई वायु में तुम अपनी हजारों किरणों को लेकर रम जाओ।

गीत—२ आज प्रथम ………अनुपम है।

शब्दार्थ—पिक=कोयल। विपिन=वन। सुरभि=सुगन्धि।

अर्थ—आज कोयल पहली बार पंचम स्वर (मीठी वाणी) में बोली है जिससे मरुस्थल और मनोहर बन गूँज उठा है।

वहा चल रही है, फूल और वृक्ष फूल गये हैं। बौर-बौर पर भौंरे पागल होकर घूम रहे हैं। पत्ते प्रसन्नता से फूल रहे हैं। चारों दिशाओं में उत्तम सुगन्धि छाई हुई है। आंखों से ज्योति कण बरस रहे हैं धीरे-धीरे उपवन में

हवा चल रही है। पृथ्वी का पराकृष्ट तन खुल गया है और सात्विक गीत के रूप में ज्ञान फूट पड़ा है। प्रत्येक शाखा पर नई-नई पत्तियाँ लदी हुई हैं जिससे गीत गन्ध के रसवर्गों में एक और मधुरता घुल गई है।

गीत—३ बाँधों न·········पाँव, बन्धु ।

अर्थ—हे बन्धु ! इस नाव को इस किनारे मत बाँधो, वरना सारा गांव हमसे इसके विषय में पूछेगा। वही घाट हैं जिस पर वह हँसकर तथा गहरे पानी में जाकर नहाया करती थी। उसे देख कर आँखें फँस कर रह जाती थीं और सात्विक आवेश के कारण दोनों पैर काँपने लगते थे। उसकी वह हँसी बहुत कुछ वता देती थी, फिर भी वह अपने में रहती थी। हे बन्धु ! वह सबकी बातों को सहन करती थी, सुनती थी और सबके ठाँवों को देती थी।

गीत —४ तरुणि ·······सलिल-सार, ओ ।

अर्थ—मेरी नौका को दूसरी पार उतार दो। मेरे हाथ इसे खेते-खेते थक गये हैं, और कोई दूसरा साथी नहीं है। बीच धार में भी मेहनत के कारण पसीनों से माथा भर गया है, अर्थात् अब इतनी भी शक्ति नहीं रह गई है कि नाव को मैं किनारे पर ले जा सकू मैंने जब वन पार किया तो मेरा मुख मुरझा गया। हे भगवान् ! आओ, और मेरी विपत्ति का हरण करो। मेरी नाव बीच भँवर में पड़ी हुई है, मैं सभी दाँवों को भूल गया हूँ, अर्थात् मेरी बुद्धि कोई काम नहीं कर रही है। पानी का वेग भी रुक नहीं रहा है।

गीत—५ मन मधु·····ताली ।

शब्दार्थ—ईरण=अस्थिर। सौदामिनी=बिजली। रशना=करधनी।

अर्थ—हे आली ! मन का मधु बन जा। अस्थिर तन की तपन-ज्योति गगन की काली-काली घटा उमड़ने से उत्तेजित हो गई है। ग्राम में बिजली चमकने लगी है। धाम में नूपुर के हृदय की सुरध्वनि बचने लगी हैं। रस से मुक्त करधनी नाम में बजने लगी हैं। हे बाली ! में तो यौवन में मतवाली हूं। सुन्दर तन पर तम की तिरछी रेखा सजी हुई है। प्रत्येक पंक्ति पर अविजित लेख अंकित है, जिसने इस रेखा तथा लेख को झांक कर देखा है उसे ही तन मन धन की ताली मिल गई है।